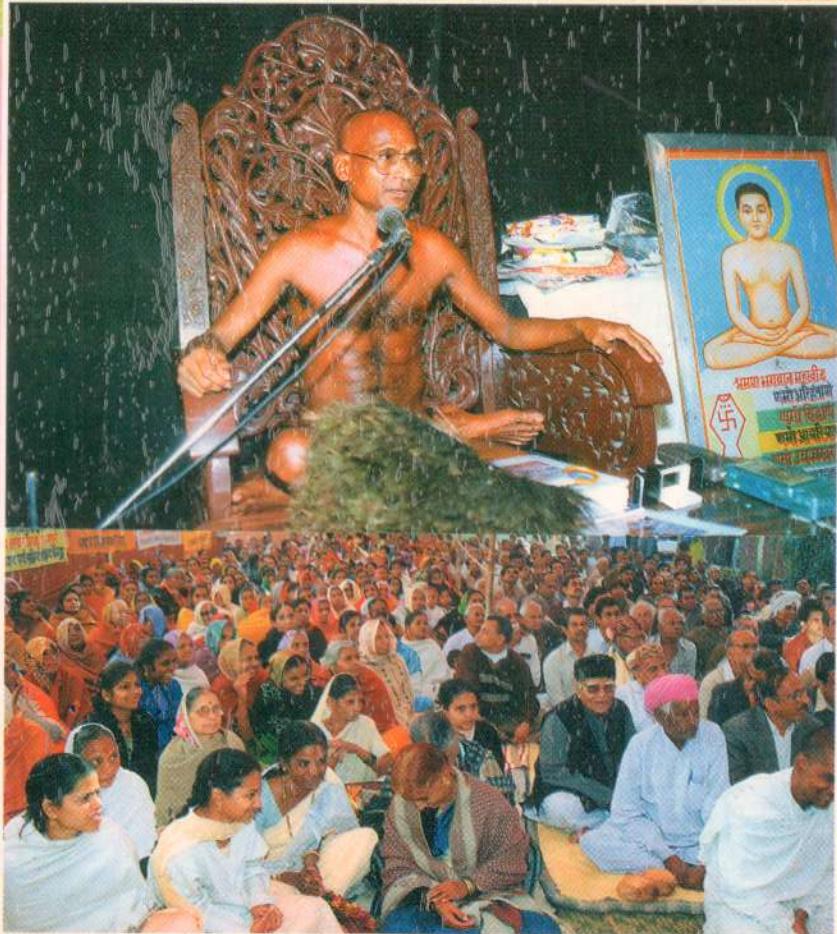


प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

(धर्म दर्शन विज्ञान शिक्षा सभ्यता राजनीति व्यायामिकों के)



धर्मसभा को सम्बोधीत करते हुए आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव

वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनन्दीजी

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

(धर्म दर्शन विज्ञान शिक्षा सभ्यता राजनीति न्यायादिकों के)

वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव

(1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान तथा

(2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान – ग्रंथांक : 129

प्रथम शोध बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

(धर्म दर्शन विज्ञान शिक्षा सभ्यता राजनीति न्यायादिकों के)

विज्ञान केवल भौतिक-रासायनिक नहीं होता है, परंतु प्रत्येक विषय का व्यवस्थित, क्रमबद्ध, प्रामाणिक शोध-बोध-आविष्कार ही विज्ञान है। भले ही वह भौतिक रासायनिक हो या अभौतिक आध्यात्मिक क्यों न हो। केवल आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा किया गया शोध-बोध आविष्कार ही विज्ञान नहीं है परन्तु अति प्राचीनकाल में एक निष्ठृह, आध्यात्मिक संत द्वारा ज्ञात किया गया कोई भी सत्य-तथ्य पूर्ण विषय भी विज्ञान है। आधुनिक वैज्ञानिक सत्य के पथ पर होते हुए भी पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। आधुनिक विज्ञान के पहले भी अति विकसित विज्ञान भारत में था। यह तथ्य इस कृति में सप्रमाण दिया गया है, इसके साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक शोधों का यथायोग्य यत्र-तत्र समावेश किया गया है। यह कृति प्राचीन विज्ञान, ‘विश्वगुरु भारत कहने का कारण’ तथा आधुनिक अग्रिम शोध के लिए सर्चलाइट का काम करेगी।

लेखक – आचार्य रत्न कनकनंदी जी गुरुदेव

: द्रव्यदाता :

(गुरुभक्त उद्योगपति) ज्ञानदानी ‘दानश्री’ दानवीर रमेशचंद्र जी कोटड़िया प्रतापगढ़ निवासी मुम्बई एवं अमेरिका प्रवासी।

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के परम शिरोमणी संरक्षक। सुपुत्र—जीतेन्द्र कुमार, प्रफुल्ल कुमार, पंकज कुमार एवं सुनील कुमार।

संपर्क : 601-602, न्यू शान्तिनगर बिल्डिंग, दि. जैन मंदिर के सामने, एस.वी.पी. रोड, बोरीवली (प.) मुम्बई-400092

फोन : (022) 8017281, 8016207, 8954989

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान-

(1) श्री सुशीलचन्द्रजी जैन—फोन. नं. (01234) 62845

‘धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान’ निकट दि. जैन धर्माशाला, बड़ौत

(2) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन

4-5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ, उदयपुर (राज.) फो. नं. (0294) 440793

(3) श्री गुणपालजी जैन

बेहड़ा भवन 87/1 कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर फो नं. : (0131) 450229

(4) श्रीमती लक्ष्मीगुरुचरण जी जैन

144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.) मुम्बई-400053

फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 63271152

(5) ‘सेवाश्री’ सुरेखा जैन (शिक्षिका) w/o वीरेन्द्रकुमार डालचन्द्रजी गड्डिया कपड़े के व्यापारी – सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001

फोन नं. : (02906) 32043

(6) श्री महावीर कुमार जैन

13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

(7) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा

आयड़ बस स्टोप के पास, उदयपुर-313001 (राज.) फोन न. 413565

लेसर टाईप सेटर्स : श्री कुन्तुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज, सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026

फोन - 5892744, 5891771

प्रकाशन (प्रूफ लाने ले जाने) में विशेष सहयोगी—

श्री मोडीलालजी प्रजापत, कैलाश कॉलोनी, माठला मगरा, नियर राम निवास होटल के सामने, हिरण्यमगरी, से.नं. 11, उदयपुर, फोन. 487661

सर्व आविष्कारक ऋषभदेव

यावान् धर्मस्यः सर्गस्तं कृत्स्नं स सनातनः।
युगादौ प्रथयामास स्वानुष्टानैनिदर्शनैः ॥

(116) आ.पु.

इस संसार में जो कुछ धर्म सृष्टि थी सनातन भगवान् ऋषभदेव ने वह सब उदाहरण स्वरूप स्वयं धारण कर इस युग के आदि में प्रसिद्ध की थी।

स्वयम्भुवा भूत-हितेन भूतले,
समज्जस-ज्ञान-विभूति-चक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः
क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः॥१॥
प्रजापति-र्यः प्रथमं जिजीविषूः
शशास कृष्णादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो
ममत्वतो निर्विविदे विदाम्बरः॥२॥
विहाय यः सागर-वारि-वाससं
वधू-मिवेमां वसुधा-वधू सतीम्।
मुमुक्षु-रिक्षाकु -कुलादि-रात्मवान्
प्रभुः प्रवत्राज सहिष्णु-रच्युतः॥३॥
स्वदोष-मूलं स्वसमाधि-तेजसा
निनाय यो निर्दय भस्मसात्-क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽज्जस
बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः॥४॥
स विश्व-चक्षु-वृषभोऽर्चितः सतां
समग्र -विद्यात्म-वपू-निरज्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो
जिनोऽजित-क्षुल्लक -वादि -शासनः ॥५॥

भगवान् ऋषभदेव जैनधर्म के अनुसार इस युग में भारत वर्ष के प्रथम तीर्थकर थे तथा वैदिक धर्म के अनुसार अष्टम अवतार थे। ऋषभदेव पूर्व संस्कार के कारण

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता
जन्मतः मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारी होने के कारण वे स्वयंभू भी थे। वे जीवों के हित के लिए इस धरती पर असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिक्षा, सेवा का उपदेश देकर प्रजाओं की रक्षा तथा पालन करने के कारण प्रजापति तथा ब्रह्मा भी थे। जब उन्हें ज्ञान-वैराग्य हुआ तब वे समुद्र पर्यन्त स्वराज्य-वैभव को छोड़कर निर्ममत्व बनकर अनंत अभ्युदय के लिए मुमुक्षु होकर प्रवज्या को धारण कर समस्त अनुकूल-प्रतिकूल अवस्थाओं को सहन करके बंधन के कारण स्वरूप कर्म को समाधिस्तुपी तेज से भस्मसात् करके सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, विश्व के सर्वत्रेष्ठ प्रवक्ता बनें। वे भगवान् ऋषभदेव विश्व चक्षु थे। अमृतपद को प्राप्त करने वाले परमब्रह्म थे। सज्जनों के द्वारा पूज्यनीय थे, समग्र विद्याओं के अधिपति थे। समस्त दोषों से रहित थे। समस्त मिथ्या / असम्यक् वादों को तथा वादियों को परास्त करने वाले ऐसे नाभिनन्दन मेरे चित्त को पवित्र करें। इन्होंने इक्षुरस का प्रयोग सिखाया था। इसीलिए इन्हें इक्ष्वाकु भी कहते हैं। इसी प्रकार इन्होंने अंक-अक्षर-विद्या, जीवन यापन की कलायें, समस्त धर्म-दर्शन, आध्याम विज्ञान का आविष्कार तथा प्रचार-प्रसार करने के कारण वे विश्वगुरु, विधाता, बुद्ध, शिव, शंकर आदि नामों से भी अभिहित हुए। यथा-

बुद्धस्त्वमेव बिवुधार्चित बुद्धि बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय- शंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्ग विधे-विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५

हे ऋषभदेव भगवान् ! आप बिवुधों (देवों) के द्वारा अर्चित होने के कारण तथा बोधि (ज्ञान) का प्रचार-प्रसार करने के कारण आप बुद्ध हो, आप तीनों लोकों में धर्म प्रचार करके उसे पवित्र करने के कारण शंकर हो, मोक्षमार्ग की विधि बताने के कारण विधाता हो। हे भगवन् ! आप स्पष्ट रूप से प्राणियों में उत्तम पुरुषोत्तम हो।



प्राचीन वैज्ञानिक शोधों को आधुनिक आधार प्रदाता : आचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव

— आ. ऋद्धिश्री, संघस्थ आ. श्री कनकनंदीजी

प्राचीनकाल से भारतवर्ष विश्वगुरु के नाम से विख्यात रहा है। यह केवल भारतीयों का गुणगान नहीं है अपितु ठोस आधारों पर भारत विश्वगुरु रहा है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, कला, आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, कानून, न्याय, राजनीति आदि क्षेत्रों में भारत ने श्रेष्ठतम मनीषियों, विद्वानों, चिन्तकों, दार्शनिकों के माध्यम से संपूर्ण विश्व को जीवन के प्रत्येक आयाम पर सुस्पष्ट मौलिक चिंतन दिया है। इसलिए इस भारत बसुंधरा पर जन्म लेने के लिए स्वर्ग के देवलोग भी लालायित रहते थे और भारत की तुलना में स्वर्ग को एवं स्वयं को तुच्छ मानते थे। भारत में जन्म लेने वाले केवल लौकिक वैभव में लीन होकर अपना परमलक्ष्य नहीं भूल जाते थे अपितु आध्यात्म विद्या की साधना करके मोक्ष उपलब्धि भी हासिल करते थे। ऐसे महान् गौरवशाली देश की गौरव गरिमा शनै-शनै समाप्त होती जा रही है और अनैतिकता, भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा चारों तरफ दृष्टिगत हो रही है। राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के लिए यह बहुत ही शोचनीय एवं चिंता का विषय है।

यह चिंता पूज्य गुरुदेव के मन मस्तिष्क में बाल्यावस्था से लेकर अभी तक बनी हुई है। गुरुदेव ने बचपन से ही गहनतम शोध-बोध, चिंतन, मनन, साहित्य लेखन एवं अथक् अनवरत प्रयत्न/पुरुषार्थ के बल पर भारत की गौरव गरिमा को पुनः सुदृढ़ एवं पुनर्जीवित बनाने के लिए “धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान” एवं “धर्म दर्शन सेवा संस्थान” की स्थापना करके इन संस्थाओं के तहत लगभग 6 भाषाओं में 130 प्राचीन आर्ष ग्रंथों की समीक्षापूर्ण व्याख्या, शोधपूर्ण साहित्य- लेख शिविर, संगोष्ठी, इंटरनेट आदि माध्यमों के द्वारा सत्कार्य कर रहे हैं। इन सभी सत्कार्यों के पीछे गुरुदेव का मुख्य उद्देश्य यही है कि महान् वैज्ञानिक जैनधर्म-दर्शन की उपयोगिता, प्रासंगिकता सदैव देश-विदेश में चर्चित रही है इसलिए इस महान् वैज्ञानिक जैनधर्म को आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देश-विदेश में, जैन-जैनेतर में प्रचार-प्रसार-स्थापना करके भारत को ही क्या संपूर्ण विश्व को सत्यनिष्ठ, उदारवादी, सहिष्णु, पवित्रमय, शांतिपूर्ण बनाना है। जैनधर्म में प्रतिपादित अनेकांत, स्याद्वाद, समाजवाद, मनोविज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक

विज्ञान, जीवविज्ञान, शिक्षाविज्ञान, कर्मविज्ञान, आयुर्विज्ञान, शकुन विज्ञान, स्वनविज्ञान, मंत्र विज्ञान, आध्यात्म विज्ञान, गणित विज्ञान इत्यादि गहन विषयों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय दर्शन शास्त्र पर आप गौरव अनुभव करते हैं। साथ ही विदेशों के ख्यातनाम दार्शनिक, वैज्ञानिक, चिंतक, साहित्यकार, शिक्षाविद्, बुद्धिजीवियों के विचारों, अनुभवों को भी एक शोधार्थी, जिज्ञासु, विद्यार्थी बनकर ग्रहण करते हैं। आप एक दिग्म्बर जैन साधु ही नहीं बल्कि दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजसुधारक, राजनीतिज्ञ, एवं विश्वधर्म प्रणेता भी हैं। इसीलिए आप विरोधी धर्म से भी अविरोधी गुणों को स्वीकारते हैं। सत्यनिष्ठा, उदारता, गुणग्राहकता, जिज्ञासु प्रवृत्ति आदि गुणों के कारण मुझे पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव अपने सत्तलक्ष्य को प्राप्त करने में शीघ्र ही कामयाब होंगे। यह व्यक्ति पर ही निर्भर है कि वह अपनी शक्ति विद्या, बुद्धि, यश, समय सहयोग किस दिशा में प्रयुक्त करता है। इन सब प्रवृत्तियों को गुरुदेव ने बचपन से ही सत्तमार्ग में लगाया है। इसीलिए आपकी उपलब्धियों से हर समाज, वर्ग के लाखों संवेदनशील श्रद्धालु तथा बुद्धिजीवी परिचित हैं पग-पग पर आपको सहयोग-सहकार-समर्थन भी प्रदान करते हैं। आपका उद्घोष इन्ही भावनाओं को मूर्त रूप देता है “आप मुझे सहयोग दो मैं आपको एक वैज्ञानिक धर्म दूँगा।” इसीलिए आपके पीछे देश-विदेश के शीर्षस्थ विचारक, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षाविद संकल्पबद्ध हैं। आप अपने विचारों को, योजनाओं को, उद्देश्यों को कागजी धरातल पर उतारने की अपेक्षा कर्म क्षेत्र में उतारते हैं। आप भवन, भूमि, मंदिर, मूर्ति, मठ, पंचकल्याणक, बाह्य लोग दिखावा, यश, प्रसिद्धि इत्यादि प्रपंचों से दूर रहकर जीवन्त प्रायोगिक धर्म एवं सतकर्तव्यों का आचरण करके दूसरों से भी इसीप्रकार की आशा रखते हैं। आपका मुख्य आचरण है “अधिकार से महान् कर्तव्यपालन” अगर इस आचरण को प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व आचरण में क्रियान्वित करने लग जाये तो ईर्ष्या, वैमनस्य, विघटन, दोषारोपण, अन्याय, अत्याचार, पापाचार, भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जायेंगी और जब ये संपूर्ण दुष्प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी तो गुरुदेव का सपना मूर्तरूपेण साकार इसी सदी में हो जायेगा जिस सपने को साकार करने में गुरुदेव बाल्यावस्था से लेकर अभीतक संकल्पबद्ध / कठिबद्ध प्रयासरत हैं। आओं हम सभी गुरुदेव के बताये पथ का अनुसरण-अनुकरण करें और उनकी भावनाओं को साकार जीवन्त मूर्त रूप दें।

इस्स कृति की महत्ता

सत् / सत्य या द्रव्य का कभी सर्वथा विनाश नहीं होता है तथा असत् / असत्य, अद्रव्य भी सर्वथा उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु सत् में ही उत्पाद, व्यय, धौव्य होता है अर्थात् सत् की प्राचीन अवस्था में परिवर्तन होकर नवीन अवस्था उत्पन्न होती है तथा सत् धौव्य/शाश्वत् रूप में रहता है। यथा—पानी का बर्फ या बाष्प या H_2O में परिवर्तित होना। इसी प्रकार विश्व में जड़ से लेकर चेतन तक, सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक, कृत्रिम से लेकर अकृत्रिम तक, शुद्ध से लेकर अशुद्ध तक, प्राकृतिक से लेकर अप्राकृतिक तक में जो कुछ द्रव्य, गुण, अवस्थायें, उपकरण आदि हैं वे किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं कभी भी अवश्यमेव अवस्थान करते हैं। जैसे कि कभी पानी समुद्र में रहता है, तो कभी बादल रूप में आकाश में रहता है तो कभी वर्षा रूप में पृथ्वी पर पड़ता है, तो कभी बर्फ रूप में जम जाता है, तो कभी बाष्प रूप में (स्टीम रूप में) बनकर उड़ जाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिस्थिति, आवश्यकता के अनुसार उसमें अवश्य परिवर्तन, संस्करण, नवीनीकरण होता है इसीलिए आधुनिक वर्तमान वैज्ञानिक युग में जो कुछ ज्ञान—विज्ञान, वैज्ञानिक उपकरण, संसाधन हैं वे सर्वथा, सर्वदा नवीन नहीं हैं। जिसप्रकार एक सद्यजात बालक प्रथम बार में जो कुछ करता, सुनता, देखता है भले उसकी दृष्टि में वह प्रथम है तथापि वह सर्वथा प्रथम ही हो इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है। जैसे कि माना जाता है कि वास्कोडिगामा ने भारत की खोज की थी तो क्या यह सत्य तथ्य है? क्या इसके पहले भारत नहीं था? क्या भारत के लोग वास्कोडिगामा और उसके देशवासीओं से कम ज्ञानी थे? जिस भारत के तीर्थकर, बुद्ध, ऋषि—मुनियों ने आत्मा से लेवर ब्रह्माण्ड के हर सूक्ष्म—स्थूल की खोज, शोध—बोध करके जीवों को नैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक ज्ञान दिया था, स्वर्ग—मोक्ष का रास्ता बताया था; उस भारत की खोज वास्कोडिगामा ने की यह मानना कितना हास्यास्पद, मूर्खतापूर्ण संकीर्णता से युक्त है। इसी प्रकार हिमालय की एवरेस्ट चोटी क्या हिलारी, तैजिंग के पहले नहीं थी? इसीप्रकार डार्विन ने ही क्या प्राणि विज्ञान की खोज की? उसके करोड़ों—अरबों वर्ष पहले भारतीय ऋषियों ने केवल प्राणी विज्ञान की ही खोज नहीं की अपितु आध्यात्म विज्ञान की भी खोज की है। इसीप्रकार क्या राइट ब्रार्स ने ही वायुयान का आविष्कार

किया? नहीं उसके तो हजारों वर्ष पहले रावण के पास पुष्पक विमान (वायुयान) था। इसी प्रकार अभी की अधिकांश खोजें, शोध—बोध, आविष्कार प्राचीनकाल में ही हो गये थे। हाँ उनमें से अधिकांशतः शोध—बोध आविष्कार अप्रचलित हो गये थे तो कुछ शास्त्रों में उनके सिद्धान्त लिपिबद्ध रूप में रह गये थे। यह सब सप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए इस शोधपूर्ण कृति की रचना की गयी है।

अमेरिका रिथ्ट आई.ई.ई. ने साबित किया है कि प्रो. जगदीशचंद्र बसु ही बेतार संचार प्रणाली के अन्वेषक थे न कि मार्कोनी। जिसके बारे में विश्व का वैज्ञानिक सौ साल भ्रम में रहा। इसीप्रकार अमेरिका के दो पत्रों से सिद्ध होता है कि वह दक्षिण अमेरिका को 'नया विश्व' नाम दिया था। एक जर्मन मानचित्रकार मार्टिन वाल्डसिमुलर के हाथ लग गया उसे शायद यह जानकारी नहीं थी कि कोलम्बस 1498 में अमेरिका की खोज कर चुका है इसीलिए उसने इस 'नये विश्व' का नाम इसकी खोज करने वाले 'अमेरिका वेस्पुसियर' के सम्मान में अमेरिका रखा। इसीप्रकार अनेकों शोध—बोध खोज, आविष्कारों के कर्ता तो कोई और हैं लेकिन अन्य दूसरों का नाम प्रसिद्ध हो जाता है। इसके अनेकों कारणों में से 'एक कारण है व्यक्ति की प्रसिद्धि और उस व्यक्ति के देश की प्रसिद्धि।' इसके साथ—2 उस व्यक्ति का प्रभाव एवं देश का प्रभाव। हमारे भारत में पहले से लेकर अब तक जितने आविष्कार हुए वे इसीलिए प्रसिद्धि में नहीं आ पाये क्योंकि जिन्होंने ये कार्य किये वे तो ज्यादातर साधु—संत, निष्पृही होते थे। तीसरा कारण यह है कि हमारा भारत मध्यकाल में अनेकों शताब्दियों तक परतंत्र रहने के कारण भारत के आविष्कार आदि को प्रसिद्ध नहीं कर पाये और दूसरे देश के लोगों ने उन आविष्कार आदि को स्वनाम से प्रसिद्ध कर लिया। चौथा कारण यह है कि मध्यकाल में भारत में विशेष इतिहास की रचना नहीं हुई जिसके कारण इतिहास में शोध एवं शोधार्थियों का नाम लिपिबद्ध नहीं हो पाया। इसीलिए भारतीय शोध—बोध—आविष्कारों को विश्व के सामने रखने के लिए अभी भारतीयों को कठिबद्ध होना चाहिए।

आधुनिक वैज्ञानिक युग केवल 300—400 वर्ष का है तथापि वैज्ञानिकों ने जो प्रगति की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसमें मूलकारण वैज्ञानिकों की सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता अथक परिश्रम, सृजनशीलता, उदारता आदि है। पहले—2 वैज्ञानिकों ने जो शोध—बोध किया उसका अनेकों धर्मान्ध व्यक्तियों

गे विरोध किया यहाँ तक कि कुछ की तो हत्या तक कर दी तथापि वैज्ञानिक लोग अपने पथ से विचलित नहीं हुए। वे सत्य को परमेश्वर मानकर सत्य की उपासना शोध-बोध में लगे हुए हैं जिसके कारण वे कुछ ही वर्षों में बैलगाड़ी के घड़ से लेकर सुपर सोनिक रॉकेट तक, स्लेट से लेकर कम्प्यूटर तक, भौतिक रसायन विज्ञान से लेकर अतीन्द्रिय मनोविज्ञान तक, धरती से लेकर स्वर्ग तक छलांग लगाने में समर्थ हो रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों के पास प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन कोई जीवन्त परंपरा, साहित्य, उपकरण, सद्गुरु नहीं होने पर भी उन्होंने जो कुछ उपलब्ध किया है वह प्रशंसनीय है। प्रकारान्तर से कहने पर एक अंधा एवं लंगड़ा व्यक्ति जिस प्रकार ढूँढ़-ढूँढ़ कर बैशाखी के सहारे पर बहुत दूर चला जाता है उसी प्रकार मानो वैज्ञानिक लोग प्राचीन धरोहर एवं विरासत के बिना तथा उचित मार्गदर्शन के बिना भी वे 300-400 वर्षों में वैज्ञानिक कार्य करके जीव जगत का उपकार कर रहे हैं उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। यदि उन्हें प्राचीन ज्ञान के साथ-2 मार्गदर्शन रूपी चक्षु एवं पैर मिल जाये तो वे और भी अति तीव्र प्रगति से आगे बढ़ सकते हैं। इस उद्देश्य को लेकर मैंने इस कृति में कुछ प्राचीन शोध-बोधों का संकलन किया है। इसके साथ-2 आधुनिक कुछ वैज्ञानिक एवं उनके शोध-बोधों के बारे में यत्किंचित् संदर्भनुसार दिग्दर्शन भी किया है।

जिस प्रकार धर्म का लक्ष्य सत्य का बोध एवं सुख का अनुभव है; उसी प्रकार विज्ञान का भी लक्ष्य है। परंतु धर्म में अनंत सत्य का बोध है और शाश्वतिक अक्षय सुख की उपलब्धि है। लेकिन विज्ञान अभी यहाँ तक नहीं पहुँचा है। विज्ञान में अनेक अच्छाईयाँ होते हुए भी कुछ कमजोरियाँ भी हैं। वे कमजोरियाँ यह हैं कि भौतिक वस्तु को ही महत्व देना तथा इंद्रियाँ तथा उपकरण से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान को ही सब कुछ मानना है। विज्ञान को यह मानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि सत्य केवल भौतिक ही नहीं होता बल्कि भौतिक के साथ-2 आध्यात्मिक, अनुभवात्मक इंद्रियातीत, परोक्ष भी होता है। जब विज्ञान इस ओर ध्यान देगा उसकी गति, उपलब्धि और भी तीव्र एवं सम्यक् हो जायेगी। कुछ आधुनिक महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन आदि ने भी कुछ इस प्रकार के अनुभव एवं शोध-बोध, आविष्कार किये हैं।

इस कृति के माध्यम से यह भी सिद्ध किया गया है कि जो आध्यात्म होता है वह कोरा बकवाश, वाक्य विलास, काल्पनिक, परलोक संबंधी ही नहीं होता

है। धर्म विज्ञान से भी अत्यधिक सत्य, तथ्यात्मक परीक्षित, प्रामाणिक विषय है। जिसप्रकार आकाश में ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि समाहित हैं उसीप्रकार धर्म में भी समस्त ज्ञान विज्ञान, राजनीति, कानून, गणित आदि गर्भित हैं। परन्तु इसे रुढ़िवादी, संकीर्ण धर्मान्धि लोग न मानते हैं, न जानते हैं न अनुकरण करते हैं। उनके लिए तो केवल बाह्य रीति रिवाज, पूजापाठ, वेशभूषा ही धर्म का सर्वस्व है। इसीलिए धर्म वृद्ध (प्राचीन जीर्ण-शीर्ण) होने के कारण उसमें जोश-होश के अभाव में प्रगति, तेजरिवता, जीवन्तता, प्रभावोत्पादकता नहीं है। जबकि विज्ञान किशोर के समान जिज्ञासु, प्रगतिशील, क्रियाशील, उत्साही है। इसीलिए वर्तमान की आवश्यकता है धर्म को विज्ञानमय बनाना एवं विज्ञान को धर्ममय बनाना। इसीप्रकार वैज्ञानिकों को धार्मिक बनाना, एवं धार्मिकों को वैज्ञानिक बनाना। धर्म एवं विज्ञान का समन्वय केवल यहाँ तक सीमित न होकर इसका समन्वय, प्रायोगीक करण कानून, राजनीति, समाज, रीतिरिवाज, पर्व त्वौहार, वेषभूषा, खान-पान, रहन-सहन, चाल-चलन में भी होना चाहिए। इससे व्यक्ति निर्माण से लेकर समाज, राष्ट्र, विश्व निर्माण संभव है। जिस प्रकार एक उत्तम व्यक्ति के लिए उन्नत मस्तिष्क, उदार हृदय, स्वस्थ शरीर, तेज युक्त चक्षु, स्वस्थ सुदृढ़ अवयव चाहिए उसीप्रकार समग्र विकास के लिए विज्ञान रूपी मस्तिष्क, धर्मरूपी हृदय, स्वस्थ सुदृढ़ शरीर अवयवरूपी राजनीति कानून, समाज व्यवस्था आदि चाहिए।

मैंने (आ. कनकनंदी) इस कृति में प्राचीन, जैन, वैदिक, बौद्ध तथा आधुनिक वैज्ञानिक साहित्यों का अवलम्बन लिया है। जिस प्रकार एक माली विभिन्न वृक्षों से विभिन्न सुंदर-2 फूल चुनकर उसे एक माला का रूप देता है उसी प्रकार मैंने भी प्राचीन एवं आधुनिक वैज्ञानिक साहित्यों से सुंदर-2 पुष्प लेकर इस कृति रूपी माला की रचना की है। इसीलिए इस कृति के रचयिता यथार्थ से वे ही हैं जिनकी कृतियों से मैंने सिद्धान्तरूपी सुमनों को संग्रहित किया है। इसीलिए मैं उन कृतिकारों का भी कृतज्ञ हूँ।

इस कृति का नाम मैंने ‘प्रथम शोध बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता (धर्म दर्शन विज्ञान शिक्षा, सभ्यता, राजनीति, न्यायादिकों के)’ रखा है। इसका कारण यह है कि अति ही प्राचीनकाल में अर्थात् प्राग् ऐतिहासिक एवं प्राग् वैदिक काल में जो भारत के 14 कुलकर (मनु), तीर्थकर ऋषभदेव, भरत चक्रवर्ती हुए और उन्होंने जो सर्वप्रथम ज्ञान, विज्ञान, आविष्कार शोध, बोध, खोज, कानून, सभ्यता,

संस्कृति, समाज व्यवस्था आदि के लिए जो कुछ शोध-बोध आविष्कार, नवनिर्माण किये एवं उसका प्रचार-प्रसार प्रवचन किया; उसका वर्णन इस कृति में किया गया है। परन्तु यह भी सर्वथा एकान्ततः सत्य नहीं है कि इन्होंने जो कुछ शोध-बोध आविष्कार किये वे सब संपूर्ण विश्व के लिए प्रथम थे; क्योंकि विश्व अनादि अनन्त एवं अत्यन्त विशाल है। इसमें अनेकों स्थानों पर अनेकों सभ्यतायें संस्कृति एवं उन्नत प्राणी जगत् हैं। विश्व अनादि निधन, शाश्वतिक होने के कारण इसकी अपेक्षा भी इन्होंने जो कुछ शोध-बोध आविष्कार किया वह शोध-बोध आविष्कार अन्यत्र पहले से भी होना संभव है। इसीलिए यहाँ जो 'प्रथम' विशेषण दिया गया है वह उपलब्ध साहित्य, उपकरण, आविष्कार तथा आधुनिक पृथ्वी की अपेक्षा से है।

मैं (कनकनंदी) भारतीय सभ्यता, संस्कृति, परंपरा तथा जैनधर्म में निहित सत्य तथ्य का आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समन्वय, प्रस्तुतिकरण, प्रकाशन, प्रचार-प्रसार करने के लिए नम्र प्रयासरत हूँ। इसके लिए हमारे संघ के साधु-साध्वी, 'धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान', 'धर्म दर्शन सेवा संस्थान', लेखन कार्य में सहायक मेरे शिष्य-शिष्यायें एवं द्रव्यदाताओं का पूर्ण यथायोग्य, तन-मन-धन, समय त्रम की सहायता सहयोग स्वेच्छा से मिल रहा है। इसीलिए वे सब धन्यवाद एवं आशीर्वाद के पात्र हैं। प्रकाशनकार्य में मोड़ीलाल जी प्रजापति एवं कुरुथुंसागर ग्राफिक्स सेंटर के डॉ. शेखरचंद्र जी को भी मेरा आशीर्वाद है। इस कृति का अध्ययन करके सत्य तथ्य का परिज्ञान करके तथा स्व कल्याण के साथ-2 विश्वकल्याण के लिए प्रयत्नशील सुधी पाठकों के लिए आशीर्वाद सहित यह ग्रंथ सप्रेम भेट आ. कनकनंदी- 4/5/2001 - जगत उदयपुर (राज.)

इस कृति के सहायक ग्रंथ

- (1) आदिपुराण
- (2) हरिवंशपुराण
- (3) तिलोयपण्णन्ति
- (4) वाल्मीकि रामायण
- (5) महाभारत
- (6) ललितविस्तार
- (7) हिन्दुत्व-जीवनदृष्टि-जीवन पद्धति
- (8) पद्मपुराण
- (9) उत्तर पुराण
- (10) श्रीराम शर्मा आ. का साहित्य
- (11) स्वयंभू स्तोत्र



लेखक की कृतियाँ

- (1) धर्म दर्शन एवं विज्ञान
- (2) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुस्त्र III
- (3) युग निर्माता भगवान् ऋषभदेव
- (4) ऋषभ पुत्र भरत से भारत
- (5) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
- (6) स्वतन्त्रता के सूत्र
- (7) विश्वद्रव्य विज्ञान
- (8) भारतीय आर्य कौन, कहाँ से, कबसे.....
- (9) अयोध्या का पौराणिक ऐतिहासिक, राजनैतिक विश्लेषण

लेखक की अन्य वैज्ञानिक कृतियाँ

- (1) विश्व विज्ञान रहस्य
- (2) आध्यात्मिक मनोविज्ञान
- (3) सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा
- (4) भविष्यफल विज्ञान
- (5) स्वप्न विज्ञान
- (6) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान
- (7) अनेकांत सिद्धान्त
- (8) अति मानवीय शक्ति
- (9) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान
- (10) सत्यसाम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार) आदि



प्रथम शोध बोध आविष्कारक एवं प्रवक्ता

(धर्म दर्शन विज्ञान, शिक्षा, सभ्यता, राजनीति, कानून आदि के)

प्राचीनकाल से भारतवर्ष विश्वगुरु के नाम से विख्यात रहा है। ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, शिक्षा, सभ्यता, राजनीति, कानून, आयुर्वेद, कला आदि क्षेत्रों में श्रेष्ठतम मनीषियों, विद्वानों, विन्तकों, दार्शनिकों, शिक्षाविदों के माध्यम से संपूर्ण विश्व को जीवन के प्रत्येक आयाम पर सुस्पष्ट मौलिक चिंतन दिया। विदेशी जिज्ञासुओं की ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति हेतु तथा शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु उपस्थिति भी यही सिद्ध करती है; परन्तु भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आदि कारणों से विश्वगुरु भारत की गौरवमयी गरिमा – महिमा शनैः शनैः समाप्त होती जा रही है। सभी शोध-बोध, आविष्कार हमारे भारत में ही हुए लेकिन भारतीयों की आपसी फूट, कलह, आलस्य, अकर्मण्यता, असंगठन, ईर्ष्या, मिथ्या, रुढ़िगत मान्यताओं, परम्पराओं के कारण इस सबका लाभ विदेशी लोगों ने उठाया और भारतीय लोगों ने इन सभी उपलब्धियों का दुरुपयोग करके स्वयं को हीरो से जीरो (0) सिद्ध कर दिया।

इस गहनतम पीड़ा का अनुभव पूज्य गुरुदेव बाल्यावस्था से लेकर अभी तक कर रहे हैं कि समस्त विषयों के वैज्ञानिक व गुरु हमारे भारत में हुए जिन्होंने सर्वप्रथम वैज्ञानिक, धार्मिक, दार्शनिक, आयुर्वेदिक सभी आविष्कार किये— ऐसे विश्व गुरु भारत का स्थान भ्रष्टतम देश में क्यों और कैसे आ गया?

गहनतम शोध-बोध, चिंतन, मंथन, विचार विमर्श करके अपने अथक अनवरत प्रयत्न पुरुषार्थी से, लगभग 30-40 ग्रंथों के प्रमाण, श्लोक, गाथा, सूत्र आदि देते हुए पूज्य गुरुदेव ने इस कृति की रचना करके पुनः भारतीय सभ्यता संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान को पल्लवित-पुष्टि करके भारतीयों के आलस्य, असंगठन, फूट, कलह, ईर्ष्या, रुढ़िगत, मिथ्या मान्यताओं, परम्पराओं को तोड़ने का अपनी लेखनी से प्रयास, पुरुषार्थ किया है; और समग्र क्रांति का आवहान करते हुए चेतना के पुर जोर शब्दों में लिखा है प्रथम संस्करण हिन्दी में है।

आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ

1. न्याय, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान : (नीति वाक्यामृतम् की विस्तृत वैज्ञानिक समीक्षात्मक टीका) पृष्ठ संख्या लगभग- 1000

2. भारत का दिव्य संदेश : भारत की मूल परंपरा यथा – जैन, बौद्ध, वैदिक के श्रेष्ठ ग्रंथों की आधुनिक समीक्षात्मक टीका सहित। समाधिशतक (जैन) उपनिषद (वैदिक) धम्पद (बौद्ध)

तीन ग्रंथों का प्रकाशन एक ही जिल्द में किया जायेगा जिससे विश्व के लोग भारत के दिव्य आध्यात्मवाद को समझे एवं भावात्मक एकता के सूत्र में बँधें।

पृष्ठ लगभग 500 से 750 तक।

द्रव्यदाता – प्रशांत, प्रेम कुमार संघई जैन – परभणी (महा.)

3. स्वभाविक अकृतिम विश्व : दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्व का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता कोई एक नहीं है यह सब स्वभाविक रूप से होता है यह सिद्ध किया गया है। पृष्ठ लगभग – 100

4. परम्परा, धर्म एवं विज्ञान : परम्पराओं में धर्म क्या है? अधर्म क्या है? विज्ञान क्या है? अविज्ञान क्या है? यह सिद्ध किया जायेगा।

पृष्ठ : प्रायः 100

5. 72 कलाएँ वृहत् : पूर्व प्रकाशित “72 कलाओं” का और विभिन्न दृष्टिकोण से विस्तृत वर्णन सोदाहरणों के माध्यम में प्रस्तुत किया जायेगा।

पृष्ठ लगभग- 100

6. तम स्कन्ध (श्याम विवर) : वैज्ञानिक दृष्टिकोणानुसार ब्रह्माण्ड के कुछ नक्षत्रों में श्यामविवर होते हैं इसका विस्तृत वर्णन धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करके यह सिद्ध किया जायेगा कि यह श्यामविहार संभवतः तमस्कन्ध है।

पृष्ठ- प्रायः 150

7. ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण भाग दो : इस कृति में चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान तथा धर्मध्यान, शुक्लध्यान का सविस्तार धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन किया जायेगा।

पृष्ठ प्रायः 300-400

8. परम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर एवं पर्यावरण की सुरक्षा : इस कृति में यह सिद्ध किया जायेगा कि केवल प्रदूषण वायु, जल, मृदा, शब्द हीनहीं होता है बल्कि भावात्मक प्रदूषण सर्व प्रदूषण का जनक है। विश्व के महान्‌तम प्रथम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर होते हैं।

पृष्ठ प्रायः 400 से 500

9. धर्म, जैनधर्म एवं महावीर भगवान् : आधुनिक प्रणाली एवं भाषा शैली से धर्म, जैनधर्म एवं भगवान् महावीर की जीवनी का विस्तृत वर्णन किया जायेगा।

पृष्ठ प्रायः 150

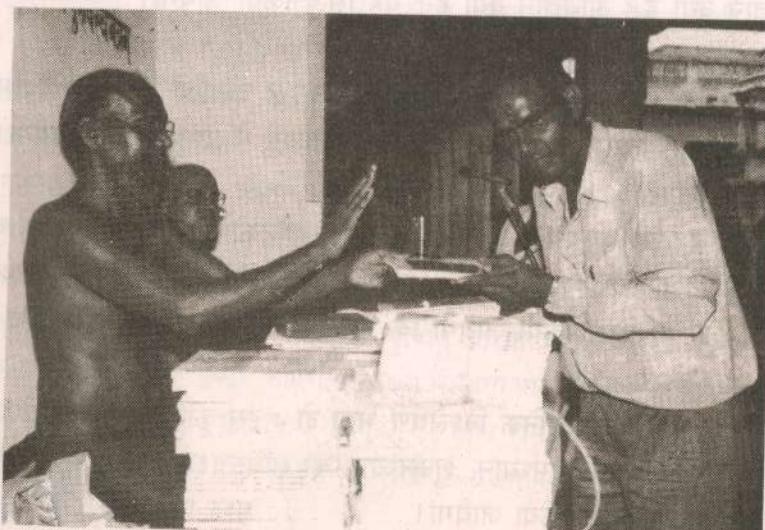
द्रव्यदाता : आर.के. जैन, बोम्बे.

10. कल्याणकारक : जैन आयुर्विज्ञान – पृष्ठ प्रायः 1100

11. भाव ही कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु : इस कृति में यह सिद्ध किया जायेगा कि वस्तुतः चिंतामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष व्यक्ति के भाव ही है। भावों का प्रभाव शरीर, मन, आत्मा, समाज, प्रकृति, इहलोक-परलोक में किस प्रकार पड़ता है इसका विस्तृत वर्णन धार्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जायेगा।

पृष्ठ प्रायः 200

गींगला चातुर्मास के मंगल प्रवेश तथा ग्रंथ विमोचन के प्रसंग पर ग्रंथ प्रकाशन सहयोगी श्री मोडीलाल प्रजापति को आशीर्वाद देते हुए आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव



पूर्व भावना

जड़ और चेतन से बनी यह सृष्टि अलौकिक है। स्वतंत्र रूप में चेतन सत्ता असीमित अनन्त है और अपने आप में सर्व ज्ञान से परिपूर्ण है। चेतन तत्व के बारे में जानकारी को ज्ञान और जड़ तत्व के बारे में जानकारी को विज्ञान कहा गया है। स्वतंत्र चेतन सत्ता ज्ञान और विज्ञान दोनों से परिपूर्ण है। और सम्पूर्ण सृष्टि की जानकारी से सुसज्जित है। प्राकृतिक रूप में चेतन सत्ता जड़ के प्रभाव से सीमित होने के कारण अज्ञान को ही प्राप्त है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनियों ने अपने तप और आध्यात्मिक बल से इस जड़ प्रभाव से मुक्त होने का रहस्य खोज लिया था और वे अलौकिक ज्ञान और विज्ञान के अधिकारी बन गये थे। उन्होंने अपने ज्ञान और विज्ञान को लोकहित में समर्पित कर दिया। विज्ञान के आधार पर अनेक उपकरण और साजो-सामान की रचना की। प्राचीन काल में आज की तरह लेखन और छपाई की सुविधा नहीं थी अतः ज्ञान विज्ञान को सूत्र रूप में सुरक्षित किया गया। किसी भी विज्ञान सम्बन्धित विशिष्ट जानकारी और विद्या ऋषि मुनियों के पास ही उपलब्ध होती थी और उन्हीं से सीखा जा सकता था। कालान्तर में विभिन्न कारणों से ऋषि परम्परा का अवसान होने से इन विद्याओं का लोप हो गया और समस्त ज्ञान विज्ञान केवल सूत्र रूप में ही विद्यमान रहा। उत्तर काल में जो सूत्र लिपिबद्ध कर लिए गये वे ही विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में आज उपलब्ध हैं। परन्तु इन उपलब्ध सूत्रों के अध्ययन से भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनियों का ज्ञान कितना विस्तृत और विशिष्ट था और किस प्रकार के अलौकिक उपकरणों की रचना उन्होंने की थी।

आज से 300-400 वर्ष पूर्व एक नये युग का प्रारंभ हुआ। अपनी मस्तिष्कीय शक्ति के द्वारा मानव ने जड़ प्रकृति के रहस्यों को खोजना प्रारंभ किया। आधुनिक विज्ञान की इस धारा ने विकसित होते हुए अनेकों आविष्कारों को जन्म दिया और फलस्वरूप आज जो स्थिति विश्व में उपलब्ध है वह किसी चमत्कार से कम नहीं है। इस सबका श्रेय आधुनिक विज्ञान को ही दिया जाता है जो मुख्यतया पश्चिम की देन है। यह एक भ्रामक स्थिति है। वास्तविकता तो यह है कि अनेक प्रकार का वैज्ञानिक ज्ञान प्राचीन भारत में भी उपलब्ध था जिसका विवरण केवल सूत्र रूप में ही धार्मिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। इस धर्म के प्रवर्तकों की यह मान्यता है कि यह सृष्टि अकृत्रिम है। इसकी रचना किसी भी सत्ता द्वारा नहीं हुई है बल्कि यह अनादि काल से ही प्राकृतिक रूप में विद्यमान है। ऐसी स्थिति में सृष्टि में घटित विभिन्न घटनाओं को ईश्वर आधारित न मानकर कार्य कारण सिद्धान्त के आधार पर व्याख्यत किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म की वैचारिक प्रणाली आधुनिक विज्ञान से मेल खाती है। इस दृष्टि से भी जैन ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान विज्ञान का विशेष महत्व है।

समय की आवश्यकता है कि प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर इनमें उपलब्ध ज्ञान विज्ञान को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझा जाय। ऐसे प्रयास के लिए धार्मिक ग्रन्थों एवं विज्ञान दोनों की जानकारी आवश्यक है। आचार्य श्री कनकनंदी में हम एक ऐसा ही व्यक्तित्व पाते हैं। आप जैन धर्म के साथ साथ विश्व के अन्य धर्मों के ही प्रकाण्ड विद्वान नहीं हैं अपितु विज्ञान के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आप एक उत्तम कोटि के साहित्यकार भी हैं और आपके अनेक शोधपूर्ण ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि आप एक सत्यग्राही जिज्ञासु हैं और प्राचीन भारत की उपलब्धियों की सही जानकारी विश्व को देने को उद्यत हैं। इस दिशा में आपके कुछ ग्रन्थ पूर्व में भी प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य श्री कनकनंदी ने अपनी वर्तमान कृति में जैन धर्म तथा अन्य धर्म और आधुनिक विज्ञान के आधार पर प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों का अनुपम चित्रण किया है। आपने विशेष तौर पर भगवान् ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती के योगदान का विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त आपने वैदिक शास्त्रों और अन्य भारतीय ग्रन्थों में उपलब्ध विद्याओं का भी वर्णन किया है। भारत प्रेमियों के लिए यह पुस्तक अपूर्व ज्ञान का स्रोत ही नहीं होगी बल्कि उन्हें प्रेरणा और गौरव भी प्रदान करेगी। प्राचीन भारत के विज्ञान का समीक्षात्मक अध्ययन आधुनिक विज्ञान को भी लाभान्वित करेगा ऐसी अपेक्षा है। इस सामयिक और महत्वपूर्ण कृति के लिए विश्व आपका आभारी रहेगा। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि आपकी लेखनी इसी प्रकार विश्व को आलोकित करती रहे।

डॉ. नारायणलाल कछारा

भू.पू. निदेशक, कमलानेहरू प्रोद्योगिकी संस्थान, सुलतानपुर,

सचिव: धर्म-दर्शन-सेवा संस्थान-उदयपुर

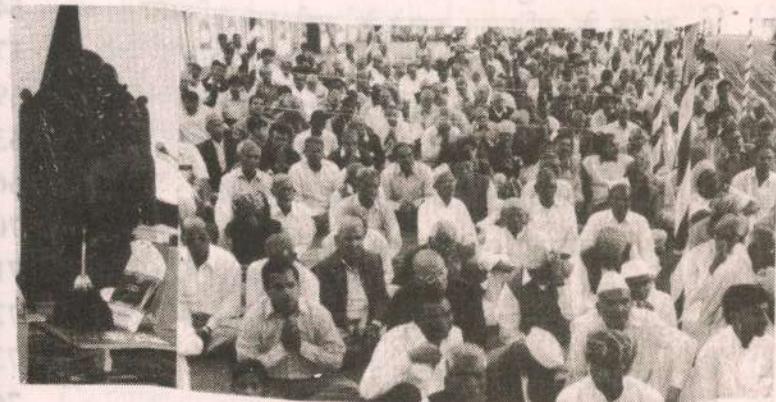
प्रभारी - नैतिक शिक्षा कार्यक्रम

(अन्तर्राष्ट्रीय गायत्री परिवार, शान्तिकुंज, हरिद्वार)

72 कला, 64 गुण, 100 शिल्प के शिक्षक : ऋषभदेव

उसभे अरहा को सलिए दक्खे पतिने पड़िस्वे अल्लीण - भद्र वीणिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसइ, वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसित्ता तेवहिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवास मज्जे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरूययज्जसवसाणाओ बाहतरिं कलाओ चोवहिं माहिलमुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ। (कल्पसूत्र)

अर्थ - कौशलिक अहत ऋषभदेव दक्ष थे। दक्ष प्रतिज्ञा वाले, उत्तम रूप वाले, सर्व गुणों से युक्त भद्र और विनीत थे वे बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे। उसके पश्चात् त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक राज्य अवस्था में रहते हुए उन्होंने जिस कला में गणित प्रथम है और शकुनरूत अर्थात् पक्षी के शब्द से शुभाशुभ जानने की कला अन्तिम है, ऐसी बहतर कलाएँ च महिलाओं के चौसठ गुण तथा सौ शिल्प ये तीनों चीजें प्रजा के हित के लिए आदेश की। इन सभी का अध्ययन करवाने के पश्चात् सौ राज्यों में सौ पुत्रों का अभिषेक कर दिया।



आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव एक विशाल सभा को संबोधित करते हुए

अनुकूलमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ.
1.	ज्ञान विज्ञान का आविष्कारक : भारत A- आविष्कारों की आश्यकता	1 8
2.	मनुष्यकृत आविष्कारों से रहित प्राकृतिक सुखमय काल (भोगभूमि) A- भोगभूमि की परिस्थिति (उत्तम भोग प्रधान युग सुषमा सुषमा) B- 64 कलाओं से युक्त आर्य C- प्राक् वैदिक आर्यों के जीविकोपार्जन साधन : कल्पवृक्ष	14 15 26 36
3.	आद्य आविष्कारों एवं आविष्कारों के कर्ता A- खगोल वैज्ञानिक प्रतिश्रुति कुलकर B- नक्षत्र वैज्ञानिक सन्मति कुलकर C- प्राणी वैज्ञानिक क्षेमकर कुलकर D- सुरक्षा वैज्ञानिक क्षेमधंधर कुलकर E- नौका सीढ़ी के उपदेशक मरुदेव F- बच्चों से जरायु हटाने के उपदेशक प्रसेनजित G- बालक के नाभिनाल काटने के उपदेशक नाभिराय H- भारत की प्रथम वर्षा I- भारत में बनस्पति की प्रथम उत्पत्ति J- प्रथम नगरी अयोध्या की रचना K- प्रथम जन्मोत्सव एवं नाटक	42 42 43 45 47 51 53 54 57 59 63 66
4.	आदिमहाशिखाशास्त्री, महावैज्ञानिक : ऋषभदेव A- विद्या का महत्व B- सर्वप्रथम अक्षराङ्क विद्यारम्भ एवं स्त्री शिक्षा C- लिपि निर्माण का इतिहास D- सर्वप्रथम वाङ्मयारंभ एवं उसका स्वरूप E- आदिनाथ से लेकर अद्यतन की खोज F- आद्य जीविका निर्वाह प्रशिक्षण का प्रारम्भ G- आद्य राजा: ऋषभदेव	70 71 72 73 76 79 95 96

1.1	H- कर्मभूमि का कारण	100
8.1	I- दण्डनीति	100
9.1	J- इक्षुरस आविष्कारक: ऋषभदेव	105
10.1	K- कर्मयुग प्रारम्भ	106
5	वैशिवक आध्यात्मिक वैज्ञानिक : ऋषभदेव	108
5.1	A- मुनि ऋषभदेव बनें सर्वज्ञ (सर्वोच्च वैज्ञानिक)	109
5.2	B- विश्व धर्म सभा	110
5.3	C- आदिनाथ का विशाल धर्म संघ	113
5.4	D- वैदिक ग्रंथों में वर्णित : ऋषभदेव	115
6.	वैशिवक वैज्ञानिक ऋषभदेव द्वारा शोध-बोध एवं प्रतिपादित सिन्धान्त	121
6.1	A- वस्तु स्वभाव धर्म (6 द्रव्यों का गुण धर्म)	123
6.2	B- जीव द्रव्य का गुण धर्म	125
6.3	C- पुद्गल द्रव्य का गुणधर्म (भौतिक एवं रसायन)	129
6.4	D- धर्म द्रव्य का गुणधर्म (गति माध्यम)	131
6.5	E- अर्धम द्रव्य का गुणधर्म (स्थिति माध्यम)	133
6.6	F- आकाश द्रव्य का गुणधर्म	134
6.7	G- काल द्रव्य का गुणधर्म	134
6.8	H- अनेकान्त एवं सापेक्ष सिन्धान्त	135
6.9	I- कर्म सिन्धान्त	139
6.10	J- लोकाकाश एवं अलोकाकाश (विश्व एवं प्रतिविश्व)	139
6.11	K- पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण संतुलन	140
6.12	L- चतुष्टय सिन्धान्त (चतु: आयाम सिन्धान्त)	141
6.13	M- वैशिवक पाँच नैतिक धर्म	141
7.	भारत का प्रथम चक्रवर्ती भरत	142
7.1	A- भरत की दिग्विजय	147
7.2	B- भरत का अपनी प्रशास्ति लिखना (प्रथम शिलालेख)	150
7.3	C- दिग्विजय काल	151
7.4	D- स्वाधीनता प्रेमी बाहुबली (लोकतंत्र का आरम्भ)	152
7.5	E- प्राचीनकालीन लोकतंत्र	156
8.	भरतजी घर में धर्मनुरागी	160

A- धर्मराज भरत	161
B- आदर्श धर्मपालक चक्रवर्ती भरत	168
C- धर्मानुशासित अर्थ एवं काम (भरत की आदर्श दिनचर्या)	169
D- सर्व विद्या भरित भरत	171
E-चक्रवर्ती के वैभव	173
9. भरत द्वारा कैलाशपर्वत पर जिन मंदिर निर्माण	177
A- राजाओं की वंशावली	179
10. विभिन्न जैन एवं वैदिक शास्त्रों में वर्णित भरत	181
11. भरत चक्रवर्ती के अति विशिष्ट वैज्ञानिक उपकरण	185
12. प्राचीनकालीन कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक वस्तुएँ	194
A- अन्तर्धान अस्त्र	196
B- तमासबाण	197
C- हनुमान ने वानर विद्या से वानर सेना तैयार की	198
D- पर्णलध्वी विद्या (प्राचीन पैराशृट)	199
E- प्रज्ञप्ति विद्या (विमान निर्माण विद्या)	199
F- महाज्वाला विद्या (आग्नेयास्त्र)	200
G- अवलोकिनी विद्या (दूरसे जानना)	200
H- बला अतिबला विद्या (प्राचीन सुपर कम्प्यूटर)	201
I- पुष्पक विमान (वायुमान)	202
G- इच्छाचालित विमान	204
K- पुष्पक विमान की लम्बाई चौड़ाई	205
L- पुष्पक विमान के निर्माता	206
M- कामचारी विहंगम यंत्र (पंखयुक्त जहाज)	207
N- विमान यंत्र (पारा एवं विद्युत् चालित वायुयान)	207
O- आकाशगामी प्रतियोगिता	207
P- आकाश मार्ग की शत्रु सेना को स्तम्भित करने वाला किलायंत्र	209
Q- प्राचीन कालिन अन्तरीक्ष यात्रा	212
R- वैज्ञानिकों ने भी खोजा स्वर्ग	213
S- आधुनिक विज्ञान की 400 वर्षों की सफल यात्रा	215

अध्याय-1

ज्ञान विज्ञान का आविष्कारक : भारत

‘विश्व भरण पोषण कर जोई, ताका नाम भारत अस होई’ अर्थात् जो विश्व को ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, आध्यात्म, गणित, आयुर्वेद, सभ्यता, संस्कृति आदि से पूर्ण करता है, पोषण देता है, प्रकाशित करता है, प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाता है उसे भारत कहते हैं। अति प्राचीन काल से भारत में आध्यात्मिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक आदि विषयों के महापुरुष हुए हैं; जिन्होंने अपनी अथक साधना के बल पर सत्य तथ्य को अवगत करके शिष्यों को उपदेश दिया था और शास्त्रों में लिपिबद्ध किया था। वह ज्ञान-विज्ञान शिष्य परम्परा से श्रवण, मनन, प्रवचन, लेखन आदि रूप में प्रवाहित होकर हम तक पहुँचा है। मध्यकाल में शक, हूण, मुगल, पठान, मुसलमान, अंग्रेज आदि के आक्रमण एवं विध्वंश के कारण, ज्ञान को छिपाकर रखने के कारण, वैज्ञानिक अध्ययन, विश्लेषण, प्रचार-प्रसार के अभावों के कारण भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान बहुत अंशों में नष्ट, भ्रष्ट, क्षीण एवं विपरीत भी हो गया। तथापि जो कुछ वाङ्मय अवशेष है उसमें भी महान् विभिन्न विद्याओं के सिद्धान्त भरे पड़े हैं। उस प्राचीन वाङ्मय के अनुपात से बिन्दु के बराबर होते हुए भी उसमें सिन्धु के बराबर गुण, धर्म वर्तमान हैं। आधुनिक वैज्ञानिक शोध-बोधों से भारतीय प्राचीन ज्ञान-विज्ञान कितना महान्, अकाट्य है यह सिद्ध हो जाता है। भारत धर्म प्रथान होने के कारण भारत के हर सिद्धान्त धार्मिक प्रणाली से लिखे गये हैं तथापि उसमें निहित वैज्ञानिक सत्य-तथ्य सिद्धान्त एक वैज्ञानिक अनुसंधेच्छु विद्यार्थी एवं विद्वान् के लिए सहज बोधगम्य है।

भारत की महानता के कारण स्वर्ग के देवों से लेकर प्राच्य पाश्चात्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन समस्त सत्यग्राही विद्वान भारत की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं एवं भारत की महानता के आगे नतमस्तक होते हैं। यथा-

(1) स्वर्ग-मोक्ष की भूमि-भारत

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(विष्णु पुराण, 2/6/24)

प्रथम भी गत करते हैं कि भारत भूमि में जन्म लेने वाले लोग धन्य हैं। उन्हें जीर्ण अपवाहन इस देश में जेवला भी जेवल को छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहते हैं।

(३) भारत में जन्म लेना जेवलों के लिए भी गौरव
अभी जीवन किंवद्धारियोगमन् प्रसन्न एषां स्विदतु स्वयं हरिः।
पैतंस्म तत्त्वं गुप्त भारताजिरे मुकुन्द सैवोपायिकं स्पृहा हिनः॥

श्रीमद् भागवत्, ५/१९/२१

जेवला भारतीय मनुष्योंके सौभाग्य पर ईर्ष्या करते हुए कहते हैं— अहा! इन लोगों ने जाने ऐसे कौन से शुभ कर्म किये थे जिनके फलस्वरूप इन्हें भारत भूमि के प्रांगण में भारत जन्म सुलभ हुआ है। लगता है, भगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न ही गये थे। भगवान् की सेवा के बोग्य ऐसा जन्म पाने की इच्छा तो हमारी भी होती है।

इसरो सिद्धु होता है कि भारतवर्ष इतना महान् है, जिससे देव भी इस देश में जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं। यह देश इसीलिए महान् हुआ है कि इस भू भाग में महान् आध्यात्मिक, राजनैतिक विभूतियों ने जन्म लिया।

(3) विश्व भरण पोषक : भारत

विश्व भरण पोषण कर जोड़। ताका नाम भारत अस होई॥

(संत तुलसीदास)

(4) माता, दादी, परदादी : भारतभूमि —

भारत उपासना पंथोंकी भूमि मानव जाति का पालना, भाषा की जन्मभूमि, इतिहास की माता, पुराणों की दादी एवं परंपरा की परदादी है। मनुष्य के इतिहास में जो भी मूल्यवान् एवं सृजनशील सामग्री है, उसका भंडार अकेले भारत में है। यह ऐसी भूमि है। जिसके दर्शन के लिए सब लालायित रहते हैं और उसकी एक बार हल्की सी झलक मिल जाये तो दुनियाँ के अन्य सारे दृश्यों के बदले में भी उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होंगे। (मार्क ट्रेवेन)

(5) गणित के शिक्षक भारत —

हम भारत के बहुत ग्रन्थी हैं, जिसने हमें गिनती सिखायी, जिसके बिना कोई भी सार्थक वैज्ञानिक खोज संभव नहीं हो पाती। (अलबर्ट आइंस्टीन)

(6) स्वप्न के साकार का स्थान : भारत —

मानव ने आदिकाल से जो सपने देखने शुरू किये उनके साकार होने का इस धरती पर कोई स्थान है तो वह है भारत। (फ्रांसीसी विद्वान् रोमां रोलां)

(7) महानता का स्थल : भारत —

यदि मुझसे कोई पूछे कि किस आकाश के तले मानव मन अपने अनमोल उपहारों सहित पूणज्ञतया विकसित हुआ है, जहाँ जीवन की जटिल समस्याओं का गहन विश्लेषण हुआ और समाधान भी प्रस्तुत किया गया, जो उसके भी प्रशंसा का पात्र हुआ जिन्होंने प्लेटो एवं कांट का अध्ययन किया, तो मैं भारत का नाम लूँगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि वह कौनसा साहित्य है जिससे हम योरोपीय लोग (जो आज तक केवल ग्रीक, रोमन और यहूदी विचारों पर पाल-पोसे गये हैं) उन उत्तुंग विचारों को प्राप्त कर सकते हैं जो हमारे आंतरिक जीवन को परिपूर्ण, अधिक वैश्विक और सही अर्थों में मानवीय बनाने के लिए नितान्त आवश्यक है, जो केवल इस जीवन के लिए ही नहीं अपितु देहान्त और शाश्वत जीवन के लिए भी आवश्यक है, तो मैं पुनः भारत की ओर ही इंगित करूँगा। (मैक्समूलर)

(8) महानता का गुरु : भारत —

हमारे आक्रमण, उदण्डता लूटपाट के बदले भारत हमें सिखायेगा सहिष्णुता और परिपक्व मन की मृदुता और अजेय आत्मा का निश्चल संतोष, सामंजस्य भावना की शीतलता तथा सभी प्राणीमात्र से एकरूपता युक्त शांतिप्रद स्नेह।

(बिल ड्यूरांट)

(9) उद्धारक का मार्ग : प्राचीन भारत का मार्ग—

मानव जाति के इतिहास के इस अति भयानक काल में सम्राट अशोक, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गांधी द्वारा बताये हुये प्राचीन भारत का मार्ग ही उद्धार का एकमात्र मार्ग है। इसमें वह दृष्टिकोण व भावना है जिससे मानव जाति को एक परिवार के रूप में विकास करना संभव होगा और परमाणु युग में यही एकमात्र मार्ग है जो हमें नष्ट होने से बचा सकता है। (आरनॉल्ड जोसेफ टायनबी)

(10) वह भारत देश है मेरा—

जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा

वह भारत देश है मेरा.....

जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का पल-पल लगता डेरा

वह भारत देश है मेरा.....

यह धरती वो जहाँ ऋषि मुनि, जपते प्रभु नाम की माला।

जहाँ हर बालक एक मोहन है, और राथा हर एक बाला।

जहाँ सुख सबसे पहले आकर, डाले अपना डेरा-

वह भारत देश है मेरा.....

अलबेलों की इस धरती के, त्योहार भी हैं अलबेले।

कहीं दिवाली जगमग है, कहीं होली के मेले॥

जहाँ रंग और खुशियों का, चारों ओर है घेरा-

वह भारत देश है मेरा.....

जहाँ आसमान से बातें करते, मंदिर और शिवाले।

किसी नगर में किसी द्वार पर कोई न डेरा डाले

प्रेम की बंसी बजाता, आये शाम सबेरा

वह भारत देश है मेरा.....

(11) पावन परम जहाँ थी मंजुल महात्म्य धारा।

पहले ही पहल देखा जिसने प्रभात प्यारा॥

सुरलोक से भी अनुपम ऋषियों ने जिनका गाया,

देवेश को जहाँ पर अवतार लेना भाया॥

(भारत)

(12) डेविड फराँले की पुस्तक 'गॉड सेजीस एंड किंगज' के अनुसार वैदिक प्रतीकवाद में संयात/संक्रान्ति एवं विषुव/सायन जैसी खगोलीय घटनाओं का उल्लेख आता है। जिसकी अवधि 4000 से 6000 ई. पू. के मध्य बताई जाती है। एक भारतीय खगोलविद् के.जी. सिद्धार्थ ने कृष्ण यजुर्वेद में 8500 से ई.पू.के लगभग एक (Solstice) का स्पष्ट संदर्भ खोजा है। जो ऋग्वेद को और प्राचीन सिद्ध करता है। ब्राह्मण एवं सूत्रों को इसके बाद 3000 ई.पू. काल का बताया जाता है।

(13) गणित से भी भारतीय सभ्यता की पुरातनता पर प्रकाश पड़ता है। 'पॉलीटिक्स ऑफ हिस्ट्री' नामक ग्रंथ में एन. एस. राजाराम के अनुसार, अमेरिकी गणितज्ञ ए. सैदेनवर्ग ने सिद्ध किया है कि प्राचीन मिश्र, बेवीलोन एवं यूनान

की ज्यामिती सुलभ सूत्र गणित से ली गई है। मिश्र व बेवीलोन साम्राज्यों में ज्यामिति का प्रथम प्रकटीकरण 2000 ई.पू. में हुआ था। अर्थात् सुलभ सूत्रों की रचना 2000 ई.पू. से पहले की प्रामाणित होती है। जिसका उपयोग समकालीन सिन्धु सरस्वती सभ्यता की अद्भुत नगरीय व्यवस्था एवं पूजा स्थलों में देखने को मिलता है।

(14) धातु विज्ञान से भी भारतीय संस्कृति को प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। एक अमेरिकी व्यक्ति ने 1956 में दिल्ली में एक प्राचीन सिक्का पाया। जिसे कई प्रयोगशालाओं ने 3700-3800 ई.पू. का बताया। इस पर एक तेजस्वी ऋषि का चेहरा बना हुआ था।

(15) आर्य आक्रान्ता मत की निराधारता पर प्रहार करते हुए अमेरिकी पुरातत्ववेत्ता जिम शेफर अपनी पुस्तक 'द इन्डो आर्यन इन्वेजन कल्चरल मिथ एंड आरकिओलॉजिकल रिप्लिटी' में 1984 में लिखते हैं 'भाषाई आंकड़ों के आधार पर यह मत गढ़ा गया था।' जिसके आधार पर आगे चलकर पुरातत्ववेत्तीय एवं नृत्यवेत्तीय आंकड़ों की व्याख्या की गई। जो सिद्धान्त था वह निर्विवाद सत्य बन गया। अब इस भाषाई निरंकुशता को समाप्त करने का समय आ गया है। वर्तमान की पुरातत्वीय खोजें पूर्व ऐतिहासिक या उत्तर ऐतिहासिक काल के किसी भी खंड में इंडो आर्यन या यूरोपीय आक्रान्ताओं की बात को पुष्ट नहीं करती। इसके स्थान पर प्रागैतिहासिक काल से ऐतिहासिक काल तक पुरातत्वीय आंकड़ों के आधार पर सांस्कृतिक परिवर्तन की शृंखलाओं की व्याख्या संभव है, जिसमें महत्वपूर्ण विकास हुए।' महर्षि अरविन्द के अनुसार हमारी वास्तविक संहिता अवधि के अंत का प्रतिनिधित्व करती है, न कि इसके आरम्भ या मध्यकाल का। वेदव्यास द्वारा संकलित बृहद् ग्रंथों का संग्रह अधिक समृद्ध आर्य पूर्वजों के मौखिक ज्ञान का एक चुनावभर हो सकता है। विश्व में हमारी सबसे प्राचीन परम्परा है, जिसमें 6000 से 8000 या इससे भी अधिक वर्षों तक मौखिक रूप से श्रुति-सृति के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान का हस्तांतरण होता रहा।

(16) मानव जाति का पालना, सभ्यता की जन्मस्थली : भारतवर्ष

जर्मन विद्वान् डोहम कह उठे थे कि भारत मानव जाति का पालना है, सभ्यता का जन्मस्थल है। विलियम मैकिन्टरो की उक्ति 'सारा इतिहास भारत को ज्ञान

विज्ञान एवं कला की माँ बताता है।' फ्रांसीसी प्रकृतिविद् पियरे सॉनरेट लिखते हैं, 'हम भारतीयों में अधिकतम सुंदर पुरातनता के अवशेष पाते हैं। सभी लोग यहाँ ज्ञान पिपासा शांत करने आये। भारत ने अपने गौरवकाल में समूचे विश्व को अपने धर्म व ज्ञान से आलोकित किया। मिश्र व यूनानवासी अपने ज्ञान के लिए भारत के ऋणी है।'

वाल्टेर 1773 में अपने ग्रंथ 'फ्रेंग मेन्ट्स हिस्टोरिक्यूज सर इन्डे' में लिखते हैं, 'यह महत्वपूर्ण है कि 2500 वर्ष पूर्व पाइथागोरस सामोस से गंगातट पर ज्यामिति सीखने गया। वह इतनी लंबी यात्रा न करता, यदि भारत के विज्ञान की ख्याति यूरोप में पहले से स्थापित न होती। हम पहले से ही यह मानते हैं कि भारतीयों के बीच अंकगणित, ज्यामिति, खगोल विद्या पढ़ाई जाती थी। अनंतकाल से वे विषुव के अयन से परिचित थे। भारत में कई वर्ष बिताने वाले फ्रांसीसी खगोलविद् लेजैंटिल भारतीयों के विज्ञान के प्रशंसक थे। आश्चर्यचकित थे कि भारतीयों को इस ज्ञान तक पहुँचने में कितना समय लगा होगा, जिसके बारे में चीनी लोगों को भी कोई भान न था। जिसमें मिश्रवासी व चाल्डियन तक अनभिज्ञ थे। मुझे दृढ़विश्वास है कि खगोलविद्या, ज्योतिष, विज्ञान, पुनर्जन्म आदि सभी कुछ हमारे यहाँ गंगा के तट से आया है। ये सब उद्गार आर्यों की मौलिकता को स्पष्ट करते हैं।

प्राचीन भारतीय 72 कला एवं 64 लिपियाँ

कला बहत्तर नरन की यामें दो सरदार।

एक जीव की जीविका दूजी जीव उद्धार॥

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने विश्व के समस्त ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, न्याय, गणित आदि का शोध-बोध-उपलब्धि स्वरूप मोक्ष/निर्वाण/परम स्वतन्त्रता के कारणभूत आध्यात्म विद्या का भी चरम विकास किया था। प्राचीन भारत में निम्नालिखित कला एवं लिपियों का प्रचलन था।

72 कलायें-

1. लिखित 2. पठित 3. गणित 4. बैधके 5. नृत्य 6. वक्तव्य 7. वाथा 8. वचन 9. नाटक 10. अलंकार 11. दर्शन 12. ध्यान 13. धर्मकथा 14. अर्थकला 15. काम 16. वाटकला 17. वृन्दिकला 18. शोचकला 19. व्यापार कला 20. नैपथ्यकला 21. विलास 22. नीति 23. शकुन

24. क्रीड़न् 25. वितन्यात् 26. हस्तताप 27. घृतकला 28. कुसुमकला 29. इन्द्रजाल 30. विनयकला 31. स्नेह 32. पानक 33. संयोगकला 34. हास्य 35. सौभाग्य 36. प्रयोग 37. गंधर्व 38. वस्तु 39. वाणिज्य 40. रत्न 41. पात्र 42. देशक 43. भाषक 44. विधाक 45. विनय 46. अग्नु 47. दाध 48. समस्त 49. वर्ण 50. हस्ति 51. अष्टक 52. पुरुष 53. नारी 54. भोज्य 55. पक्ष 56. भूमि 57. लेष 58. कष्ट 59. वृष 60. छद्म 61. सद्म 62. हरल 63. उत्तर 64. प्रतिउत्तर 65. शरीर 66. सत्त्व 67. साध 68. धैर्य 69. पत्रच्छेद 70. चित्र 71. भाण 72. ईर्या।

64 लिपियाँ-

1. ब्राह्मी 2. खरोष्ठी 3. पुष्करसारी 4. अंगलिपि 5. बंजलिपि 6. मगधलिपि 7. मङ्गल्यलिपि 8. अङ्गलीयलिपि 9. शकारलिपि 10. ब्रह्मावलिलिपि 11. पारूष्यलिपि 12. द्राविड़लिपि 13. किरातलिपि 14. दक्षिण्यलिपि 15. उग्रलिपि 16. संख्यालिपि 17. अनुलोपलिपि 18. अवमूर्ध लिपि 19. दरदलिपि 20. खाष्यलिपि 21. चीनलिपि 22. लूनलिपि 23. हूनलिपि 24. मध्याक्षरविस्तरलिपि 25. पुष्पलिपि 26. देवलिपि 27. नागलिपि 28. यक्षलिपि 29. किन्नरलिपि 30. गंधर्वलिपि 31. महोरगलिपि 32. असुरलिपि 33. अन्तरिक्षदेवलिपि 34. मृगचक्रलिपि 35. वायसअतलिपि 36. भौमदेवलिपि 37. गरुड़लिपि 38. उत्तरकुरुद्वीपलिपि 39. अपरगोदानीयलिपि 40. पूर्वविदेहलिपि 41. उत्क्षेपलिपि 42. निक्षेपलिपि 43. विक्षेपलिपि 44. प्रक्षेपलिपि 45. सागरलिपि 46. वज्रलिपि 47. लेखप्रतिलेखलिपि 48. अनुपद्रुतलिपि 49. शास्त्रावर्तलिपि 50. गणनावर्तलिपि = 99 क = लिपि 51. अध्याहारिणी लिपि 52. उत्पेक्षावर्तलिपि 53. निक्षेपावर्त लिपि 54. पादावर्तलिपि 55. सर्वरुत्संग्रहणीलिपि 56. विद्यानुलोभ विमिक्षतलिपि 57. ऋषितप स्तप्तालिपि (ऋषियों के तप से तपी हुई लिपि) 58. रोचमाना (देखने में सुंदर लगने वाली लिपि) 59. धरणीप्रेक्षणीलिपि 60. गगनप्रेक्षणी लिपि 61. सर्वोषधिनिषयन्दा लिपि 62. सर्वसारसंग्रहणी लिपि 63. सर्वभूतरूपग्रहण लिपि 64. द्विरुत्तरपद संघिलिपि यावद् दशोन्नर पद संघिलिपि-

विशेष जानकारी के लिए मेरे द्वारा रचित '72 कलायें' का अध्ययन करें।

प्राचीन भारतीय आर्य स्व से लेकर ब्रह्माण्ड तक, आत्मा से लेकर परमात्मा

तक, भौतिकता से लेकर आध्यात्मिकता तक, इहलोक से लकर परलोक तक तथा लोकोन्नर तक, अभ्युदय से लेकर निःश्रेयस तक, समस्त विद्याओं के विद्यार्थी शोधार्थी, प्रवक्ता थे। वे केवल भौतिक, लौकिक, शारीरिक मानसिक स्तर पर न रहकर इससे भी श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, श्रेय स्वरूप आध्यात्मिक, अलौकिक, अशरीरी, अतिमानवीय चिर ज्योति के ज्ञाता, दृष्टा, भोक्ता थे। इसीलिए कहा है—

आर्य संस्कृति की रही यही पहिचान।

जीवन में है ज्योति और मरने पर निर्वाण॥

आविष्कारों की आवश्यकता

विश्व अनादि अनन्त होते हुये भी परिवर्तनशील है। सूक्ष्म रूप में विश्व के प्रत्येक भाग में स्थित प्रत्येक द्रव्य में परिणमन होते हुये भी विशेष रूप से युग परिवर्तन रूप स्थूल परिणमन भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में होता है। ऐरावत एवं भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में ये काल के विभाग हैं। यहाँ पृथक्-पृथक् अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूप दोनों ही काल की पर्यायें होती हैं।

अवसर्पिणी काल में मनुष्य एवं आयु, शरीर की ऊँचाई और विभूति इत्यादिक सब ही घटते तथा उत्सर्पिणी काल में बढ़ते रहते हैं।

इन दोनों को मिलाने पर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण एक कल्प काल होता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में से प्रत्येक के छह भेद हैं— (१) सुषमासुषमा (२) सुषमा (३) सुषमादुषमा (४) दुषमासुषमा (५) दुषमा (६) दुषमादुषमा। इन छहों में से प्रथम सुषमासुषमा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, तृतीय दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, चतुर्थ दुषमासुषमा नामक काल ब्यालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, पंचम दुषमा इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और अंतिम दुषमा काल भी इतने ही इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण जानना चाहिए।

जिस प्रकार आधुनिक ऐतिहासिक विज्ञ मानते हैं कि आदिम काल में मनुष्य प्रकृति की गोद में स्वतन्त्र रूपसे विचरण करते थे। उस समय में सामाजिक जीवन के अभाव से परिवार ग्राम नगरादि का संगठन नहीं हुआ था। व्यक्तिगत धन, सम्पत्ति, वैभव, पशु, बनस्पति आदि नहीं था। जिस प्रकार वर्तमान सूर्य किरण, प्राणवायु, जलादि प्राकृतिक सम्पत्ति सर्व साधारण के लिए व्यवहार्य वस्तु है उसी

प्रकार प्राचीन प्राग्-ऐतिहासिक भोगभूमि काल में उपर्युक्त व्यवस्था थी। मन वांछित सम्पूर्ण जीवन—यापन सामग्री को देने वाले दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे, उनसे बिना परिश्रम केवल इच्छा मात्र से इच्छित सामग्री उपलब्ध हो जाती थी। इसलिए उस समय में कृषि, वाणिज्य, सेवा, शिल्पादि जीवन यापन कार्य कर्म नहीं था। इस अपेक्षा से आधुनिक इतिहास एवं जैन प्राचीन इतिहास में समानता है परन्तु सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से देखने पर आकाश और पाताल जैसा अन्तर है क्योंकि ऐतिहासिक मानते हैं कि प्राचीन आदिम काल में मनुष्य असभ्य बर्बर (क्रूर), कच्चा मांस भक्षी, नग्न, सभ्य भाषा आदि से रहित होते थे। परन्तु सत्य तथा यह है कि सामाजिक परिवारिक जीवन यापन से रहित होते हुए भी वे लोग सभ्य, अत्यन्त, सुन्दर मनुष्य शरीर को धारण करने वाले, कल्पवृक्ष से प्राप्त उत्तम-उत्तम परिधान धारण करनेवाले, सुवर्ण, रल निर्मित अलंकार, किरीट, कुण्डल आदि से अलंकृत शरीर वाले, अमृतोपम कल्पवृक्ष से प्राप्त भोजन करने वाले तथा अनेक भोगोपभोग से जीवन यापन करने वाले भोग-भूमिज मनुष्य होते थे।

जिस क्षेत्र में एवं जिस काल में भोग की प्रधानता रहती है उसको भोग भूमि कहते हैं। पूर्व संचित पुण्य के कारण भोग भूमिज मानव बिना परिश्रम किये कल्पवृक्षों से भोग उपभोग की विविध प्रकार की उत्कृष्ट-उत्कृष्ट सामग्री प्राप्त करके पूर्ण जीवन सुखमय बिताते हैं। उस समय में रोगादि से अकाल मरण आदि से रहित होकर दोनों स्त्री-पुरुष अति-उत्तम भोग करते हुए जीवन यापन करते हैं। कल्पवृक्षों से सहज प्राप्त विभिन्न सुन्दर पोषाक एवं अलंकार से विभूषित होकर दोनों स्वामी-स्त्री प्रेम-प्रीति से सहवास करते हैं।

आधुनिक ऐतिहासिक लोग बताते हैं कि प्राग्-ऐतिहासिक काल में मनुष्य वस्त्र अलंकार से रहित होकर नग्न रहते थे; उदर पोषण के लिए पर्याप्त शुद्ध पक्व शाकाहार नहीं मिलता था, जिसके कारण वे लोग मांसाहार करते थे। परन्तु यह बात सत्य-तथा नहीं है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करेंगे तो प्राचीन कालीन मनुष्य सुख-समृद्धि में जीवन यापन करते थे यह सिद्ध हो जाएगा।

भोग-भूमि में उत्क्रान्ति

विश्व परिवर्तनशील है। समयानुकूल परिवर्तन होना विश्व का सहज जात स्वभाव है। उत्थान के बाद पतन एवं पतन के बाद उत्थान यह विश्व का एक अकाट्य प्राकृतिक नियम है। इस नियम का अपवाद कर्मभूमि संबंधी भोगभूमि

में भी नहीं होता है। दीर्घ प्रायः 9 कोटाकोटि (90000000000000) सागर प्रमाण भोगपूर्ण सुखमय जीवन यापन के बाद कर्मभूमि में एक प्रकार नवीन क्रान्ति जन्म लेती है। विपरीत परिस्थिति से जीव अपनी सुरक्षा के लिये विपरीत प्रकृति के विरोधी जीव से युद्ध करता है। यह आत्म सुरक्षा रूपी संघर्ष ही जीव के उत्थान का कारण बन जाता है। जब तक जीवन में संकटमय परिस्थिति नहीं आती है तब तक जीव संघर्ष नहीं करता है और बिना संघर्ष उनकी जीवन शक्ति गतिशील नहीं होती है। इसीलिये कहा है 'दुःख मानव की सम्पत्ति है और दुःख मानव को उन्नत करता है।' जिस प्रकार रात्रि के घने अध्यकार के बाद एवं दिवस के जाज्वल्यमान प्रकाश के मध्य में ब्राह्ममुहूर्त आता है उसी प्रकार भोगपूर्ण तमस के काल के बाद तथा आध्यात्मिक उत्कान्ति पूर्ण कर्मभूमि के मध्य में प्रायः पल्य के आठवें भाग प्रमाण उत्थान सूचक कर्मभूमि का ब्राह्ममुहूर्त का मंगलमय उदय हुआ। यह काल मनुष्य समाज का संगठन, संघर्ष, उन्नयन, शोध-बोधका था। इस समय की अवधि में मनुष्य-समाज के मार्गदर्शा, आविष्कारक, निर्वाणकर्ता, विपत्ति से उद्धार करने वाले, मनुष्य समाज के महान् शिल्पी चौदह मनु (कुलकर) हुए। वे लोग मनुष्य कुल के लिये विशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य करने के कारण उनको मनु या कुलकर कहते हैं। उन्होंने मनुष्य समाज के लिये महान् अवदान किये थे।

भोगभूमि की परिस्थिति काल-चक्र के अनुसार परिवर्तित होती गई। पहले कल्पवृक्ष में जो शक्ति थी वह शक्ति भी क्षीणतम होती गई। पहले तेजांग कल्पवृक्ष के कारण भोगभूमि इतनी प्रकाशित होती थी जिसके कारण आकाश में शाश्वतिक रूप से अनादि से सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिष विमान होते हुए भी भोगभूमिज्ञों को नहीं दिखते थे। कल्पवृक्ष की ज्योति क्षीण होने के कारण सूर्य-चन्द्र दिखने लगे। अपरिचित तेजीयान चन्द्र-सूर्य को आकाश में देखकर उस समय की जनता भयभीत हुई। यह भय का कारण उनकी अज्ञानता थी। उस समय में जनता को यथार्थ उपदेश देकर भय को दूर करने वाले एक महान् पुरुष हुए जिनका नाम प्रतिश्रुति था। मनुष्यकुत की अज्ञानता, भय, दुःख मिटाने के कारण उनको कुलकर या मनु कहकर पुकारा गया। इसी प्रकार उत्तरोत्तर कल्पवृक्ष की ज्योति नष्टप्रायः होने से आकाश में तारे दिखाई दिए; जिसे देखकर उस समय जनता भयभीत हुई और उनका भय यथार्थ उपदेश से दूर करने वाले द्वितीय

सन्मति नामक मनु हुए। भोगभूमि के उत्तम वातावरण में जो व्याघ्र आदि पशु मनुष्य के साथ प्रेम, मैत्री से क्रीड़ा करते थे वे ही काल परिवर्तन से कूर हो गये जिससे उस समय के मनुष्य सन्त्रस्त हुए। क्षेमंकर नामक तीसरे कुलकर ने उन हिंसक प्राणियों से दूर रहने का उपाय बतलाया। काल क्रम से वे ही पशु जो पहले शुद्ध शाकाहारी थे, मनुष्यों को मारकर भक्षण, करने लगे; उनसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए दण्डादिक रखने के लिए चतुर्थ मनु क्षेमंकर ने बताया। पहले कल्पवृक्ष यथेष्ट जीवनयापन सामग्री इच्छामात्र से देने के कारण पहले की प्रज्ञा निर्लोभ रूप से परस्पर प्रेर-प्रीति रूप से स्वतन्त्र रहती थी। परन्तु कल्पवृक्षों कम फल देने से आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई जिसमें लोभ बढ़ा और लोभ के कारण संघर्ष शुरू किया। भोग प्रधान काल में किसी प्रकार की सामाजिक अनीति नहीं होने के कारण उस समय में अनीति प्रतिकार दण्ड व्यवस्था नहीं थी। जिस प्रकार निरोगी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की चिकित्सा नहीं होती है अपरंच जिस प्रकार चिकित्सा का मूल कारण रोग है उसी प्रकार दण्ड का मूल कारण अन्याय अत्याचार है। काल परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य भी अन्याय करने लगे जिससे उस अन्याय का शोधन करने के लिए प्रतिश्रुति से लेकर सीमंकर पर्यन्त पाँचों मनुओं ने केवल “हा” (खेद है) दण्ड का प्रयोग किया। केवल उस समय “हा” शब्द से लोगों को इतना पश्चात्ताप, अपमान, दुःख एवं ताड़न मिलता था, जिससे वे अनैतिक कार्य करने से भयभीत होकर पराडम्बु (विमुख) होते थे।

आगे कल्पवृक्ष नष्ट होते गये और जो कुछ बचे वे भी कम फल देने लगे जिससे लोगों की आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई। उस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए छीना-झपटी हुई जिससे कलह हुई। छठे मनु सीमंकर ने वृक्षों को चित्त रूप से निर्धारण कर सीमा निश्चित कर दी। गमनागमन करने के लिये विमलवाहन नामक सातवें मनु ने हाथी आदि का प्रयोग बताया।

पहले बच्चे उत्पन्न होने के बाद ही माता-पिता मरण को प्राप्त हो जाते थे। जिससे माता-पिता बच्चों को देख नहीं पाते थे परन्तु अब सन्तान के जन्म होने के समय तक माता-पिता जीवित रहने लगे, जिससे बच्चों को देखकर माता-पिता अजीब-सी घटना मानकर भयभीत होने लगे। अष्टम मनु चक्षुष्मान ने उनको सम्बोधन किया और कहा कि आप लोग भयभीत न होवें, ये आपकी सन्तान हैं। काल क्रम से सन्तान उत्पत्ति के पश्चात् भी कुछ अधिक समय तक जीवित

रहने लगी। तब नवमें यशस्वी मनु ने सन्तान का नामकरण एवं उत्सव मनाने के लिए प्रेरणा दी। दसवें मनु अभिचन्द्र ने बालकों के रुदन को रोकने का उपदेश दिया। उन्होंने बच्चों को चन्दा मामा दिखाने का, बच्चों को खेलने की ओर बोलने की प्रेरणा दी। पांचवे मनु के पश्चात् अनीति अन्याय अधिक होने लगा जिसके कारण छठवें मनु से लेकर दसवें मनु तक ‘हा’ दण्ड के साथ ‘मा’ (मत करो) दण्ड को जोड़ दिया। अर्थात् कोई अनैतिक कार्य करने पर ‘हा-मा’ (खेद है इस प्रकार मत करो) शब्द रूप दण्ड का प्रयोग किया जाता था। दशवें मनु के बाद उत्पन्न शीत-तुषार वायु चलने लगी जिससे लोगों को शीत जनित बाधा के साथ-साथ चन्द्रादिक दिखाई नहीं दिये। इस कष्ट को दूर करने के लिए ‘चन्द्राभ’ नामक ग्यारहवें कुलकर ने उपाय बताये। उन्होंने बताया कि भोगभूमि के हास से तथा कर्मभूमि के निकट होने के कारण यह सब प्राकृतिक उल्कांति (परिवर्तन) है। सूर्य उदय होने के बाद सूर्य किरण से तुषार विलीन हो जायेगा। शीत कष्ट दूर करने के लिए ताप सेवन करने का उपदेश दिया। ऐतिहासिक विज्ञ जो मानते हैं कि एक महाहिम युग था वह हिमयुग सम्भवतया यह भी हो सकता है।

पहले वर्षा होने के लिए अयोग्य परिस्थिति होने के कारण वर्षा नहीं होती थी। शीत युग (हिमयुग) के पश्चात् बारहवें मनु मरुदेव के समय में बिजली की चमक से भयंकर शब्द करते हुए वर्षा होने लगी। वर्षा के कारण वर्षा का पानी उच्च स्थान से बहकर नदियों में जाकर बहने लगा। उपरोक्त कारण से मनुष्यों को जो कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उस परिस्थिति से बचने के लिए- छाता आदि का प्रयोग बताया। इससे सिद्ध होता है कि अति प्राचीन काल से जलयान, छाता आदि का प्रयोग चल रहा है।

पहले जरायु (सन्तान उत्पत्ति के समय जो चर्म की थैली रहती है) उससे रहित सन्तान उत्पत्ति होती है। जलवायु, परिस्थिति, काल परिवर्तन के साथ-साथ सन्तान जरायुज से वेष्टित होकर जन्म लेने लगी। जरायुज से वेष्टित सन्तान को देखकर माता-पिता भयभीत हुए। तेरहवें कुलकर ‘प्रसेनजित’ ने जरायु को दूर करने का उपदेश दिया। इस समय माता-पिता शिशुओं की रक्षा कुछ समय तक करने के पश्चात् मरण को प्राप्त हो जाते थे। काल क्रम से सन्तानों की नाभिनाल अधिक लम्बी होने के कारण चौदहवें मनु ‘नाभिराज’ ने नाभिनाल को काटने का उपदेश दिया।

नाभिराज के समय में कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और परिस्थिति, परिवर्तन एवं वर्षा के कारण भूपृष्ठ में अनेक मधुर रस युक्त, औषध गुण युक्त वनस्पतियाँ उत्पन्न होने लगीं। भोगभूमिज लोग कल्पवृक्ष से ही जीवन-यापन करने की प्रणाली जनिते थे, अन्य प्रणाली के बारे में पूर्ण अनभिज्ञ थे। इसलिए कल्पवृक्ष के अभाव से भी उन लोगों ने क्षुधा के कारण भयभीत होकर जीवन-यापन की प्रणाली नाभिराय से पूछी। नाभिराय ने जीवन-यापन के अनेक उपायों के साथ-साथ वनस्पति से सहज प्राप्त धान्य, रस तथा गायादि से ढूध आदि प्राप्त करके सुख से रहने का उपदेश देकर उनका भय निवारण किया। इस प्रकार उपरोक्त १४ मनुओं ने विभिन्न समयों में जो मनुष्यों के ऊपर प्राकृतिक, अप्राकृतिक, विपत्ति, आपत्ति, संकट आये थे उनका यत्नपूर्वक निवारण करके मनुष्य समाज पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपकार किए थे। मनुष्य समाज के आद्य उपदेशक मार्ग प्रदर्शक, हिताकांक्षी उपरोक्त मनु ही थे। इसलिये मनुओं का योगदान मनुष्य समाज के लिए प्रधान एवं प्रथम था। इन के ही वंशज मनुष्य हैं।

उपरोक्त मनु पूर्व भव में संस्कारित राजकुमार थे। उस पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर और उनमें जो विशेष अवधि ज्ञान एवं जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ था उस ज्ञान के माध्यम से मनुष्य कुल को मार्ग प्रदर्शन करके मनु कहलाने योग्य बने थे।

आध्यात्मिक क्रान्ति युग— जीव मात्र का परम लक्ष्य शाश्वतिक अनन्त सुख एवं शान्ति है। अनन्त सुख एवं शान्ति भोग से नहीं मिल सकती है, परन्तु योग से मिलती है। भोग जनित सुख इन्द्रिय-मन-तात्कालिक नश्वर अंतोगत्वा दुःख को देने वाला एवं स्वयं दुःखमय है। इसलिये चिरकाल से भोगभूमिज प्राणी जो भोग को भोगते हुए चिरशांति प्राप्त नहीं कर पाए थे अथवा इन्द्रिय जनित सुख में लीन होकर शाश्वतिक सुख का अन्वेषण नहीं करते थे; भोगभूमि के उपरान्त जब कर्मभूमि का आगमन हुआ तब सहज प्राप्त भोग सामग्री नहीं मिलने के कारण जो दुःख तथा संताप उत्पन्न हुआ उससे विकुब्ध होकर शाश्वतिक सुख-शान्ति के अन्वेषण के लिए कटिबन्ध हुए। इस आध्यात्मिक क्रान्ति में प्रधान नायकत्व, धर्म तीर्थ प्रवर्तक तीर्थकर, सुदर्शन-चक्र के प्रवर्तक चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि क्रान्तिकारी आध्यात्मिक एवं राजनैतिक महापुरुष आदि ने ग्रहण किया।

अध्याय-2

मनुष्यकृत आविष्कारों से रहित प्राकृतिक सुखमय काल (भोग भूमि)

विश्व शाश्वतिक के साथ-साथ प्राकृतिक होने के कारण जब मनुष्य पूर्व प्रकृति की गोद में निवास करता था। उस समय में प्रकृति भी स्नेहिल, ममतामयी, योग्य, समर्थ माता के समान उसकी प्रत्येक आवश्यकता को पूर्ण करती थी। मनुष्य तथा पशु भी अपने प्राकृतिक, सरल, सहज, गुण, कर्म, आहार, विहार, विचार के कारण सुखमय जीवन यापन करते थे; जिससे उनकी कोई समस्या, अतिकांक्षा नहीं थी; जिसके कारण कृत्रिम आविष्कार, निर्माण, शोध-बोध तथा प्रगति की दौड़ की आवश्यकता नहीं थी। इस युग को ही प्राचीन साहित्य में भोगभूमि काल और वहाँ के पुरुष-स्त्री को आर्य एवं आर्या कहते हैं। इसका सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार है-

भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में ये काल के विभाग हैं। यहाँ पृथक-पृथक् अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी दोनों ही काल की पर्याय होती हैं।

णर-तिरियाणं आऊ उच्छेद-विभूदि पहुदियं सबं।

अवसर्पिणिस हायदि, उत्सर्पिणियासु वङ्घेदि॥(314)

अवसर्पिणी काल में मनुष्य एवं तिर्यज्ञों की आयु, शरीर की ऊँचाई और विभूति इत्यादिक सब घटते तथा उत्सर्पिणी काल में सब बढ़ते रहते हैं।

अवसर्पिणी का अर्थ अवक्रान्ति (पतन) होना है अर्थात् निम्न स्तर की ओर गतिशील होना है। उत्सर्पिणी का अर्थ उल्कान्ति (उत्थान) है। उल्कान्ति माने उच्चस्तर की ओर गतिशील होना है। अतः जिस काल में मानव एवं पशुओं की आयु, शरीर, विभूति, शक्ति इत्यादि कम होती है उस काल को अवसर्पिणी कहते हैं। जिस काल में उपर्युक्त विषय की वृद्धि होती है उसी काल विशेष को उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी की कालमर्यादा

अद्वारपल्लसायरउवमा, दस होंति कोडिकोडीओं।

अवसर्पिणि-परिमाणं, तेत्तियमुस्सर्पिणी - कालो॥(315)

अद्वापल्यों से निर्मित दस कोड़ा कोड़ी सागरोपम प्रमाण अवसर्पिणी और इतना ही उत्सर्पिणी काल भी है।

10 कोटाकोटी = 10 कोटी गुणा 10 कोटी = 100000000000000

10 कोटा कोटी अद्वासागर प्रमाण काल अवसर्पिणी है। इसी प्रकार 10 कोटाकोटी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल का प्रमाण है।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के उत्तर भेद एवं काल मर्यादा :

इन दोनों को मिलाने पर बीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम प्रमाण एक कल्पकाल होता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में से प्रत्येक के छः भेद हैं— सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुष्मा, दुष्मासुषमा, दुष्मा और अतिदुष्मा। इन छहों में से प्रथम सुषमा—सुषमा चार कोड़ा कोड़ी सागरोपमप्रमाण, द्वितीय सुषमा तीन कोड़ा कोड़ी सागरोपम प्रमाण, तृतीय दो कोड़ा कोड़ी सागरोपमप्रमाण, चतुर्थ दुष्मासुषमा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा—कोड़ी सागरोपमप्रमाण, पंचम दुष्मा इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और छहवें अतिदुष्मा काल भी इतने ही (इक्कीस हजार वर्ष) प्रमाण जानना चाहिए।

भोगभूमि की परिस्थिति : (उत्तम भोग प्रधान युग सुषमा सुषमा)

सुसमसुसमम्मि काले, भूमिरज-धूम-जलण-हिम-रहिदा।

कंडिप अब्रसिला - विच्छियादि - कोडोवसग्ग - परिचत्ता॥(320)

सुषमा सुषमा काल में भूमि, रज, धूप, और हिम से रहित तथा कण्टक, अब्रशिला (बर्फ) आदि एवं बिच्छु आदिक कीड़ों के उपसर्गों से रहित होती है।

णिम्ल-दप्पण-सरिसा, णिंदिद-दव्वेहि विरहिदा तीए।

सिकदा हवेदि दिव्वा, तणु-मण-ण्यणाण सुह- जणणी॥(321)

इस काल में निर्मल दर्पण के सदृश और निन्दित द्रव्यों से रहित द्रव्य बालू, तन, मन और नयनों को सुखदायक होती है।

विष्फुरिद-पंच-वण्णा, सहाव-मउवा व महुर-रस-जुत्ता।

चउ-अंगुल-परिमाणा, तुणंपि जाएदि सुरहि- गंधङ्गाः॥(322)

उस पृथ्वी पर पांच प्रकार के वर्णों से स्फुरायमान, स्वभाव से मृदुल, मधुर

रस से युक्त, सुगंध से परिपूर्ण, और चार अंगुलप्रमाण ऊँचे तृण उत्पन्न होते हैं।

तीए गुच्छा गुम्मा, कुसुमंकुर-फल - पवात - परिपुण्णा।

बहओ विचित्त - वण्णा, रुक्ख - समूहा समुत्तुंगा।(323)।

उस काल में पृथ्वी पर गुच्छा, गुल्म (ज्ञाडी), पुष्ट, अंकुर, फल एवं नवीन पत्तों से परिपूर्ण, विचित्र वर्णवाले और ऊँचे, ऐसे बहुत से वृक्षों के समूह होते हैं।

कल्हार - कमल - कुवलय - कुमुदुञ्जाल - जल - प्रवाह - पडहत्या।

पोक्खरणी - वावीओ, मअरादि - विविज्ञाया होंति।(324)।

वहाँ पर कल्हार, कमल, कुवलय, और कुमुद, इन विशेष जाति के कमल पुष्पों तथा उज्ज्वल प्रवाह से परिपूर्ण और मकरादिक जल जंतुओं से रहित, ऐसी पुष्करिणी व वापिकायें होती हैं।

इन पुष्करिणी आदि की चारों तटभूमियों में रलों की सीढ़ियाँ होती हैं। उनमें शयन और आसनों के समूहों से परिपूर्ण उत्तम भवन है।

सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करने वाले अमृतोपम निर्मल जल से परिपूर्ण और जलक्रीडा के निमित्तभूत दिव्य द्रव्यों से संयुक्त ऐसी दीर्घिकायें वापिकायें शोभायमान होती हैं।

अइमुत्तयाण भवणा, सयणासण - सोहिदा सुपासादा।

विविचित्तं भासंते, विरुवमं भोगभूमीए।(327)।

भोगभूमि में अतिमुक्तकों अर्थात् अति स्वच्छंद भोगभूमिजों के भवन शयन एवं आसनों से सुशोभित सुन्दर प्रसाद अनुपम और सुविचित्र प्रतिभाषित होते हैं।

वहाँ पर सुवर्ण एवं उत्तम रलसमूहों के परिणामरूप, नाना प्रकार के कल्पवृक्षों से परिपूर्ण और दीर्घिकादिक से संयुक्त उन्नत पर्वत हैं।

पंचवर्णवाली और हीरा, इन्द्रनील मरकत, मुक्ताफल, पद्मराग तथा स्फटिक मणि से संयुक्त वहाँ की पृथ्वी भी तन, मन एवं नयनों को आनन्द देती है।

वहाँ उभय तटों पर शोभायमान रलमय सीढ़ियों से संयुक्त और अमृत के समान उत्तम क्षीर (जल) से परिपूर्ण ऐसी प्रवर नदियाँ मणिमय बालुका से शोभायमान होती हैं।

भोगभूमि में अभाव -

संख-पिणीलिय-मक्कुण-गोमच्छी - दंस - मसय - किमि - पहुदी।

वियलिंदियाण होंति हु, णियमेण पठम - कालम्मि।(331)।

प्रथम काल में नियन से शंख, चीटी, खटमल, गोमक्षिका, डांस, मच्छर और कृमि इत्यादि विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते थे।

णत्य असण्णी जीवो, णत्य तहा सामि भिच्च भेदो या

कलह - महाजुद्धादी, ईसा - रोगादिण हु होंति।(332)।

इस काल में असंज्ञी जीव नहीं होते तथा स्वामी और भूत्य का भी भेद नहीं होता। इसी प्रकार नर-नारी कान्ति से रहित और कलह एवं युद्धादिक विरोधकारक भाव भी नहीं होते।

रत्ति - दिणाण भेदो, तिमिरादव - सीद - वेदणा - णिंदा।

परदार - रदी परधण - चोरी या णत्य णियमेण।(333)।

प्रथम काल में नियत से रात-दिन का भेद, अन्धकार, गर्मी व शीत की वेदना, निन्दा, परस्त्रीरमण और परधन हरण नहीं होता।

जिस प्रकार विज्ञान की अपेक्षा पृथ्वी के आदिकाल में वर्षा का अभाव था, उसी प्रकार सुषमासुषमा काल में जल वृष्टि नहीं होती थी। वर्षाभाव में तथा अति उत्तम वातावरण के कारण कृमि, कीट-पतंगा, विषाक्त क्षुद्र जीव जन्तु बिछु आदियों का अभाव था। पृथ्वी आदि अत्यन्त स्वच्छ, पवित्र एवं शोभायुक्त थी। मनवांछित खाद्य सामग्री गृहोपकरण यान-वाहन, पोशाक, दीपक, आदि जीवन-यापन निमित्तक वस्तुओं को यथेष्ठ रूप से देने वाले अनेक कल्पवृक्ष पृथ्वी पर थे।

उस समय भोगभूमि में मनुष्य तथा तिर्यच अत्यन्त सरल, मन्द कषायी होते थे। युद्ध, विग्रह, कलह आदि से रहित होने के कारण जीवन अत्यन्त सुख-शान्ति पूर्ण था। उस काल में मनुष्य की बात ही क्या यहाँ तक कि सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि भी मांस तक नहीं खाते थे।

दीपांग तथा ज्योतिरांग कल्पवृक्षों की तेज इतनी प्रखर थी कि उस ज्योति के कारण आकाशीय ज्योतिषपिण्ड की ज्योति (प्रकाश) भू-पृष्ठ तक नहीं पहुँचती थी अथवा कल्पवृक्ष की ज्योति से उनकी ज्योति मन्द होने के कारण सूर्य, चन्द्र आदि दिखाई ही नहीं देते थे। इसके कारण भोगभूमि में शारीरिक, वातावरण जन्य सुख ही सुख है। यह सब पूर्व जन्मकृत सदाचार, दान, सरलता, नीति-नियमों का फल है।

भोगभूमि के मनुष्यों का वर्णन -

जमलाजमल-पसूदा, वर-वेंजण-लक्खणेहि परिपुण्णा।

बदर-पमाणाहारं, अद्भुत भत्तेसु भुंजंति।(334)

इस काल में युगल-युगल रूप से उत्पन्न हुए मनुष्य उत्तम व्यंजनों (तिल इत्यादिक) और चिन्हों (शंख, चक्र इत्यादिक) से परिपूर्ण होते हुए अष्टम भक्त में अर्थात् चौथे दिन बेर के बराबर आहार ग्रहण करते हैं।

भोगभूमि काल में सन्तानों की उत्पत्ति पिता-माता के जीवन के अन्तिम समय में होती है। दीर्घ जीवनकाल में सन्तान की उत्पत्ति कदापि नहीं होती है। एक साथ जुगल रूप से (जोड़ा से) भाई-बहन जन्म ग्रहण करते हैं। दोनों के जन्म के उपरान्त पिता-माता की मृत्यु हो जाती हैं। दोनों भाई-बहन प्रकृति की गोद में निरापद रूप से निर्भीक रूप से पलते-पोसते एवं जीवनयापन करते हैं। उनका शरीर अत्यन्त मनोहर, सुसंगठित, दृढ़ होता है।

भोग-भूमिज मनुष्यों की आयु तथा शरीर की ऊँचाई-

तस्सिं काले छच्चिय, चाव-सहस्साणि देह-उस्सेहो।

तिणि पलिदोवमाई, आऊणि णराणं णारीण।(335)

इस काल में पुरुष और स्त्रियों के शरीर की ऊँचाई छह हजार धनुष तथा आयु तीन पल्योपमप्रमाण होती है।

उत्तम जलवायु, उपर्युक्त वातावरण, योग्य पिता-माता, पुष्टिकर भोजन के कारण तथा पूर्व उपार्जित पुण्य कर्म के कारण भोग-भूमि में उत्पन्न होने वाले पूर्ण वयस्क स्त्री पुरुषों के शरीर की ऊँचाई तीन कोस (छह मील या, छह हजार धनुष) प्रमाण होती है। उनकी आयु तीन पल्य (असंख्यात करोड़, अरब वर्ष) होती है।

जीवन में वे लोग कभी भी रोग-जनित कष्ट अनुभव नहीं करते हैं। किशोरावस्था से लेकर मृत्यु तक कल्पवृक्ष से प्राप्त विभिन्न भोग-उपभोग को सुखपूर्वक भोगते हुए षोडष (सोलह वर्ष) वयस्क कुमार के समान सदैव जीवन-यापन करते हैं।

भोग-भूमिज जीवों के शरीर संगठन-

सुषमासुषमा काल में पुरुष और स्त्रियों में से प्रत्येक के पृष्ठ भाग में दो-

सौ छप्पन हड्डियां होती हैं।

भिणिणंद-णील-केसा, णिरुवम-लावण्य-रुव- परिपुण्णा।

सुइ-सायर-मञ्जगया, णीलुप्पल-सुरहि-णिस्सासा।(337)

इस काल में मनुष्य भिन्न इन्द्रनील मणि सदृश केश वाले, अनुपम लावण्यरूप से परिपूर्ण, सुखसागर के मध्य में मग्न, और नील कमल के समान सुगंधित निश्वास वायु से युक्त होते हैं।

तवभोग-भूमि-जादा, णव-णाग-सहस्स-सरिस-बल-जुत्ता।

आरत्त-पाणि - पादा, णवचंपय - कुसुम - गंधडा।(338)

मद्व - अञ्जाव - जुत्ता, मंदकसाया सुसील - संपण्णा।

आदिम - संहणण - जुदा, समचउरस्संग - संठाणा।(339)

बाल-रवी सम-तेया, कवलाहार वि विगद-णीहारा।

ते जुगल-धम्म- जुत्ता, परिवारा पत्ति तक्काले।(340)

उस भोग-भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य नौ हजार हाथियों के सदृश बल से युक्त किंचित् लाल हाथ-पैर वाले, नव चम्पक के फूलों की सुगन्ध से व्याप्त, मार्दव एवं आर्जव गुणों से सहित, मन्दकषाय, सुशीलतापूर्ण आदि के अर्थात् वज्रवृषभनाराच संगठन से युक्त, समचतुरस्त्र शरीर संस्थान वाले उगते हुए सूर्य के सदृश तेजस्वी, कवलाहार को करते हुए भी मल-मूत्र से रहित और युगलधर्म से सहित होते हैं। इस काल में नरनारी के अतिरिक्त अन्य परिवार नहीं होता है।

भोग-भूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य का शरीर वज्र के समान सुदृढ़ होता है। उनके शरीर के अस्थिपंजर वज्र के समान दृढ़ एवं वज्र के वेस्टन से बँधे रहते हैं। वे कभी भी लघुशंका एवं दीर्घशंका नहीं जाते हैं।

भोग-भूमि में असामाजिक जीवन-

गाम-ण्यरदि सव्यं, ण होदि ते होति दिव्य-कल्पतरु।

णिय-णिय-मण-संकप्पिद-वत्थूणि देति जुगलाण।(341)

इस समय वहाँ पर गाँव व नगरादिक सब नहीं होते, केवल वे सब कल्पवृक्ष होते हैं जो युगलों को अपने-अपने मन की कल्पित वस्तुओं को दिया करते हैं।

जिस प्रकार आधुनिक, ऐतिहासिक-विज्ञ मानते हैं कि आदिम काल में मनुष्य

प्रकृति की गोद में स्वतंत्र रूप से विचरण करते थे। उस समय में सामाजिक जीवन के अभाव से परिवार, ग्राम, नगरादि का संगठन नहीं हुआ था। व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति वैभव, पशु, वनस्पति आदि नहीं थी। जिस प्रकार वर्तमान में सूर्य किरण प्राण वायु, जलादि प्राकृतिक सम्पत्ति सर्वसाधारण के लिए व्यवहार्य वस्तु है उसी प्रकार प्राचीन काल में प्राग् ऐतिहासिक भोग-भूमि काल में उपर्युक्त व्यवस्था थी। मनवांछित सम्पूर्ण जीवनयापन सामग्री को देने वाले दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। उससे बिना परिश्रम के केवल इच्छामात्र से इच्छित सामग्री उपलब्ध हो जाती थी। इसलिए उस समय में कृषि, वाणिज्य, सेवा, शिल्पादि जीवन-यापन कार्य (कर्म) नहीं था। इस अपेक्षा आधुनिक इतिहास एवं जैन प्राचीन इतिहास में समानता है। परन्तु सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से देखने पर आकाश पाताल का अन्तर है क्योंकि ऐतिहासिक मानते हैं कि प्राचीन आदिम काल में मनुष्य असभ्य, बर्बर, कच्चा मांस भक्षी, नग्न, सभ्य-भाषादि से रहित होते थे। परन्तु सत्य तथ्य यह है कि सामाजिक, पारिवारिक जीवन यापन से रहित होते हुए भी वे लोग सभ्य, अत्यन्त सुन्दर मनुष्य शरीर को धारण करने वाले, कल्पवृक्ष से प्राप्त उत्तम-उत्तम परिधान धारण करने वाले, सुवर्ण रत्न निर्मित अलंकार, किरीट, कुण्डल आदि से अलंकृत शरीर वाले, अमृतोपम कल्पवृक्ष से प्राप्त भोजन करने वाले, तथा अनेक भोगोपभोग से जीवनयापन करने वाले भोग-भूमिज मनुष्य होते थे। मेरी पुस्तक में विभिन्न सन्दर्भ की अपेक्षा मैंने (लेखक) आधुनिक एवं प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के बारे में एक तुलनात्मक समीक्षा की है उसका जिज्ञासु पाठक अवलोकन करें।

भोग-भूमि में भोग विलासिता

भोग - भूमिजों की श्रोत्र इन्द्रिय गीत श्रवण में, चक्षु रूप में, ध्राण सुन्दर सौरभ में, जिह्वा विविध प्रकार के रसों में और स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्श में रमण करती है।

इस प्रकार परस्पर में आसक्त हुए वे युगल नर-नारी उत्तम भोग सामग्री के निरन्तर सुलभ होने पर भी इन्द्रिय विषयों में तृप्ति को नहीं पाते।

जुगलाणि अणंतगुणं, भोगं चक्कहर-भोग-लाहादो।

भुंजति जाव आउं, कदलीघादेण रहिदाणि।(357)।

ये भोग-भूमिजों के युगल कदलीघातमरण से रहित होते हुए आयु पर्यन्त चक्रवर्ती

के भोग समूह की अपेक्षा अनन्त गुणे भोग को भोगते हैं।

कण्डुम-दिण्ण-वस्तु, घेतूण विकुच्चणाए वहुदेहे।

कादूणं ते जुगला, अणेय-भोगाई भुंजंति।(358)।

ये युगल कल्पवृक्षों से दी गई वस्तुओं को ग्रहण करके और विक्रिया से बहुत से शरीरों को बनाकर अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हैं।

पुरिसा वर-मउड-धरा, देविंदादो वि सुंदरायारा।

अच्छर-सरिसा इत्थी, मणि-कुंडल-मंडिय-कवोला।(359)।

वहाँ पर उत्तम मुकुट को धारण करने वाले पुरुष इन्द्र से भी अधिक सुन्दराकार और मणिमय कुण्डलों से विभूषित कपोलों वाली स्त्रियाँ असराओं के सदृश होती हैं।

मुकुट, कुण्डल, हार, मेखला, प्रालम्ब, ब्रह्मसूत्र, अंगद और कटक इत्यादि भूषण भोग-भूमिजों के स्वभाव से हुआ करते हैं।

भोग-भूमि में कुण्डल, अंगद, हार, मुकुट, केयूर, पट्ट, कटक, प्रालम्ब, सूत्र, नूपुर दो मुद्रिकाएँ, मेखला, असि (करवाल), छुरी, ग्रैवेयक और कर्णपूर ये सोलह आभूषण पुरुषों के होते हैं। इनमें से छुरी तथा करवाल से रहित शेष चौदह आभरण स्त्रियों के होते हैं।

कडा, कटिसूत्र, नूपूर, किरीट, प्रालम्ब, सूत्र, मुद्रिका, हार, कुण्डल, मुकुट, अर्धद्वार, चूडामणि, ग्रैवेय, अंगद, छुरी और तलवार ये सोलह आभरण पुरुषों के तथा छुरी तथा तलवार से रहित शेष चौदह आभरण स्त्रियों के होते हैं। (पाठान्तर)।

जिस क्षेत्र में एवं जिस काल में भोग की प्राधान्यता रहती है उसको भोग-भूमि कहते हैं। पूर्व संचित पुण्य के कारण भोग-भूमिज मानव बिना परिश्रम किए कल्पवृक्षों से भोग उपभोग की विविध प्रकार की उत्कृष्ट सामग्री प्राप्त करके पूर्ण जीवन सुखमय बिताते हैं। उस समय में रोगादि तथा अकाल मरण आदि से रहित होकर दोनों स्त्री-पुरुष भोग करते हुए जीवन-यापन करते हैं। कल्पवृक्षों से सहज प्राप्त विभिन्न सुन्दर पोषाक एवं अलंकार से विभूषित होकर दोनों स्वामी-स्त्री प्रेम प्रीति से सहवास करते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक लोग बताते हैं कि प्राग्-ऐतिहासिक काल में मनुष्य वस्त्र अलंकार से रहित होकर नग्न रहते थे; उदर पोषण के लिये पर्याप्त शुद्ध पक्क शाकाहार भी नहीं मिलता था जिस कारण वे

लोग कच्चा मांसाहार करते थे परन्तु यह बात सत्य तथ्यपूर्ण नहीं है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करेंगे तो प्राचीन कालीन मनुष्य सुख समृद्धि से जीवन-यापन करते थे यह सिद्ध हो जायेगा। सन्दर्भ के अनुसार इसी किताब में आगे इस बारे में विशेष प्रकाश डालूँगा वहाँ से पाठक देखने का कष्ट करें। यदि विशेष जानना है तो मेरे द्वारा लिखित 'विश्व विज्ञान रहस्य' का अवलोकन करें।

भोग-भूमि में उत्पन्न होने का कारण-

भोग भूमि में वे सब जीव उत्पन्न होते हैं जो मिथ्यात्व भाव से युक्त होते हुए भी मंदकषायी हैं, पैशुन्य एवं असूयादि गुणों से रहित हैं, मांसाहार के त्यागी हैं, मधु, मद्य और उदुम्बर फलों के भी त्यागी हैं, सत्यवादी है, अभिमान से रहित है, वेश्या और परस्त्री के त्यागी हैं, गुणियों और गुणों में अनुरक्त हैं, आधीन होकर जिनपूजा करते हैं, उपवास से शरीर को कृश करने वाले हैं, आर्जवादि से सम्पन्न है तथा उत्तम एवं विविध प्रकार के योगों से युक्त अत्यन्त निर्मल संयम के धारक, और परिग्रह रहित, ऐसे पात्रों को भक्ति से आहार दान देने में तत्पर हैं।

आहाराभ्य-दाणं विविहोसह-पोत्थयादि-दाणं च।

पत्त-विसेसे दाढूण भोग भूमीए जायंति।(371)

शेष कितने ही मनुष्य आहारदान, अभयदान, विविध प्रकार की औषध तथा ज्ञान के उपकरण पुस्तकादि के दान को देकर भोग भूमि में उत्पन्न हुए हैं।

कोई पात्र विशेषों को दान देकर और कोई दोनों की अनुमोदना करने से तिर्यच भी भोग भूमि में उत्पन्न हुए हैं।

एवं मिच्छादिद्वी, णिग्गंथाणं जदीण दाणाइं।

दाढूण पुण्ण-पाके, भोगमही केइ जायंति।(370)

इस प्रकार कितने ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य निर्ग्रथ यतियों को दानादि देकर पुण्य का उदय आने पर भोग-भूमि में उत्पन्न हुए हैं।

जो पापी, जिन लिंग को (मुनिव्रत) ग्रहण करके संयम एवं सम्यक्त्व भाव को छोड़ देते हैं और पश्चात् मायाचार में प्रवृत्त होकर चरित्र को नष्ट करते हैं, तथा जो कोई मुर्ख मनुष्य कुलिंगियों को नाना प्रकार के दान देते हैं या उनके भेष को धारण करते हैं, वे भोग-भूमि में तिर्यच होते हैं।

भोग-भूमि, भोग प्रधान भूमि है। वहाँ पर यावत् जीवन निरामय रहकर इच्छा

पूर्वक पंचेन्द्रिय जनित समस्त भोगोपभोग को भोग-भूमिज स्त्री-पुरुष भोगते हैं। इसी प्रकार अवस्था प्राप्त करने के लिये पूर्व कृत सुकृत चाहिए। इसलिए वहाँ कुछ विशेष जीव ही उत्पन्न होते हैं। जो सरल स्वभावी, मंद कषायी, शाकहारी, सत्यवादी, निराभिमानी, सप्तव्यसन से रहित, मुनियों को आहार देने वाला तथा औषध, ज्ञान, अभयदान देने वाले भोग भूमि में उत्पन्न होते हैं। योग्य पात्र को दान देते हुए देखकर पशु यदि अन्तरंग में प्रमोद भाव धारण करता है तो वह पशु भी भोग-भूमि में उत्पन्न होता है। सम्यक्त्व रहित तप से भी भोग-भूमि में जन्म मिलता है।

विशेष द्रव्य, क्षेत्र परिसर के कारण भोग-भूमि में मैथुन सद्भाव से भी नर तथा पशु, जीवन काल में संतान उत्पन्न नहीं करते हैं। केवल नो मास आयु शेष रहने पर गर्भ रहता है। आयु के शेष काल में युगल बालक-बालिका जन्म लेते हैं। पिता छोंक से और माता जम्भाई आने से मृत्यु को प्राप्त होते हैं और इनके शरीर का दाह-संस्कार नहीं होता है। परन्तु कपूर के समान शरीर विलीन हो जाता है। जिस प्रकार केला, बाँस आदि वृक्ष जीवन के शेष काल में एक ही बार फल देकर मर जाते हैं उसी प्रकार भोग-भूमिज मनुष्य और पशु को जानना चाहिए। इसी कारण भोग-भूमिजों की जनसंख्या अतिरिक्त नहीं बढ़ती थी।

पिता-माता के मरने के बाद भी बालक-बालिकायें असहाय होकर मरण को प्राप्त नहीं होते थे। प्रकृति के गोद में उनका पालन-पोषण स्वयमेव होता था। जिस प्रकार वर्तमान काल में मनुष्य की संतान अनेक समय तक दुर्बल, निःसहाय, परालम्ब होकर जीवन-यापन करती हैं उसी प्रकार भोग-भूमि में जीवन-यापन नहीं करते थे केवल शश्या में सोते हुए अंगूठे चूंसकर तीन दिन तक जीवन तत्व प्राप्त करते हैं। तीन दिन से लेकर छः दिन तक बैठने में समर्थ हो जाते थे। छः दिन से लेकर नौ दिन में अस्थिर गमन करने में समर्थ हो जाते थे। नौ दिन से लेकर बारह दिन में स्थिर गमनकरने में समर्थ हो जाते थे। बारह दिन से लेकर पन्द्रह दिन में विभिन्न कलाओं में निपुण हो जाते थे। 15 से लेकर 18 दिन में किशोरावस्था को प्राप्त हो जाते थे। 18 से लेकर 21 दिन में सम्यक् दर्शन प्राप्त करने के लिये समर्थ हो जाते थे तथा उसी अवस्था में पूर्णता को प्राप्त हो जाते थे। इसी प्रकार 21 दिनों में पूर्ण यौवन को प्राप्त होकर आजीवन उसी यौवन-अवस्था में जीवन व्यतीत करते थे। जीवन-अवस्था में कभी भी वृद्धत्व को प्राप्त नहीं होते थे। उनका शरीर

अत्यन्त सुन्दर, सुसंगठित, सुकुमार और सुलक्षण से युक्त रहता था। वर्तमान मनुष्य के शरीर के समान उनका शरीर, रक्त, मांसादि सप्त धातुओं से निर्मित होते हुए भी अस्त्र-शस्त्र से छेदन भेदन नहीं होता था। उनके शरीर अत्यन्त शुभ परमाणुओं से निर्मित होने के कारण उनके शरीर से मल-मूत्र निष्कासन नहीं होता था अर्थात् बहुत बड़ी दीर्घ आयु में भी कभी शौच तथा पेशाब नहीं जाते थे। तेल-मर्दन, प्रसाधन सामग्रिओं के प्रयोग के बिना भी उनका शरीर अत्यन्त शोभायमान रहता था। उस समय सामाजिक जीवन के अभाव से शिक्षादि संस्था के अभाव से भी वे लोग पूर्वजन्म-उपार्जित संस्कार के कारण अक्षर, चित्र, गणित, संगीत, शिल्प आदि 64 कलाओं में निपुण होते थे। (कलाओं का वर्णन 72 कलाओं में किया गया है, पाठकवृद्ध वहाँ से देखने का कष्ट करें) जिस प्रकार भोग-भूमिज नर-नारी सरल-स्वभावी, नम्र, सतत् भोगरत, शाकाहारी होते हैं उसी प्रकार वहाँ के सिंह, व्याघ्र, भेड़ियां, मुर्गा आदि समस्त पशु-पक्षी भी सरल स्वभावी, नम्र, शाकाहारी होते हैं। वर्तमान में जो पशु-पक्षी माँस खाते हैं, ऐसी जाति के पशु-पक्षी भी उस समय में अपनी-अपनी योग्यतानुसार अत्यन्त कोमल मधुर, सुगंधित फल, तृण आदि खाकर सुख से जीवन-यापन करते थे।

भोग-भूमिज में जन्म तथा जीवन-यापन

भोगज-णर-तिरियाणं, णाव-मास-पमाण-आउ-अवसेसे।

ताणं हवंति गव्भा, ण सेस - कालम्भि कइया वि।(375)

भोग - भूमि के मनुष्य और तिर्यज्ञों की नौ मास अयु शेष रहने पर उनके गर्भ रहता है और नाशकाल अर्थात् मृत्यु का समय आने पर (उनके युगल बालक-बालिका) जन्म लेते हैं।

पुण्णम्मि य णवमासे, भू-सयणे सोविज्ञ जुगलाइ।

गव्भादो जुगलेसुं, विकंते सुं मरंति तक्कालं।(376)

नव मास के पूर्ण होने पर नर-नारी युगल भू-शश्या पर सोकर गर्भ से युगल के निकलने पर तत्काल ही मरण को प्राप्त होते हैं।

छिक्केण मरदि पुरिसो, जिंभारभेण कामिणी दोण्हं।

सारद-मेघव्य तणू, आमूलादो विलीएदि।(377)

पुरुष छींक से और स्त्री जिम्भा (जम्भाई) के आने से मृत्यु को प्राप्त होती है।

उन दोनों के शरीर शरदकालीन मेघ के समान आमूल (पूर्ण) विलीन हो जाते हैं।

भावण - वेंतर - जोइस - सुरेसु जायंति मिच्छ - भाव - जुदा।

सोहम्म - दुगे भोगज - णार - तिरिया सम्म - भाव - जुदा।(378)

मृत्यु के होने पर भोग - भूमिज मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यच, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवों में तथा सम्यदृष्टि मनुष्य, तिर्यच सौर्धर्म युगल में उत्पन्न होते हैं।

भोग - भूमिजों का शारीरिक विकास-

जादाण भोग भूवे, सयणोवरि बालयाण सुत्ताणं।

णिय अंगुद्वय - लिहणे, गच्छन्ते तिणिण दिवसाणि।(379)

भोग - भूमि में उत्पन्न हुए बालकों के शश्या पर सोते हुए अपने अंगूठों के छूसने में तीन दिन व्यतीत होते हैं।

बइसण अत्यिर - गमण, थिर - गमण - कला - गुणेणपत्तेकं।

तारुण्णेण सम्मत - गहण - पाउग्ग तिदिणाइ।(380)

इसके पश्चात् उपवेशन (बैठने), अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कला गुणों की प्राप्ति, तारुण्य और सम्यग्दर्शन ग्रहण करने की योग्यता, इनमें से क्रमशः प्रत्येक अवस्था में उन बालकों के तीन-2 दिन व्यतीत होते हैं।

जादि - भरणेण केई, केई पडिबोहणेण देवाण।

चारणमुणि - पहुदीणं, सम्मतं तत्थ गेण्हंति।(381)

वहाँ पर कोई जीव जाति स्मरण से, कोई देवों के प्रतिबोधित करने से और कोई चारण मुनि आदि के सदुपदेश से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

देवी-देव-सरिच्छा, वत्तीस-पसत्थ-लक्खणेहि जुदा।

कोमल-देहा-मिहुणा, समचउरसंग-संठाणा।(382)

धादुमयंगा वि तहा, छेत्तुं भेत्तुं च ते किरण सक्का।

असुचि-विहीणतादो, मुत्त-पुरीसासवो णत्थि।(383)

वे भोग भूमिज जीव, देव-देवियों के सदृश बत्तीस प्रशस्त लक्षण से सहित सुकुमार देह रूप विभव के धारक, समचतुरस्र संस्थान से संयुक्त होते हैं और उनका शरीर धातुमय होते हुए भी छेदा-भेदा नहीं जा सकता एवं अशुचित्व से रहित होने के कारण इनके शरीर में मूत्र व विष्टा का आस्रव नहीं होता है।

ताण जुगलाण देहा, अद्यं गुद्धदृणं जण-विहीण।
मुह-दंत-नयण-धोवण, णह-कट्टटण-विरहिदा विरेहंति।(384)

उन युगल नर-नारियों के शरीर तेल मर्दन, उबटन और अंजन से तथा मुख दाँत एवं नेत्रों के धोने व नाखूनों के काटने से रहित होते हुए भी शोभायमान होते हैं।

64 कलाओं से युक्त आर्य

अक्षर-आलेक्खेसुं, गणिदे गंधव्व-सिप्प-पहुदीसुं।
ते चउसद्वि-कलासुं होंति सहावेण णिउणयरा।(385)

वे अक्षर, चित्र, गणित, गन्धर्व संगीत और शिल्प इत्यादि चौंसठ कलाओं में स्वभाव से ही अतिशय निपुण होते हैं।

वे सब उत्तम युगल पारस्परिक प्रेम में अत्यन्त मुग्ध रहा करते हैं, इसलिए उनके श्रावक के ब्रत और संयम नहीं होता है।

वे नर-नारी युगल कोयल के समान मधुरमयी, किन्नर के समान कंठ वाले कुल जाति के भेद से रहित, सुख में आसक्त, और दरिद्रय से रहित होते हैं।

भोग भूमिज तिर्यच – (पशु-पक्षी)

तिरिया भोगखिदीए, जुगला जुगला हवंति वर-वण्ण।
सरला मन्दकसाया, पाणाविह-जादि-संजुत्ता।(388)

भोग भूमि में उत्तम वर्ण विशिष्ट, सरल, मन्दकषायी और नाना प्रकार की जातियों वाले तिर्यच जीव युगल-युगल रूप से होते हैं।

भोग-भूमि में गाय, सिंह, हाथी, मगर, शूकर, सारंग, रोझ (ऋश्य), भैंस, वृक्ष (भेड़िया) बन्दर, गवय, तेंदुआ, व्याघ्र, शृगाल, रीछ, भालू, मुर्गा, कोयल, तोता, कबूतर, राजहंस, कोरड, काक, क्रौंच और कंजक तथा और भी तिर्यच होते हैं।

शाकाहारी तिर्यच

जह मणुवाणं भोगा, तह तिरियाणं हवंति एदाणं।
णिय-णिय- जोग्गत्तेण, फल-कंद-तण्णकुरादीणि।(391)

जहाँ जिस प्रकार मनुष्यों के भोग होते हैं उसी प्रकार इन तिर्यचों के भी अपनी-

अपनी योग्यतानुसार फल, कन्द, तृण और अंकुरादि रूप भोग होते हैं।

वग्धादी भूमिचरा, वायस- पहुदी य खेयरा तिरिया।

मंसाहारेण विणा, भुंजंते, सुरतरुण महुर-फलं।(392)

वहाँ व्याघ्रादि भूमिचर और काक प्रभृति नभचर तिर्यच मांसाहार के बिना कल्पवृक्षों का मधुर फल भोगते हैं।

तथा भोग-भूमि में उदय कालीन सूर्य के समान प्रभाव वाले समस्त हरिणादिक तृण-जीवी पशुओं के युगल दिव्य तृणों का भक्षण करते हैं।

सुषमा काल – मध्यम भोग प्रधान काल

चार कोडा कोडी सागरों-प्रमाण सुषमासुषमा काल में पहिले से शरीर की ऊँचाई, आयु, बल, ऋद्धि और तेज आदि हीन-हीन हो जाते हैं।

इस प्रकार उत्सेधादिक के क्षीण होने पर सुषमा नाम का द्वितीय काल प्रविष्ट होता है। उसका प्रमाण तीन कोडा कोडी सागरोपम है।

सुसमस्सादिम्मि णराणुच्छेदो चउ-सहस्स-चावणि।

दो पल्ल- पमाणाऊ, संपुण्णमियंक-सरिस-पहा।(396)

सुषमा काल के आदि में मनुष्यों के शरीर का उत्सेध चार हजार धनुष, आयु दो पल्योपम प्रमाण और प्रभा (शरीर की कान्ति) पूर्ण चन्द्रमा के सदृश्य होती है।

इनके पृष्ठभाग में एक सौ अट्ठाइस हड्डियाँ होती हैं। उस समय अप्सराओं जैसी स्त्रियाँ और देवों जैसे पुरुष होते हैं।

उस काल में मनुष्य समचतुरस्संस्थान से युक्त होते हुए षष्ठ भक्त में अर्थात् तीसरे दिन अक्ष (बेहेडा) फल के बराबर अमृतमय आहार को ग्रहण करते हैं।

शारीरिक विकास

उस काल में उत्पन्न हुए बालकों के शय्या पर सोते हुए अपने अंगुठे के चूसने में पांच दिन व्यतीत होते हैं।

पश्चात् उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कलागुणप्राप्ति, तारुण्य और सम्प्रक्त्यग्रहण की योग्यता, इनमें से प्रत्येक अवस्था में उन बालकों के पाँच-पाँच दिन जाते हैं।

उपर्युक्त इतनी मात्र विशेषता को छोड़कर शेष वर्णन के प्रकार जो सुषमासुषमा काल में कहे गये हैं, उन्हे यहाँ पर भी कहना चाहिए।

तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण सुषमा नामक काल में पहिले से ही उत्सेध, आयु, बल, ऋद्धि और तेज इत्यादिक उत्तरोत्तर हीन-हीन होते जाते हैं।

सुषमा सुषमा अति उत्कृष्ट भोग-भूमि जहाँ पर केवल सुख ही सुख है। उस काल की मर्यादा 4 कोटाकोटी सागर प्रमाण है। $(40000000)2 = 160000000000000$ सागर प्रमाण काल सुषमा सुषमा की अवस्थिति होती है। सागर की परिभाषा सूक्ष्म जटिल एवं अलौकिक गणितिक होने के कारण यहाँ पर नहीं दिया गया है। 'विश्व विज्ञान रहस्य' के प्राचीन एवं अर्वाचीन गणित प्रकरण में दिया गया है। पाठकवृन्द वहाँ से देखने का कष्ट करें। परन्तु स्थूल रूप से सागर प्रमाण काल को जानने के लिए यहाँ पर एक उदाहरण देना अप्रसंग नहीं होगा। मान लीजिए एक वर्ष बराबर एक बिन्दु है तो एक सागर प्रमाण काल एक महासागर में स्थित जल के बिन्दु के बराबर हैं। इसी प्रकार दीर्घकाल व्यतीत होने के बाद उत्तम भोग-भूमि समाप्त हो जाती है। उत्तम भोग-भूमि अर्थात् सुषमा सुषमा काल के प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य की आयु, शरीर की ऊँचाई, बल, तेज वीर्य, ऋद्धि आदि क्रमिक हास होते जाते हैं। उसी प्रकार हास होते-होते जब 4 कोटाकोटी सागर समाप्त हो जाता है तब द्वितीय मध्यम भोग-भूमि प्रारम्भ होती है। जिसका काल प्रमाण तीन कोटाकोटी (9000000000000) सागर प्रमाण होता है। इस काल में शरीर की ऊँचाई 4 मील, आयु दो पल्य प्रमाण होती है। वे लोग दो दिन के बाद तीसरे दिन में बहेड़ा फल के बराबर कल्पवृक्ष से प्राप्त अमृतोपम भोजन करते हैं। जिस प्रकार उत्तम भोग-भूमि में तीन-तीन दिन में विभिन्न अवस्थाओं को अतिक्रम करके 21 दिनों में युवक अवस्था को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार मध्यम भोग-भूमि में पांच-पांच दिन में एक-एक अवस्था को अतिक्रम करके 35 दिन में युवक अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। यावत् जीवन उत्तम भोग-भूमि में वर्णित समस्त भोग-उपभोग को भोगते हुए सुखपूर्वक जीवन-यापन करते हैं।

जग्न्य भोग-भूमि सुषमादुषमा काल-

उत्सेधादिक के क्षीण होने पर सुषमादुषमा काल प्रवेश करता है। उस काल का प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

तत्कालादिम्मि पराणुच्छेहो दो सहस्र-चावाणि।

एक्क-पलिदोवमाऊ, पियंगु- सारिच्छ-वण्ण-धरा।(440)।

उस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की ऊँचाई दो हजार धनुष, आयु एक पल्योपम प्रमाण और वर्ष प्रियंगु फल के समान होता है।

उस काल में स्त्री-पुरुषों के पृष्ठभाग में चौंसठ हड्डियाँ होती हैं तथा नारियाँ असराओं के समान और पुरुष देवों के समान होते हैं।

उस काल में वे मनुष्य समचतुरस्र संस्थान से युक्त होते हुए दिन के अन्तराल से आँखें के बराबर अमृतमय आहार को ग्रहण करते हैं।

शारीरिक विकास-

उस काल में उत्पन्न हुए बालकों के शय्या पर सोते हुए अपने अंगूठे के चूसने में सात दिन व्यतीत होते हैं।

इसके पश्चात् उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कलागुण प्राप्ति, तारुण्य और सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता, इनमें से प्रत्येक अवस्था में क्रमशः सात-सात दिन जाते हैं।

इतनी मात्र विशेषताओं को छोड़कर शेष वर्षन के प्रकार, जो सुषमा नामक काल में कहे गये हैं, वही यहाँ पर भी कहना चाहिए।

भोगखिदीए ण होंति हु, चोरारिष्पहुदि-विविह-बाधाओ।

असि-पहुदि-च्छक्कमा, सीदादप-वाद-वरिसाणि।(410)।

भोग-भूमि में चार एवं शत्रु आदि की विविध बाधायें, असि इत्यादिक छह कर्म और शीत, आतप, वात्या (प्रचण्ड वायु) एवं वर्षा नहीं होती।

काल परिवर्तन के साथ-साथ भोग-भूमि में भी परिवर्तन हुआ। मध्यम भोग-भूमि के बाद जग्न्य भोग-भूमि का आगमन हुआ। जिस काल की अवधि दो कोटाकोटी सागर (4000000000000) प्रमाण है। मनुष्य के शरीर की ऊँचाई दो मील प्रमाण है। अन्य दो भोग-भूमिज मनुष्य के समान जग्न्य भोग-भूमिज मनुष्य सात-सात दिन में एक-एक जीवन की अवस्थाओं को अतिक्रम करते-करते सात अवस्था को 49 दिन में अतिक्रम करके युवावस्था को प्राप्त होते हैं। इस काल में आयु, ऋद्धि आदि हास होते जाते हैं। अन्यान्य भोगादि उपर्युक्त भोग-भूमि के समान जानना चाहिए। कल्पवृक्ष से जीवनोपयोगी समस्त सामग्रियाँ संकल्प मात्र से प्राप्त होने के कारण भोग-भूमि में किसी भी प्रकार की चोरी, डैकेती, कालाबाजारी, लूटपाट, आक्रमण, प्रतिआक्रमण, बैर-विरोध नहीं होता है। असि-मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प सेवादि छहों कर्मों का भी प्रचलन नहीं रहता है।

है। इतना ही नहीं, प्राकृतिक कोप, शीत, उष्ण, झंझावायु, वर्षा आदि भी तीनों भोग-भूमि में नहीं होती हैं। तीनों भोग-भूमियों में नमुष्य तथा पशु विनोद प्रिय, सरल स्वभावी, मानसिक तनाव से रहित, शाकाहारी, निरोग, विलास-प्रिय, क्रीड़ारत, प्रशस्त मन वाले होते हैं। तिर्यच तथा मनुष्य मार्दव आदि गुण से संयुक्त तथा शाकाहारी होने के कारण निश्चित रूप से मृत्यु के उपरान्त यथायोग्य स्वर्ग में ही जाते हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में भी इस विषय सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार पाया जाता है
एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदेवकुरवकाः ॥३०॥

(त.वा.पृ. 349)

एक, दो तीन पल्योपम रित्यतियों को धारनेवाले हैमवतक और हारिवर्षक तथा दैवकुरवक हैं अर्थात्— हैमवत क्षेत्र में रहने वाले जघन्य भोग भूमियों के मनुष्य और पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यचों की उत्कृष्ट आयु दो अद्वापल्य है। देवकुरु में निवास कर रहे उत्तम भोगभूमियों के मनुष्य तिर्यचों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम है। इनकी जघन्य आयु तो एक समय अधिक एक कोटि पूर्व वर्ष और एक समय अधिक एक पल्य तथा एक समय अधिक दो पल्य यथाक्रम से समझ लेना।

विदेह क्षेत्र से उत्तरवर्ती परली ओर के भोगभूमियों की किस प्रकार स्थितियां हैं? यों जिज्ञासा होने पर श्री उमास्वामी महाराज अग्रिम सूत्र को कहते हैं।
तथोत्तराः ॥३१॥

इसी प्रकार उत्तर देशवर्ती जीवों की स्थितियों को समझ लेना चाहिये अर्थात्— पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में भोगभूमियों की स्थिति एक पल्योपम है वहां सर्वदा सुषमदुषमा काल अवस्थित रहता है। पांच मेरु सम्बन्धी रम्यकृ क्षेत्रों में भोगभूमियों दो पल्य की आयु को धारने वाले हैं। यहां सर्वदा सुषमाकाल तदवस्थ रहता है तथा पांच उत्तरकुरुओं में तीन पल्योपम की स्थिति है। यहां सर्वदा सुषमासुषमा काल वर्तता रहता है। यों जम्बूदीप के उत्तर प्रान्त में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भोगभूमियां तदवस्थ हैं।

हैरण्यवतकरम्यकोत्तरकुरवका एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकादि विद्यर्थः त.सू.अ.३सू.३।

इस सूत्र का यह अर्थ है कि हैमवतक आदि के समान ही परली ओर के जीवों की स्थिति है। हैमवतकों के समान हैरण्यवतक जीवों की स्थिति एक पल्योपम

है। हरिवर्ष में रहनेवाले मनुष्य, तिर्यचों के समान रम्यकृ निवासियों की दो पल्योपम आयु स्थिति है। दैवकुरुवकों के समान उत्तरकुरु स्थायी मनुष्य तिर्यच तो तीन पल्योपम स्थिति को धार रहे हैं अर्थात्— भोगभूमियों में विकलत्रय और लब्ध्य पर्याप्तक जीव नहीं पाये जाते हैं। हां, पांचों काय के स्थावर जीव वहां विद्यमान हैं। उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष, सात हजार वर्ष, तीन दिन, तीन हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, यथाक्रम से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति कायिक जीवों की है। इनकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त भी वहां पायी जाती है। जैसे कि उत्तरकुरु में जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्य की है। ये भोगभूमियां मनुष्य या तिर्यच दोनों स्त्री या पुरुष का युगल होकर उपजते हैं। पहिले युगल की स्त्रियां छींक से और पुरुष केवल जंभाई लेने से पूर्ण आयु के अन्त में मर जाते हैं, विद्युत के समान उनका शरीर विधट जाता है। नवीन युगल सात दिन तक अपने अंगूठे का पान करते हुये ऊपर को मुख करके लेटते हैं। पीछे सात दिन तक भूमि में रेंगते रहते हैं। तीसरे सप्ताह में अव्यक्त मधुर भाषण करते हुये गिरते पड़ते पाँवों से चलते हैं। चौते सप्ताह में पाँवों को जमाकर चल लेते हैं। पांचवे सप्ताह में कलागुणों को धारण कर लेते हैं। छठ्टे सप्ताह में तस्तु अवस्था को प्राप्त होकर भोगों को भोगते हैं और सातवें सप्ताह करके सम्यक्त्व ग्रहणकी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। जघन्य भोगभूमियां मनुष्यों का शरीर दो हजार धनुष ऊँचा है। एक दिन बीच में अन्तर देकर एक बार आमले बराबर भोजन करते हैं। मध्यम भोगभूमियां मनुष्यों का शरीर चार हजार धनुष ऊँचा है। दो दिन बीच में अन्तर देकर एक बार बेहड़े समान आहार लेते हैं। यह आहार अतीव गरिष्ठ होता है, जैसे कि, चक्रवर्ती या नारायण, प्रतिनारायण के भोजन को साधारण मनुष्य नहीं पचा सकता है, भोगभूमियों का आहार योग्य द्रव्य, उससे भी कहीं अत्यधिक गरिष्ठ होता है। उत्तम भोगभूमियां मनुष्यों का शरीर छह हजार धनुष यानी तीन कोस ऊँचा है और आठवें भक्त यानी तीन दिन बीच में अन्तर देकर चौथे दिन छोटे बेर तुल्य एक बार आहार लेते हैं। कर्म भूमि के मनुष्यों की अपेक्षा जैसे हाथी, घोड़े, बैल आदि का शरीर जिस क्रम से बड़ा है। हां, गेंहूं, चने, जौ आदि में कोई विशेष अंतर नहीं है। यों देश भेद से इनमें थोड़ा बहुत अब भी अंतर पाया जाता है। जो वनस्पतियां बीज अनुसार उपजती हैं, वे गेंहूं, चना, आम, नींबू, अनार

आदि भोगभूमियों में अवश्य पार्या जाती हैं। भले ही उनका उपयोग नहीं हो। आज कल भी तो लाखों वनस्पतियां वन में यों ही नष्ट हो जाती हैं। बीजरूप संतान उनकी बनी रहती है। भरत, ऐरावत क्षेत्रों में भोगभूमियों के समय भी बीजांकुर न्याय से अनादिकालीन उक्त वनस्पतियां अवश्य थीं। हाँ, कर्मभूमियों के वृक्षों के तारतम्य अनुसार भोगभूमि में मनुष्यों की अपेक्षा वृक्ष महान् (बड़े) हैं। वनस्पतिकायिक कल्पवृक्ष भी हैं। दस प्रकार के पृथ्वी विकार कल्पवृक्ष जघन्य भोगभूमि में दस कोस ऊँचे हैं। मध्यम भोगभूमि में बीस कोस ऊँचे और उत्तम भोगभूमि में तीस कोस ऊँचे वृक्ष हैं। उन कल्पवृक्षों से उत्पन्न हुये भोगों को भोगभूमियां जीव सदा भोगते रहते हैं। मद्यांग जाति के वृक्षों से वे मद्य को प्राप्त कर लेते हैं, जैसे कि, ताड़ वृक्षों से भील ताड़ी को प्राप्त कर लेते हैं। यहां मद्य का अर्थ सुरा (शराब) से नहीं है, किंतु दूध, दहाँ, धी, इक्षुरस, आमरस आदि की सी सुगंधियों को धार युक्त पीने योग्य द्रवद्रव्य है। कामशक्ति का जनक होने से उसको उपचार से मद्य कह दिया जाता है। वादित्रांग जाति के कल्पवृक्षों से मृदंग, ढोल, घंटा, वीणा आदि फल फूल रहे बाजे प्राप्त हो जाते हैं। तीसरे भूषणांग जाति के कल्पवृक्षों से भोग भूमियां फल फूल रहे कड़े, करघनी, हार, कुंडल, अंगूठी आदि अलंकारों को लेकर पहन लेते हैं। चौथे माल्यांग कल्प वृक्षों से चंपा, चमेली, केवड़ा, जुही, गुलाब आदि की फलती फूलती मालाओं या पुष्पों को तोड़कर व्यवहार में लाते हैं। पांचवे ज्योतिरंग कल्प वृक्षों से ऐसे चमकीले पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं जिनसे कि सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र आदि विमानों की कांति भी छिप जाती है। इस ही कारण तीन भोग भूमियों में अभिभूत सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क मंडल का दर्शन नहीं हो पाता है, जैसे कि, दिन में तारामंडल नहीं दिखता है। छठे दीपांग जाति के कल्पवृक्षों से चमकदार फले हुये लाल, हरे, पीले, दीपों को तोड़ लाकर वे अपने महल में धर लेते हैं। सातवें गृहांग जाति के कल्पवृक्ष तो रत्नमय कोठियां, कोट, महल, कमरा आदि रूप करके परिणमते हुये फल जाते हैं। आठवें भोजनांग कल्पवृक्ष तो छह रस युक्त अमृतमय दिव्य आहार रूप होकर फलते हैं। नौवें भाजनांग कल्पवृक्ष सोने, चांदी रत्नों के बने हुये कलश, थाली, कटोरा, डेग आदि रूप फल जाते हैं तथा दसवें वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्षों से अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्रों को वे प्राप्त कर लेते हैं। ये पार्थिव कल्पवृक्ष इन पांचों भरत और ऐरावत क्षेत्रों में भोगभूमि सम्बन्धी व्यवहार काल को निमित्त पाकर उपज जाते हैं। कर्मभूमि सम्बन्धी व्यवहार

काल की प्रवृत्ति होने पर विनश जाते हैं किन्तु स्वर्ग, हैमवतक, देवकुरु, हरिवर्ष, सूर्यविमान, श्री देवी गृह, भवनवासी या व्यंतरों के भवन आदि में ये कल्पवृक्ष सर्वदा बने रहते हैं। आजकल भी प्रायः सभी भोगोपभोगों के उपयोगी पदार्थ इन्हीं एकेन्द्रिय वृक्ष या खानों से उपजते हैं। भूषण या प्रकाश के उपयोगी सुवर्ण पर रल आदि पदार्थ तो खानों से प्राप्त कर लिये जाते हैं। खानों से मिट्टी, पत्थर, कंकड़, लोहे को लाकर सुन्दर, गृह, किले, कोठियां, महल बना दिये जाते हैं। वृक्षों की लकड़ी से किवड़ बन जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि कार्तिक मास में गेंहू बो देने पर हमको वैसाख में फलकर छह या पाँच महिने पश्चात् खेत से गेंहू प्राप्त होता है और उस जाति के कल्पवृक्षों से अन्तर्मुहूर्त में ही नियत अभिलाषित वस्तु की इच्छा अनुसार प्राप्ति हो जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। कदाचित् किसी—किसी व्यक्ति की इच्छा अनुसार तत्क्षण मलस्राव (लघु-दीर्घ शंका) जंभाई लेना, मद (नशा) हो जाना आदि क्रियायें हो जाती हैं। जगत् के सम्पूर्ण कार्य अपने—अपने कारणों द्वारा सम्पादित हो रहे हैं। अन्तर इतना ही है कि कोई कार्य विलम्ब साध्य है तथा पुण्यशालियों के अनेक कार्य क्षिप्र हो जाते हैं। वर्तमान कर्मभूमि में भी उत्पाद प्रक्रिया का तारतम्य देखा जाता है। हथिनी अठारह महिने में प्रसव करती हैं। गर्भधारण के तेरहमास पीछे ऊँटिनी बच्चों को जनती है। घोड़ी बारह महिने में, भैंस दस महिने में, गायें या स्त्रियां नौ मास में अपत्य (संतान) को उपजाती हैं। छिरिया (बकरी) छह महिने में, कुतिया तीन महिने में व्याय जाती हैं। गर्भ स्थिति के पश्चात् मुर्गी दस दिन पीछे अण्डा देना प्रारम्भ कर देती है। कबूतरी गर्भस्थिति के सात दिन पश्चात् प्रसूता हो जाती है। भिन्न-भिन्न ऋतु या न्यारी-न्यारी देश परिस्थिति अथवा विज्ञान प्रयोग प्रक्रिया द्वारा शीतोष्णता अनुसार उक्त काल मर्यादा में न्यूनता, अधिकता भी हो जाती है। विज्ञान प्रक्रिया द्वारा कबूतरी, मुर्गी, आदि का प्रसव शीघ्र भी करा दिया जा सकता है। पदार्थों में अचिंत्य निमित्त—नैमित्तिक शक्तियां भरी हुई हैं। वर्षों के कार्य महिनों में और महिनों के कार्य दिनों में तथा दिनों के कार्य घण्टों में उपज जाते हैं। इस हीनता के तारतम्य अनुसार कल्पवृक्षों से भी उसी प्रकार उचित भोगोपभोग के योग्य पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। कल्पवृक्ष चाहे जो भी हों सभी पदार्थों को नहीं दे सकते हैं। आम के पेड़ पर अमरुद नहीं फलते हैं। इसी प्रकार पुत्र गाय, घोड़ा, हाथी, मकरी, चींटी, या चरखा, खात, कूड़ा, समाचार पत्र, पुस्तके, अस्त्र, शस्त्र, आदि पदार्थों को वे दस जाति

के कल्पवृक्ष नहीं दे सकते हैं क्योंकि पुत्र आदि के उपजाने की उन कल्पवृक्षों में निमित्त – नैमित्तिक शक्तियां या उपादान, उपादेय व्यवस्थायें नहीं हैं जबकि जगत् में पौरुषार्थिक या प्राकृतिक निमय अनुसार कार्योत्पत्ति में अनेक विचित्रतायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। छकड़ों या बैलगाड़ियों द्वारा जो मार्ग महिनों में ही परिपूर्ण किया जाता था रेलगाड़ियों या विमानों द्वारा वह मार्ग दिनों या घंटों में गमन कर लिया जाता है। मिनिटों या सैकिंडों में हजारों कोस दूर समाचार पहुंचा दिये जाते हैं। गुलाब शीघ्र उपजा लिया जाता है। उसका फूल दस गुना बड़ा कर लिया जाता है। प्रयोगों द्वारा नीम की कटुता न्यून कर दी जा सकती है। साझ्य यानी कलम लगा देने से आम, लुकाट, सन्तरों आदि की दशायें परिवर्तित हो जाती हैं। दुर्बल मनुष्य अतिशीघ्र सबल और बलवान् जीव प्रयोगों या औषधियों द्वारा निर्बल किया जा सकता है तथा भूमियां ऋतुयें या पलने, फूलने के व्यवहारकाल उपादान द्रव्य आदि के अनुसार प्राकृतिक नियमों में विलक्षणतायें हैं। बीज बोये जाने से पचास वर्ष पीछे खिरनीका वृक्ष फलता है। अखरोट कदाचित् इससे भी अधिक समय ले लेता है। इमली, कटहल वपन होने के पश्चात् बीस, पच्चीस वर्ष में फलित होते हैं। आप्रफल पांच छह वर्ष के वृक्ष पर ही आ जाते हैं। बीज डालने के दो वर्ष पीछे आड़ या आलू बुखारे ये वृक्ष पर लगा जाते हैं। अरंड एक वर्ष में फल जाता है। बोये पीछे ग्यारह महीने में अरहर पक कर आ जाती है। गैहूँपांच महीने में, बाजरा मक्का तीन महीने में, समा चावल दो महीने में फल दे देते हैं। भूमि में बोये जाने के पश्चात् पोदीना पन्द्रह दिन में, मेथी तीन दिन में और सणी एक दिन में नवीन पत्ते दे देती है। इसी प्रकार कल्पवृक्षों से कुछ मिनिटों में ही नियत पदार्थ उपज जाते हैं। ताड़वृक्ष की छाल ताना वाना पुरे हुये वस्त्र के समान है। कई वृक्षों पर कटोरा कटोरी सरीखे पत्ते या फल लग जाते हैं। तोरई का बाजा बजाया जा सकता है। लौकातुम्बी तो बीन, सितार, तमूरा, आदि में उपयोगी हो रहे हैं। भांग, महुआ, ताड़ी, अंगूर, अफीम, डोड़ा, आदि वृक्ष मदकारक पदार्थों के उत्पादक हैं। गेहूँ, चावल, आम, अमरुल, केला आदि भोक्तव्य पदार्थों के वृक्ष प्रसिद्ध ही हैं। बहुभाग वस्त्र कपास वृक्षों के फूलों से बनाये जाते हैं। दीपक के उपयोगी पदार्थ तो तिल, सरसों के, वृक्षों से या पार्थिव खानों से ही प्राप्त होते हैं। पुदुगलों की रगड़ से चमकनेवाली बिजली बन जाती है। बात यह है कि गम्भीर दृष्टि से विचारने पर कल्पवृक्षों से नियत वस्तुओं की प्राप्ति का सिद्धांत पुष्ट हो

जाता है। विशेषज्ञ पुरुष इसको अनेक अन्य युक्तियों द्वारा भी समझ-समझा सकते हैं। कर्मभूमि में अपुण्यशाली जीवों को जो पदार्थ वर्तमान वृक्ष या खानों द्वारा वर्षों अथवा महीनों में प्राप्त होना दुर्लभ होते हैं, किन्तु यह भोगभूमियों के वृक्ष अन्तर्मुहूर्त में ही उन अधिक सुन्दर अभीष्ट पदार्थ रूप फल जाते हैं। यहां भी आम के वृक्ष से अमरुल या अनार नहीं मिल सकते हैं। उसी प्रकार भोगभूमि में भी वादित्रांग वृक्षों से भोजन या वस्त्र प्राप्त नहीं हो सकते हैं। उपादान उपादेय शक्ति का या निमित्त – नैमित्तिक भाव का कहीं भी अतिक्रमण नहीं हो सकता है। भोगभूमियों में अमृत रस के समान स्वादवाली चार अंगुल ऊंची और मुख की भाप से ही टूट जाय ऐसी कोमल धास उपजती रहती है। गाय, भैंस आदि पशु उस धास को चरते हैं, वहां की भूमियां बड़ी सुन्दर बनी हुई हैं। कहीं-कहीं सीढ़ीवार बावड़ी, सरोवर, नदियां और क्रीड़ापर्वत भी विद्यमान हैं। नदी के किनारों पर रलपूर्ण मिश्रित बालु के ढेर लग रहे हैं। जैसे कि आजकल भी कुछ बालु में भुड़-भुड़ या चांदी के कण, माणिक रेती आदि पायी जाती है। मांस भक्षण नहीं करने वाले और परस्पर में अविरोध रखते हुये वहां पंचेद्रिय तिर्यच जीव भी हैं। चूहे, सर्प, नौला, उल्लू, बगुला आदि तिर्यच और विकलत्रय जीव अथवा असंज्ञी जीव या नपुंसक पंचेद्रिय एवं जलचर त्रस ये भोगभूमि में नहीं पाये जाते हैं। सभी मनुष्य, तिर्यच विनीत, मन्दकषाय, मधुरभाषी, कलाकुशल, अमायाचारशील आदि से संयुक्त हैं। इंष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, स्वेद, ईर्ष्या, मात्सर्य, अनाचार, उन्माद, शरीर-मल, पसीना, चिन्ता, रोग, जरा, कृपणता, भय, आदि से रहित हैं। सर्वथा अष्टादश दोषों से रहित तो जिनेन्द्र ही हैं, फिर भी आजकल के मनुष्य तिर्यचों समान तीव्र रोग, चिन्ता, भय, क्षुधा जरा नहीं होने से देव या भोगभूमियाँ पर निर्जर निर्भय, निरोग कह दिये जाते हैं। कर्मभूमि में मनुष्य तिर्यच या व्रतियों को दान देने से या अनुमोदना करने से जीवों की उत्पत्ति भोगभूमि में होती है। भरत और ऐरावत अतिरिक्त अन्य देवस्थानों या क्षेत्रों में या ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात द्वीपों में सदा एक-सा प्रवर्तन रहता है, हां उत्सर्पणी-अवसर्पणी द्वारा भरत और ऐरावत क्षेत्रों में विशेषतया इनके आर्य खण्डों में कर्मभूमि से भोगभूमि काल से कर्मभूमि काल की परावृत्ति होती रहती है। भरत, ऐरावत, सम्बन्धी विजयार्थ पर्वत और म्लेच्छ खंडों में चौथे काल के आदि, अंत सदृश काल वर्तता है। मोक्षमार्ग चालू नहीं है। आर्य खंड में सुषमासुषमा काल की प्रवृत्ति होने पर म्लेच्छ खंडों

में शरीर पांच सौ धनुष और आयु कोटिपूर्व वर्ष है तथा आर्य खंडों में दुःष्मदुष्मा काल की प्रवृत्ति होने पर विजयार्थ और म्लेच्छ खंडों में शरीर सात हाथ और आयु एक सौ बीस वर्ष हो जाती है। जयन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। श्वास के अठारहवें भाग वाला अन्तर्मुहूर्त नहीं लेना, इससे बड़ा अन्तर्मुहूर्त है ग्रहण करना क्योंकि इन विजयार्द्ध और म्लेच्छ खंडों में लब्धपर्याप्तक मनुष्य नहीं है। बीस कोटाकोटी अध्दा-सागर के कल्प में अठारह कोटा कोटी सागर तो भोगभूमि काल है और केवल दो कोटा कोटी सागर कर्मभूमि रचना का काल है। कर्मभूमि का प्रारम्भ होते ही ये पार्थिव कल्पवृक्ष नष्ट हो जाते हैं। भोगभूमि के प्रारम्भ में पुनः उपज जाते हैं, जैसे कि यहां इस काल में भी कितने ही पर्वत उपजते-विनसते रहते हैं। किन्तु बीज से उपजने वाले वृक्षों की संतान नष्ट नहीं होती है क्योंकि कारण के बिना कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता है। हाँ, मनुष्यों की आयु, अवगाहना आदि के समान वृक्षों की आयु या अवगाहना न्यून अधिक होती रहती है, जैसे कि भोगभूमियां मनुष्य तीन, दो, एक कोस ऊंचे या हाथी छह, पांच, चार, कोस ऊंचे अथवा वृक्ष तीस, बीस, दस, कोस होते हैं, उसी प्रकार घटते-घटते हुये इस समय प्रायः मनुष्य साढ़े तीन हाथ, हाथी दस हाथ, वृक्ष बीस पचास हाथ ऊंचे रह गये हैं। हाँ, किसी पदार्थ में घटी, बढ़ी का तारतम्य अधिक है और किसी में न्यून है। गेहूं, चावलों आदि के वृक्षों में उस वैराशिक के अनुसार हानि या वृद्धि या हानि नहीं होती है। थोड़ा अंतर अवश्य पड़ जाता है। चतुर्निकाय देवों के या अन्यत्र स्थानों पर पार्थिव कल्पवृक्षों के अतिरिक्त वनस्पति कायिक कल्पवृक्ष भी पाये जाते हैं।

प्राक् वैदिक आर्यों के जीविकोपार्जक साधन : कल्पवृक्ष

प्राक् वैदिक काल में जो आर्य लोग रहते थे वे प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुए विशिष्ट वृक्षों से जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक समरत सामग्रियाँ सहज रूप से प्राप्त कर लेते थे। उन वृक्षों को कल्पवृक्ष कहते हैं। ऐसे कल्पवृक्ष दस प्रकार के अनेक थे। इसका वर्णन प्रायः 2000 वर्ष प्राचीन तिलोय पण्णति ग्रंथ में निम्न प्रकार से किया गया है

10 प्रकार के कल्पवृक्ष

पाणं गतूरियं गं भूसणवत्थं ग भोयणं गा या।
आलय वीविय भायण माला तेजंग आदि कप्पतरु।(342)

भोग-भूमि में पानंग, तुर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग आदि कल्पवृक्ष होते हैं।

पानंग-

पाणं मधुर सुसादं छरसेहि जुदं पासत्थमइसीदं।
बत्तीस भेद जुतं पाणंगा देंतितु टिटपुदिटयं।(343)

इनमें से पानंग जाति के कल्पवृक्ष जो कि भोगभूमि में मधुर सुस्वादु, छहों रसों से युक्त, प्रशस्त, अतिशीलतल और तुष्टि एवं पुष्टि को करने वाले ऐसे बत्तीस प्रकार के पेय द्रव्य को दिया करते हैं।

तुर्यांग

तूरंगा वरवीणा पटुपटहम् इंगझल्लरी संख्या।
दुंदुभिभांभेरीकाहलपहुदाइ देंति तूरग्गा।(344)

तुर्यांग जाति के कल्पवृक्ष उत्तम वीणा, पटुपटह, मृदंग, झालर शंख, दुहभि, भम्मा, भेरी काहल इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार के वादित्रों को देते हैं।

भूषणांग-

तरओवि भूसणंगा कंकणकडिसुत्तहरा कैयूरा।
मंजीरकडय कुडलकिरीडमउडादिय देंति।(345)

भूषणांग जाति के कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट इत्यादि आभूषणों को प्रदान करते हैं।

वस्त्रांग-

वत्थंगाणित्तं पडंचीण सुअर खऊमपहु दित्थाणि।
मणणयणाणंदकरं णाणावत्थादि ते देंति।(346)

ये वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्ष नित्य चीन पट एवं उत्तम क्षौम (रेशनी) वस्त्र तथा मन और नयनों को आनन्दित करने वाले नाना प्रकार के वस्त्रादि देते हैं।

भोजनांग-

सोलहविहमाहारं सोलसभेयणि विंजणाणि वि।
चोदसविह सूपाङ्गं खञ्जाणि विगुणचउवण्णि।(347)
सायाणं च पयारे तेसट्टी संजुदाणि तिसयाणि।
रसभेदा तेसट्टी देंति फुण्डं भोयणंदुमा।(348)

भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष सोलह प्रकार का आहार सोलह प्रकार के व्यंजन, चौदह प्रकार के सूप (दाल आदि) चउवन के दुगुणे अर्थात् एक सौ आठ प्रकार के खाद्य पदार्थ, खाद्य पदार्थों के तीन सौ तिरेसठ प्रकार और तिरेसठ प्रकार के रस भेदों को पृथक्-पृथक् दिया करते हैं।

आलयांग-

सत्थिअनंद्यावत्प्यमुहा जे के वि दिव्यपासादा।

सोलसभेदा सम्मा देंति हुते आलयंग दुमा।(349)

आलयांग जाति के कल्पवृक्ष स्वास्तिक और नन्द्यावर्त इत्यादिक जो सोलह प्रकार के रमणीय दिव्य भवन होते हैं, उनको दिया करते हैं।

दीपांग-

दीवंगदुमा साहापवाल फल कुसुममंकुरादीहि।

दीवाइव पञ्चालिदा पासादे देंति उज्जोवं।(350)

दीपांग जाति के कल्पवृक्ष प्रासादों में शाखा, प्रवाल (नवजातपत्र, फल, फूल और अंकुरादि) के द्वारा जलते हुए दीपकों के समान प्रकाश देते हैं।

भाजनांग-

भायणअंगा कंचणबहुरयण विणिम्मिमयाई धवलाई।

भिंगारकलसग्गरिचामर पीठादियं देंति।(351)

भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष सुवर्ण एवं बहुत से रत्नों से निर्मित धवल, झारी, कलश, गागर चामर और आसनादिक प्रदान करते हैं।

मालांग-

वल्ली तरु गुच्छलदुब्भवाण सोलससहस्र भेदाण।

मालंग दुमा देंति हुकुसुमाणं विविह मालओ।(352)

मालांग जाति के कल्पवृक्ष वल्ली तरु गुच्छ और लताओं से उत्पन्न हुए सोलह हजार भेदरूप पुष्पों की विविध मालाओं को देते हैं।

तेजांग-

तेजंगा मञ्जांदिण दिण यर कोडिण किरण संकामा।

णक्खत्त चन्द्र सूरप्पहुदीणं कंति संहरणा।(353)

तेजांग जाति के कल्पवृक्ष मध्यदिन के करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान होते

हुए भी नक्षत्र, चन्द्र और सूर्यादिक की कान्ति का संहरण करते हैं।

ते सबे कण्ठदुमा ण वणप्पदी णो वेंतरा सबे।

णवरि पुठविसरुवा पुण्ण फलं देति जीवाण।(354)

ये सब कल्पवृक्ष न तो वनस्पति ही है और न कोई व्यन्तर देव हैं। किन्तु विशेषता यह है कि ये सब पृथ्वी रूप होते हुए जीवों को उनके पुण्य कर्म का फल देते हैं।

मध्यांग- कल्पवृक्ष से प्राप्त मध्य मादक (नसेली) नहीं है।

मध्यांग मधुमैरेम सीध्वरिष्टास वादिकान्।

रसभेदांस्ततामोदान वितरन्त्यमृतोपमाम्।(936)

इसमें मध्यांग जाति के वृक्ष फैलती हुई सुगन्धि से युक्त तथा अमृत के समान मीठे मधु – मैरेय सीधु, अरिष्ट और आसव आदि अनेक प्रकार के रस देते हैं।

कामोदीपन साधम्यात्, मध्यमित्युपचर्यते।

तारव रसभेदोऽयं यः सैव्यो भोगभूमिजैः।(9/38)

कामोदीप की समानता होने से शीघ्र ही इन मधु आदि को उपचार से मध्य कहते हैं। वास्तव में ये वृक्षों के एक प्रकार के रस हैं जिन्हें भोग – भूमि में उत्पन्न होने वाले आर्य पुरुष सेवन करते हैं।

मदस्य करणं मध्यं पानसौण्डर्यदादतम्।

तद्रवर्जनीयमार्याणामन्तः करण मोहदृम्।(939)

– म.पु.पर्व

मध्यपायी लोग जिस मध्य का पालन करते हैं, वह नशा करने वाला है और अन्तःकरण को मोहित करने वाला है इसलिये आर्य पुरुषों के लिए त्याज्य है।

कल्पवृक्षों का स्वरूप

न वनस्पतयोऽयेते नैव दिव्यैरधीष्ठिताः।

केवल पृथिवीसारास्तन्मयत्वमुपागताः॥

अनादिनिधनाश्चैते निसंगांत् फलदायिनः।

नहि भावस्वभावानामुपाम्भः सुसङ्गतः॥

नृणां दानफलादेने फलन्ति विपुलं फलम्।

यथान्य पादपाः काले प्राणिनामुपारकाः॥

(म.पु. पर्व 9/46-52)

ये सभी अनादि निधन हैं और स्वभाव से ही फल देने वाले हैं। इन वृक्षों का ऐसा स्वभाव ही है इसलिये ये वृक्ष वस्त्र तथा बरतन आदि कैसे देते होंगे इस प्रकार कुतर्क कर इनके स्वभाव में दूषण लगाना उचित नहीं है।

पदार्थों के स्वभाव अनेक प्रकार के होते हैं इसलिए उनमें तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि कहा भी है— “स्वभावोऽतर्कं गोचरः” अर्थात् स्वभाव तर्क का विषय नहीं है।

जिस प्रकार आजकल के अन्य वृक्ष अपने—2 फलने का समय आने पर अनेक प्रकार के फल देकर प्राणियों का उपकार करते हैं, उसी प्रकार उपर्युक्त कल्पवृक्ष भी मनुष्यों के दान के फल से अनेक प्रकार के फल फलते हुये वहाँ के प्राणियों का उपकार करते हैं।

वर्तमान में पशु जगत तथा मानव समाज जीवन यापन करने के लिये वृक्ष पर ही निर्भर हैं। भोजन के लिये मनुष्य आम, केला, नारियल, धान, गेहूँ, बाजरा आदि वनस्पति के ऊपर निर्भर हैं, अर्थात् उनसे खाद्य सामग्री मिलती हैं। वस्त्र के लिये मनुष्य कपास, नीलगिरी, केला, सन आदि वृक्ष के ऊपर निर्भर हैं। गुड़, शक्कर, आदि मधुर द्रव्य गन्ना, खजूर, ताड़ आदि वृक्षों से मिलता है। सुखादु पानीय (पेय पदार्थ) गन्ना, खजूर, नारियल आदि वृक्षों से मिलता है। सुगन्धित, सुखादु रुचिकर मसाले लौंग, इलाची, दालचीनी, काली मिर्ची, मिर्ची, तेज पत्ते आदि वनस्पति से प्राप्त होते हैं। ईंधन सामग्री, लकड़ी आदि पेड़ से ही प्राप्त होते हैं। उष्ण नशीली चाय, काफी आदि वनस्पति से ही प्राप्त होते हैं। दीपक प्रत्यवलित करने योग्य वस्तु यथा तेल, रुई, बनी आदि वनस्पति से ही प्राप्त होते हैं। टायर, टेलिफोन, रेडियो, चप्पल, विभिन्न गृह उपकरण, क्रीड़ोपकरण आदि सामग्री एक प्रकार के वृक्ष के ढूध से ही प्राप्त होती है। उस वृक्ष का नाम है “रबर वृक्ष” जो कि दक्षिण भारत में स्थित है। अमेरिका में भी ऐसे वृक्ष हैं जिन्हें Milk tree (ढूध का पेड़) ब्रेड ट्री (रोटी का पेड़) और light tree (प्रकाश का वृक्ष) आदि नाम से पुकारा जाता है। इन वृक्षों के फल ढूध, रोटी और प्रकाश के काम आते हैं। पेरु देश में एक प्रकार का वृक्ष है जिससे पानी झरता है। ये वायुमण्डल की आर्द्रता को खींचकर संचय करता है। गर्मी के दिन में या उष्ण वातावरण में इन वृक्षों से स्वतः पानी झरता है। अभी भी अनेक क्लान्ति-खिल पथिक शीतल घनी छाया में बैठकर अपनी थकान दूर करते हैं। अनेक वृक्ष मनमोहकारी, सुरभियुक्त,

रंग-बिरंगे, अत्यन्त कोमल सुन्दर पुष्ट मनुष्यों को देते हैं। रोग निवारक, शक्ति वर्धक, बुद्धि वर्धक, रासायनिक औषधि वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। सुगन्धित तेल, रंग, प्रसाधन-द्रव्य आदि वनस्पतियों से मनुष्यों को प्राप्त होते हैं। कुछ खाने के पात्र लकड़ियों से अभी भी बनते हैं। माप करने के पात्र टेबल, कुर्सी, पलंग, अलमारी, खाट आदि वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। घर, दरवाजे, खिड़की, बल्ली, कृषि उपकरण आदि वनस्पतियों से बनते हैं। आत्मरक्षा के लिए लकड़ी, लाठी आदि सामग्री वनस्पति से मिलती हैं। नौका, जहाज, पुल, रथ, बैलगाड़ी, तांगा आदि यान, वाहन लकड़ियों से बनते हैं। ओढ़ने और बैठने योग्य चटाई आदि वनस्पतियों से प्राप्त होती है। कागज, लेखनोपकरण, पेन्सिल आदि वनस्पति से प्राप्त होते हैं। बांसुरी, बीणा, हारमोनियम आदि वाद्योपकरण वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। प्रायः सम्पूर्ण पशु जगत जीवनयापन करने के लिए बहुतायत से वनस्पति पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार वर्तमान में भी आप लोगों को अवगत हुआ कि मनुष्य एवम् पशु जगत वनस्पति के ऊपर विशेष रूप से निर्भर हैं।

इस दृष्टि कोण से विचार करने पर स्पष्ट विदित हो जाएगा कि पहले कुछ विशिष्ट वृक्ष थे जो मनुष्यों एवम् पशुओं को इच्छित वस्तु देते थे। इस्लाम धर्म में ऐसे वृक्षों को दरख्त या तोबे कहा जाता है और क्रिश्चियन धर्म में स्वर्गीय वृक्ष की अभीदा दी गई है।

सच्चा त्यागी

“ले य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुब्बइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ ति वुच्चइ॥”

अर्थ— गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी जो मनुष्य सुन्दर तथा प्रिय भोगों को प्राप्त करके भी उनकी ओर पीठ करता है, अर्थात् उन भोगों से अलिप्त रहता है; इतना ही नहीं अपने अधीन होने वाले भोगों को भी जो छोड़ता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

अध्याय-3

आद्य आविष्कारों एवं आविष्कारों के कर्ता

क्रम-क्रम से तीसरा काल व्यतीत होने पर जब इसमें पल्य का आठवां भाग शेष रह गया तब कल्पवृक्षों की सामर्थ्य घट गयी और ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों का प्रकाश अत्यन्त मन्द हो गया। (पल्य मध्यम असंग्यात वर्ष है)

सूर्य चंद्र का दर्शन—

पुष्पवन्तावथाषाढ्यां पौर्णमास्यां स्फुरत्रभौ।

सायाहेद्धि प्रादुरास्तां तौ गगनोभयभागयोः॥५७॥

तदन्तर किसी समय आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के दिन सायंकाल के समय आकाश के दोनों भागों में अर्थात् पूर्व दिशा में उदित होता हुआ चमकीला चन्द्रमा और पश्चिम में अस्त होता हुआ सूर्य दिखलायी पड़ा। उस समय वे सूर्य और चन्द्रमा ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो आकाशरूपी समुद्र में सोने के बने हुए दो जहाज ही हों अथवा आकाशरूपी हस्ती के गण्डस्थल के समीप सिन्दूर से बने हुए दो चन्द्रक (गोलाकार चिन्ह) ही हों। अथवा पूर्णिमारूपी स्त्री के दोनों हाथों पर रखे हुए खेलने के मनोहर लाख निर्मित दो गोले ही हों। अथवा आगे होने वाले दुःषमा सुषमा नामक कालरूपी नवीन राजा के प्रवेश के लिए जगतरूपी विशाल घर के दरवाजे पर रखे हुए मानों दो स्वर्ण कलश ही हों। अथवा तारारूपी फेन और बुद्ध, मंगल आदि गृहरूपी मगरमच्छों से भरे हुए आकाश रूपी समुद्र के मध्य में सुवर्ण के दो मनोहर जल क्रीड़ा गृह ही बने हों।

1. खण्डोल वैज्ञानिक प्रतिश्रुति कुलकर-

उस समय वहाँ प्रतिश्रुति नाम से प्रसिद्ध पहले कुलकर विद्यमान थे जो कि सबसे अधिक तेजस्वी थे और प्रजाजनों के नेत्र के समान शोभायमान थे अर्थात् नेत्र के समान प्रजाजनों को हितकारी मार्ग बतलाते थे। जिनेन्द्र देव ने उनकी आयु पल्य के दशवें भाग और ऊँचाई एक हजार आठ सौ धनुष बतलायी है। उनके मरतक पर प्रकाशमान मुकुट शोभायमान हो रहा था, कानों में सुवर्णमय कुण्डल चमक रहे थे, वे स्वयं मेरु पर्वत के समान ऊँचे थे इसीलिए उनके वक्षस्थल पर पड़ा मोतियों का हार झरने के समान मालूम होता था। उनका उन्नत और

प्रेष्ठ शरीर नाना प्रकार के आभृषणों की कांति से अतिशय प्रकाशमान हो रहा था, उन्होंने अपने बढ़ते हुए तेज से सूर्य को भी तिरस्कृत कर दिया था। वे बहुत ही ऊँचे थे इसीलिए ऐसे मालूम पड़ते थे मानों जगत् रूपी घर की ऊँचाई को नापने के लिए खड़े किये गये मापदण्ड ही हों। इसके सिवाय वे जन्मान्तर के संस्कार से प्राप्त हुए अवधिज्ञान को भी धारण किये हुए थे इसीलिए वही सबसे उत्कृष्ट बुद्धिमान गिने जाते थे। वे दैदीप्यमान दाँतों की किरणों रूपी जल से दिशाओं का बार-बार प्रक्षालन करते हुए जब प्रजा को सन्तुष्ट करने वाले वचन बोलते थे तब ऐसे मालूम होते थे मानों अमृत का रस ही प्रकट कर रहे हों। पहले कभी नहीं दिखने वाले सूर्य और चन्द्रमा को देख कर भोगभूमिज मनुष्यों को उन्होंने उनको निम्नलिखित स्वरूप बतलाकर भय रहित किया था। उन्होंने कहा— हे भद्रपुरुषों! तुम्हें जो ये दिख रहे हैं वे सूर्य, चन्द्रमा नाम के ग्रह हैं। ये महाकान्ति के धारक हैं तथा आकाश में सर्वदा धूमते रहते हैं। अभीतक इनका प्रकाश ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों के प्रकाश से तिरोहित रहता था। इसीलिए नहीं दिखते थे परन्तु अब कालदोष के वश से ज्योतिरंग वृक्षों का प्रभाव कम हो गया है। अतः ये दिखने लगे हैं। इनसे तुम लोगों को कोई भय नहीं है। अतः भयभीत नहीं होओ। प्रतिश्रुति के इन वचनों से उन लोगों को बहुत ही आश्वासन मिला। इसके बाद प्रतिश्रुति ने इस भरत क्षेत्र में होने वाली व्यवस्था का निरूपण किया। इन धीर-वीर प्रतिश्रुति ने हमारे वचन सुने हैं इसीलिए प्रसन्न होकर उन भोगभूमिजों ने प्रतिश्रुति इस नाम से स्तुति की और कहा कि— अहो महा भाग, अहो बुद्धिमान आप चिरंजीव रहें तथा हम पर प्रसन्न हों क्योंकि आपने हमारे दुःखरूपी समुद्र में नोका का काम किया है अर्थात् हित का उपदेश देकर हमें दुःखरूपी समुद्र से उद्धृत किया है। इसप्रकार प्रतिश्रुति का स्तवन तथा बार-बार सत्कार कर वे सब आर्य उनकी आज्ञानुसार अपनी-अपनी रित्रियों के साथ अपने-अपने घर चले गये।

2. नक्षत्र वैज्ञानिक सन्मति कुलकर

प्रतिश्रुति कुलकर का स्वर्गवास हो जाने पर जब असंग्यात करोड़ वर्षों का मन्वन्तर (एक कुलकर के बाद दूसरें कुलकर के उत्पन्न होने तक बीच का काल) व्यतीत हो गया तब समीचीन बुद्धि के धारक सन्मति नाम के द्वितीय कुलकर का जन्म हुआ। उनके वस्त्र बहुत ही शोभायमान थे तथा वे स्वयं बहुत ही ऊँचे

थे। इसीलिए चलते फिरते कल्पवृक्षों के समान मालूम होते थे। उनके केश बड़े ही सुंदर थे, वे अपने मस्तक पर मुकुट बाँधे हुए थे, कानों में कुण्डल पहिने थे, उनका वक्षस्थल हार से शोभित था, इन सब कारणों से वे अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। उनकी आयु अम्म के बराबर संग्यात वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई एक हजार तीन सौ धनुष की थी। इनके समय में ज्योतिरिंग जाति के कल्पवृक्षों की प्रभा अत्यन्त मंद पड़ गयी थी तथा उनका तेज बुझते हुए दीपक के समान नष्ट होने के सम्मुख ही था।

**न भोऽङ्गणमथापूर्य तारकाः प्रचकाशिरे।
नात्यन्धार कलुषांवेलां प्राप्य तमीमुखे॥(81)**

एक दिन रात्रि के प्रारम्भ में जब थोड़ा-थोड़ा अंधकार था तब तारागण आकाशरूपी अङ्गण को व्याप्त कर सब ओर प्रकाशमान होने लगे।

**अकस्मात् तारका दृष्ट्वा संश्रान्तान् भोगभूभुवः।
भीतिर्विचतया भास प्राणीहत्येव योगिनः॥(82)**

उस समय अकस्मात तारों को देखकर भोगभूमिज मनुष्य अत्यन्त भ्रम में पड़ गये अथवा अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्हें भय ने इतना कम्पायमान कर दिया, जितनी कि प्राणियों की हिंसा मुनिजनों को कम्पायमान कर देती है।

**स सन्मतिरनुध्याय क्षणं प्रावोच तार्यकान्।
नोत्पातः कोऽप्यं भद्रास्त्वागात भियोवशम्॥(83)**

सन्मति कुलकर ने क्षणभर विचार कर उन आर्य पुरुषों से कहा कि, हे भद्र पुरुषों ! यह कोई उत्पात नहीं है इसीलिए तुम व्यर्थ ही भय के वशीभूत मत होओ। ये तारे हैं, ये नक्षत्रों का समूह हैं, ये सप्त प्रकाशमान रहने वाले सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह हैं और यह तारों से भरा हुआ आकाश है। यह ज्योति चक्र सर्वदा आकाश में विद्यमान रहता है। अबसे पहले भी विद्यमान था, परन्तु ज्योतिरिंग जाति के कल्पवृक्षों के प्रकाश से तिरोभूत था। अब उन वृक्षों की प्रभा क्षीण हो गयी है। इसीलिए स्पष्ट दिखाई देने लगा है। आज से लेकर सूर्य, चन्द्र, तारे आदि का उदय, अस्त होता रहेगा और उससे रात-दिन का विभाग होता रहेगा। उन बुद्धिमान सन्मति ने सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, ग्रहों का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना, दिन और अयन आदि का संक्रमण बताते हुए ज्योतिष विद्या के मूल कारणों

का भी उल्लेख किया था। वे आर्य लोग भी उनके वचन सुनकर शीघ्र ही भयरहित हो गये। वास्तव में वे सन्मति प्रजा का उपकार करने वाली कोई सर्वश्रेष्ठ ज्योति ही थे। समीचीन बुद्धि के देने वाले ये सन्मति ही हमारे स्वामी हैं। इसप्रकार उनकी प्रशंसा व पूजा कर वे आर्य पुरष अपने-अपने स्थान पर चले गये।

सामान्यतः: यह प्रसिद्ध है कि गेलेलियो, कोपरनिक्स आदि वैज्ञानिकों ने सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि के बारे में वैज्ञानिक खोजें की और दूसरों को उसके बारे में बताया था; परंतु उपरोक्त प्रकरण से यह सिद्ध हो जाता है कि इन वैज्ञानिकों के अरबों-खरबों वर्ष पहले प्रतिश्रुति एवं सन्मति कुलकरोंने ने सूर्य, चंद्र, नक्षत्र आदि संबंधी खोजें करके दूसरों को उस संबंधी परिज्ञान कराया था। जैनाचार्य यतिवृषभाचार्य ने प्रायः दो हजार वर्ष पहले प्राकृत के प्राचीन ग्रंथ तिलोयपण्णति में सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र के साथ-साथ संपूर्ण ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक एवं गणितीय वर्णन किया है। इसीप्रकार प्रायः एक हजार वर्ष पहले जैनाचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने भी प्राकृत भाषा में जो त्रिलोकसार रचा है उसमें भी उपरोक्त संपूर्ण वर्णन पाया जाता है। इसीप्रकार लोक विभाग, सूर्य प्रज्ञाति, चंद्रप्रज्ञाति, जम्बूद्वीप प्रज्ञाति आदि जैन ग्रंथों में जो हजारों वर्ष पूर्व रचित हैं उनमें भी उपरोक्त विषय का वर्णन गणितीय, वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। इसीप्रकार वैदिक वैज्ञानिकाचार्य आर्यभट्ट, बराहमिहिर, भास्कराचार्य आदि ने भी हजारों वर्ष पहले इस संबंधी वर्णन किया है। आर्यभट्ट ने (376 ई.उ.) में 'आर्य भट्टीयम्' तथा वराहमिहिर ने (500 से 575 ई.उ.) में पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, 'बृहत्जातक' एवं भास्कराचार्य ने (1114 से 1183 ई.उ.) में 'सिद्धान्त शिरोमणि' में वैज्ञानिक एवं गणितीय पद्धति से उपरोक्त विषयों का वर्णन किया है। भास्कराचार्य ने खगोलशास्त्री स्मार्त से सैकड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी की सूर्य प्रदिक्षणा की अवधि नापी थी। पाँचवीं शताब्दी में यह अवधि 365.258756484 दिन निर्धारित की गई।

3. प्राणी वैज्ञानिक क्षेमंकर कुलकर-

असंग्यात करोड़ वर्षों का अन्तरालकाल बीत जाने पर इस भरतक्षेत्र में क्षेमंकर नाम के तीसरे मनु हुए। उनकी भुजाएँ युग के समान लम्बी थीं। शरीर ऊँचा था, वक्षस्थल विशाल था, आभा चमक रही थी, तथा मस्तक मुकुट से शोभायमान था। इन सब बातों से वे मेरु पर्वत से भी अधिक शोभायमान हो रहे थे। इस

महाप्रतापी मनु की आयु अट्ट बराबर थी और शरीर की ऊँचाई आठसौ धनुष की थी।

पुरा किल मृगा भद्राः प्रजानां हस्तलाखताः।

तदा तुं विकृति भेजुव्यात्तास्थाः भीषणस्तवनाः॥(93)

पहले जो पशु सिंह, व्याघ्र आदि अत्यन्त भद्र परिणामी थे जिनका लालन-पालन प्रजा अपने हाथ से ही किया करती थी वे अब इनके समय विकार को प्राप्त होने लगे – मुँह फाड़ने लगे और भयंकर शब्द करने लगे।

तेषा विक्रियया सान्तर्गजया तत्रसुः प्रजाः।

प्रच्छुस्ते तमभ्येत्य मनुं स्थितमविस्मितम्॥(94)

उनकी इस भयंकर गर्जना से मिले हुए विकार भाव को देखकर प्रजाजन डरने लगे तथा बिना किसी आश्चर्य के निश्चल बैठे हुए क्षेमंकर मनु के पास जाकर उनके पूछने लगे।

इमे भद्रमृगाः पूर्व स्वादीयोभिस्तृणाङ्गैः।

रसायनरसैः पुष्टाः सरसां सलिललैरपि॥(95)

अङ्गाधिरोपणैर्ह स्तलात्तलैरपि सान्त्विताः।

अस्माभिरति विश्रव्याः संवसन्तोऽनुपद्रवाः॥(96)

इदानी तु बिना हे तोः शृङ्गैरभिमवन्ति नः।

दष्टाभिर्नखरागैश्च विभित्सन्ति च दारुणा॥(97)

कोऽभ्युपायो महामहाभाग ब्रह्मि न क्षेमसाधनम्।

क्षेमंकरो हि स भवान् जगतः क्षेमचिन्तनैः॥(98)

हे देव ! सिंह, व्याघ्र आदि जो पशु पहले बड़े शान्त थे, जो अत्यन्त स्वादिष्ठ धास खाकर और तालाबों का रसायन के समान रसीला पानी पीकर पुष्ट हुए थे, जिन्हें हम लोग अपनी गोदी में बिठाकर अपने हाथों से खिलाते थे, हम जिनपर अत्यन्त विश्वास करते थे, फिर जो बिना किसी उपद्रव के हम लोगों के साथ साथ रहा करते थे आज वे ही पशु बिना किसी कारण के हमलोगों को सींगों से मारते हैं, दाढ़ों और नखों से हमें विडारण करना चाहते हैं और अत्यन्त भयंकर दिख पड़ते हैं। हे महाभाग ! आप हमारा कल्याण करने वाला कोई उपाय बतलाइये। चूँकि आप सकल संसार का क्षेम-कल्याण सोचते रहते हैं इसीलिए सच्चे क्षेमंकर

। इस प्रकार उन आर्यों के वचन सुनकर क्षेमंकर मनु को भी उनमें मित्र भाव पैदा हो गया और वे कहने लगे कि आपका कहना ठीक है। ये पशु पहले वास्तव में शांत थे परन्तु अब भयंकर हो गये हैं इसीलिए उन्हें छोड़ देना चाहिए। ये काल के दोष से विकार को प्राप्त हो गये हैं अब इनका विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि तुम इनकी उपेक्षा करोगे तो ये अवश्य ही बाधा करेंगे।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परिजहस्तदा मृगान्।

शृङ्गिणो दंस्त्रिणः क्रूरान् शेषैः संवासमाययुः॥(101)

क्षेमंकर के उक्त वचन सुनकर उन लोगों ने सींगवाले और दाढ़वाले दुष्ट पशुओं का साथ छोड़ दिया, केवल निरूपद्रवी गाय-भैंस आदि पशुओं के साथ रहने लगे।

4. सुरक्षा वैज्ञानिक क्षेमधर मनु

असंख्यात करोड़ वर्षों का मन्वन्तर व्यतीत हो गया तब अत्यन्त ऊँचे शरीर के धारक, दोषों का निग्रह करने वाले और सज्जनों में अग्रसर क्षेमधर नाम के चौथे मनु हुए। उन महात्मा की आयु तुटिक प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष की थी।

यदा प्रवत्तता याताः पाकसत्या महाकृधः।

तदा लकुट्यष्टायैः स रक्षाविधिमन्वशात्॥(105)

इनके समय में जब सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट पशु अतिशय प्रबल और क्रोधी हो गये तब इन्होंने लकड़ी लाठी आदि उपायों से इनसे बचने का उपदेश दिया। इन्होंने दुष्ट जीवों से रक्षा करने के उपायों को देकर प्रजा का कल्याण किया था इसीलिए इनका क्षेमधर यह सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ था।

क्षेमंकर एवं क्षेमधर मनु ने गृहपालित एवं जंगली पशुओं का भेद बताकर गृहपालित पशुओं का उपयोग कैसे करना चाहिए एवं हिंसक जंगली पशुओं से रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए इसका प्रशिक्षण दिया था। इसके साथ-साथ उपरोक्त प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त वातावरण, परिस्थिति, काल, क्षेत्र आदि के कारण भावों में भी परिवर्तन होता है; भावों में परिवर्तन होने के कारण उसका प्रतिफल क्रिया में भी दिखाई देता है। जैसे कि अभी भी जहाँ-जहाँ पर पशु-पक्षी, कीट-पतंगों के भोजन, निवास आदि को मनुष्य बिगाड़ता है तो वहाँ के पशु-पक्षी आक्रमणकारी, नरभक्षी, दुष्ट, उदण्ड बन जाते हैं। इसीलिए पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, दूसरें जीवों की रक्षा के लिए और मनुष्य की समृद्धि,

गुरुका के लिए भी प्राकृतिक संसाधन एवं पशु-पक्षियों की सुरक्षा, समृद्धि चाहिए। सामान्यतः डार्विन को प्राणी वैज्ञानिक रूप से प्रसिद्धि मिली है; परन्तु डार्विन के अरबों वर्ष पहले से ही क्षेमंकर, क्षेमधर मनु ने प्राणियों के बारे में ज्ञान करके दूसरों को बताया था। प्रायः सवा दो हजार वर्ष पहले पट्खण्डागम में जैनाचार्य पुष्पदन्त, भूतबली ने, कषायपाहुड़ में गुणधराचार्य ने तथा प्रायः दो हजार वर्ष पहले तिलोयपण्णति में यतिवृषभाचार्य ने और एक हजार वर्ष पहले गोमट्टसार जीवकाण्ड में नेमीचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने वनस्पति से लेकर पशु-पक्षी, मनुष्य, नारकी एवं देवों का क्रमबन्ध, व्यवस्थित, सविस्तार वर्णन किया है।

5. सीमा निर्धारिक सीमकर-

असंख्यात करोड़ वर्षों का मन्वन्तर व्यतीत होने पर प्रजा के पुण्योदय से सीमंकर नाम के कुलकर उत्पन्न हुए। इनका शरीर चित्र-विचित्र वस्त्रों तथा माला आदि से शोभायमान था। जैसे इन्द्र स्वर्ग की लक्ष्मी का उपयोग करता है वैसे ही यह भी अनेक प्रकार की भोगलक्ष्मी का उपभोग करते थे। महाबुद्धिमानों ने इनकी आयु कमल प्रमाण वर्षों की बतलायी है तथा शरीर की ऊँचाई सात सौ पचास धनुष थी। इनके समय में कल्पवृक्ष जब अल्प रह गये और फल भी अल्प देने लगे तथा इसी कारण जब लोगों में विवाद होने लगा तब सीमंकर मनु ने सोच-विचार कर वचनों द्वारा कल्पवृक्षों की सीमा नियत कर दी अर्थात् इस प्रकार की व्यवस्था कर दी कि इस जगह के कल्पवृक्ष से इतने लोग काम लें और उस जगह से कल्पवृक्ष से उतने लोग काम लें। प्रजा ने उक्त व्यवस्था से ही उन मनु का सीमंकर यह सार्थक नाम रख लिया था।

6. सीमा चिन्हित करनेवाला सीमन्धर-

पहले की भाँति मन्वन्तर व्यतीत होने पर सीमन्धर नाम के छठे मनु उत्पन्न हुए। उनकी बुद्धि बहुत ही पवित्र थी, वह नलिन प्रमाण आयु के धारक थे, उनके मुख और नेत्रों की कान्ति कमल के समान थी तथा शरीर की ऊँचाई सात सौ पच्चीस धनुष की थी। इनके समय में जब कल्पवृक्ष बहुत ही थोड़े रह गये तथा फल भी बहुत थोड़े देने लगे और उस कारण से लोगों में भारी कलह होने लगा, कलह ही नहीं एक-दूसरे को बाल पकड़-पकड़कर मारने लगे तब उन सीमन्धर मनु ने कल्पाण स्थापना की भावना से कल्पवृक्षों की सीमाओं को अन्य अनेक

वृक्ष तथा छोटी-छोटी झाड़ियों से चिन्हित कर दिया था।

भोगभूमि काल में प्रकृति की गोद में प्रकृति से प्राप्त भोग—उपभोग सामग्री की प्रचुरता तथा तृष्णा की कमी के कारण प्राकृतिक संसाधन यथा—पृथ्वी, जल, कल्पवृक्ष तथा उनसे प्राप्त सामग्रियों का कोई निश्चित, व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं था। जिसके कारण उस समय में स्वसम्पत्ति—परसम्पत्ति, स्वराष्ट्र—परराष्ट्र आदि का कोई भेदभाव नहीं था; परन्तु कालक्रम से कल्पवृक्ष से प्राप्त सामग्री की कमी के कारण एवं तृष्णा की वृद्धि के कारण जब परस्पर में स्वामित्व को लेकर, सीमा को लेकर परस्पर में कलह होने लगा तब मर्यादा की रक्षा के लिए सुव्यवस्था के लिए, कलह को दूर करने के लिए सीमंधर, सीमंकर मनु ने सीमा निर्धारण किया। यहाँ से ही परिवार-परिवार, ग्राम-ग्राम, राष्ट्र-राष्ट्र का विभाजन हुआ। इससे जो अपनी मर्यादा एवं सीमा में रहकर शांति से स्वयं जीये एवं दूसरों को जीने दिये; उनके लिए यह व्यवस्था तो अच्छी रही लेकिन यह व्यवस्था आगे जाकर भेदभाव, अपना-पराया, स्वराष्ट्र—परराष्ट्ररूपी द्वेष, कलह एवं युद्ध का कारण बनी जो कि पहले से लेकर वर्तमान में भी सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है। इसे दूर करने के लिए ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ अर्थात् विश्वबन्धुत्व, विश्वमैत्री, विश्वव्यवस्था विश्वराजनीति एवं विश्वकानून ही समर्थ होगा।

7. पशु सवारी के उपदेशक विमलवाहन

असंख्यात वर्षों का अन्तर होने के बाद कल्पवृक्षों की शक्ति आदि हर एक उत्तम वस्तुओं में क्रम-क्रम से घटती होने लगी तब मन्वन्तर को व्यतीत कर विमलवाहन नामके सातवें मनु हुए। उनका शरीर भोग लक्ष्मी से आलंजित था, उनकी आयु पद्म प्रमाण वर्षों की थी, शरीर सात सौ धनुष ऊँचा था और लक्ष्मी से विभूषित था। इन्होंने हाथी, घोड़ा आदि सवारी के योग्य पशुओं पर कुठार, अंकुश, प्लान, तोबरा आदि लगाकर सवारी करने का उपदेश दिया था। क्षेमंकर एवं क्षेमधर मनु ने तो हिंस-अहिंस पशु-पक्षियों के भेद, सुरक्षा आदि उपायों की शिक्षा दी थी; परन्तु विमलवाहन कुलकर ने गमनागमन के लिए पशुओं का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए उसकी शिक्षा दी। इसके पहले मनुष्य पैदल ही चलते थे; पशु आदि सवारी का प्रयोग नहीं करते थे। यहाँ से वाहनों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

8. संतान को बताने वाला 'चक्षुष्मान'

असंख्यात वर्षों के अन्तराल के बाद चक्षुष्मान नाम के आठवें मनु उत्पन्न हुए, वे पद्माङ्गप्रमाण आयु के धारक थे और छःसौ पचास धनुष ऊँचे थे। उनके शरीर की शोभा बड़ी ही सुंदर थी। इसके समय से पहले के लोग अपनी संतान का मुख नहीं देख पाते थे। उत्पन्न होते ही माता-पिता की मृत्यु हो जाती थी। परन्तु अब वे क्षणभर पुत्र का मुख देखकर मरने लगे। उनके लिए यह नयी बात थी इसीलिए भय का कारण हुई। उस समय भयभीत हुए आर्यपुरुषों को चक्षुष्मान मनु ने यथार्थ उपदेश देकर उनका भय छुड़ाया था। चूँकि उनके समय माता-पिता अपने पुत्रों को क्षणभर देख सकते थे इसीलिए चक्षुष्मान यह सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ।

9. आशीर्वाद का उपदेशक 'यशस्वान'

करोड़ों वर्षों का अन्तर व्यतीत होने पर यशस्वान नाम के नौवें मनु हुए। वे बड़े ही यशस्वी थे। उन महापुरुष की आयु कुमुद प्रमाण वर्षों की थी। उनके शरीर की ऊँचाई छःसौ पचास धनुष की थी। उनके समय से प्रजा अपनी संतानों का मुख देखने के साथ-साथ उन्हें आशीर्वाद देकर तथा क्षण-भर ठहर कर परलोक गमन करती थी— मृत्यु को प्राप्त होती थी। इनके उपदेश से प्रजा अपनी संतानों को आशीर्वाद देने लगी थी इसीलिए उन्तम संतान वाली प्रजा ने प्रसन्न होकर इनका यश वर्णन किया इसीकारण इनका यशस्वान यह सार्थक नाम पड़ गया।

10. चन्द्र दिखलाकर बच्चों को खेल सिखाने वाला 'अभिचंद्र'

करोड़ों वर्षों का अन्तर होने के बाद अभिचंद्र नामके दसवें मनु उत्पन्न हुए। उनका मुख चन्द्रमा के समान सौम्य था, कुमुदाङ्ग प्रमाण उनकी आयु थी, उनका मुकुट और कुण्डल अंतिशय दैदीयमान था। वे छःसौ पच्चीस धनुष ऊँचे तथा दैदीयमान शरीर के धारक थे। यथायोग्य अवयवों में अनेक प्रकारके आभृषण रूप मंजरियों को धारण किये हुए थे। उनका शरीर महाकान्तिमान था। वे पुण्य के फल से अंतिशय शोभायमान थे इसीलिए फूले-फले तथा ऊँचे कल्पवृक्ष के समान शोभायमान होते थे। उनके समय प्रजा अपनी- 2 संतानों का मुख देखने लगी, उन्हें आशीर्वाद देने लगी तथा रात के समय कौतुक के साथ चन्द्रमा दिखला-दिखलाकर उनके साथ कुछ क्रीड़ा भी करने लगी उस समय प्रजा ने उनके उपदेश से चन्द्रमा के समुख खड़ा होकर अपनी संतानों को क्रीड़ा करायी थी, उन्हें खिलाया

या इसीलिए उनका अभिचंद्र यह सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ।

11. जन आल्हादक 'चन्द्राभ'

करोड़ों वर्षों का अन्तर व्यतीत होने पर च्यारहवें मनु चन्द्राभ हुए। उनका मुख चन्द्रमा के समान था, ये समय की गतिविधि के जानने वाले थे, इनकी आयु नयुत वर्षों की थी ये अनेक शोभायमान सामुद्रिक लक्षणों से युक्त थे। इनका शरीर छःसौ धनुष ऊँचा था तथा उदय होते हुए सूर्य के समान दैदीयमान थे। ये समस्त कलाओं-विद्याओं को धारण किये हुए थे, जनता को अंतिशय प्रिय थे, तथा अपनी मंद मुस्कान से सबको आल्हादित करते थे इसीलिए उदित होते ही सोलह कलाओं को धारण करने वाले लोकप्रिय और चन्द्रिका से युक्त चन्द्रमा के समान शोभायमान होते थे। इनके समय में प्रजाजन अपनी संतानों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न तो होते ही थे, परन्तु कुछ दिनों तक उनके साथ जीवित भी रहने लगे थे, तदन्तर सुखपूर्वक परलोक को प्राप्त होते थे। उन्होंने चन्द्रमा के समान सभी जीवों को आल्हादित किया था। इसीलिए उनके चन्द्राभ यह सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ। भोगभूमि के समय में अंतिम क्षण में संतान को जन्म देकर माता-पिता मरण को प्राप्त हो जाते थे। जिसके कारण उन्हें स्वयं संतान को देखना, पालन पोषण करना, खेल खिलाना, खाना खिलाना आदि कार्य नहीं आते थे। परन्तु कालक्रम के अनुसार जब संतान की उत्पत्ति के बाद भी माता-पिता जीवित रहने लगे तब पूर्व संस्कार के अभाव से प्रसन्नता के परिवर्तन में दुःखी, आश्चर्यचिकित होने लगे। इस अवस्था में चक्षुष्मान से लेकर चन्द्राभ मनु ने संतान के बारे में, उनके पालन पोषण तथा क्रीड़ा आदि के संबंध में प्रजा को विभिन्न प्रकार से प्रशिक्षण दिया था। प्रकारान्तर से माता-पिता का संतान के प्रति कर्तव्य धाय, नर्स, परिचारिका, सेविका का प्रशिक्षण उन्होंने जनता को दिया था।

12. नौका सीढ़ी के उपदेशक मरुदेव

अपने योग्य अन्तर को व्यतीत कर प्रजा के नेत्रों को आनंद देने वाले, मनोहर शरीर के धारक मरुदेव नाम के बारहवें कुलकर उत्पन्न हुए। उनके शरीर की ऊँचाई पाँचसौ पचहत्तर धनुष ऊँची थी। आयु नयुत प्रमाण वर्षों की थी। वे सूर्य के समान दैदीयमान थे अथवा वे स्वयं ही एक विलक्षण सूर्य थे क्योंकि सूर्य के समान तेजस्वी होने पर भी लोग उन्हें सुखपूर्वक देख सकते थे जबकि चकाचौंध के कारण सूर्य को कोई देख नहीं सकता। सूर्य के समान उदय होने पर भी वे

प्रथम शोध-बोध आविकार एवं प्रवक्ता
कभी अस्त नहीं होते थे— उनका कभी पराभव नहीं होता जबकि सूर्य अस्त हो जाता है और जमीन में स्थित रहते हुए भी वे आकाश को प्रकाशित करते थे जबकि सूर्य आकाश में स्थित रहकर ही उसे प्रकाशित करता है।

संतान के साथ सह जीवित आर्य

तस्य काले प्रजा दीर्घ प्रजामिः स्याभिरन्विताः।

प्राणि पुस्तन्मुखालोकतदङ्ग्यश्नोत्सवैः॥(142)

स त दुच्छवसितं यस्मात् तदायत्त्वयजीविकाः।

प्रजा जीवन्ति तेनाभिर्मरुददेव इतीरितः॥(143)

इनके समय में प्रजा अपनी—अपनी संतानों के साथ बहुत दिनों तक जीवित रहने लगी थी तथा उनके मुख देखकर और शरीर को स्पर्श कर सुखी होती थी। वे मरुदेव ही वहाँ के लोगों के प्राण थे क्योंकि उनका जीवन मरुदेव के ही अधीन था अथवा यों समझिए कि वे उनके द्वारा ही जीवित रहते थे इसीलिए प्रजा ने उन्हें मरुदेव इस सार्थक नाम से पुकारा था।

वर्षाग्रम्भ एवं नदियों की उत्पत्ति

नौद्रोणी संक्र मादीनि जलदुर्गेष्वकारयत्।

गिरिदुर्गेषु सोपानपद्धतीः सोऽधिराह ने॥(144)

तस्यैव काले[काले-तस्यैव]कुत्शैलाः कुसुमुद्राः कुनिम्नगाः।

जाताः सांसारमेधाश्च किं राजान इवास्थिराः॥(145)

इन्हीं मरुदेव ने उस समय जलरूप दुर्गम स्थानों में गमन करने के लिए छोटी-बड़ी नाव चलाने का उपदेश दिया था तथा पहाड़ रूप दुर्गम स्थान पर चढ़ने के लिए इन्होंने सीढ़िया बनवायी थीं। इन्हीं के समय में अनेक छोटे-छोटे पहाड़, उपसमुद्र तथा छोटी-2 नदियाँ उत्पन्न हुई थीं तथा नीच राजाओं के समान अस्थिर रहने वाले मेघ भी जब कभी बरसने लगे थे।

मरुदेव कुलकर ने वर्षा के कारण बनी नदी आदि के कारण उस नदी को पार करने के लिए अथवा जलमार्ग से यातायात करने के लिए सर्वप्रथम नौका का प्रयोग बताया था। इसीप्रकार पर्वतारोहण के लिए सीढ़ी आदि बनाकर पर्वत आदि पर चढ़ने का प्रशिक्षण दिया था। कुछ विद्वान मानते हैं नौकायान, समुद्रीयात्रा आदि का परिज्ञान बेबिलोन सुमेर आदि विदेश में प्रारम्भ हुआ था परन्तु प्राचीन

प्रथम शोध-बोध आविकार एवं प्रवक्ता
भारतीय वाङ्मय से सिद्ध होता है कि नारायण कृष्ण एवं पाण्डव नाव से पार होकर घाटकी खण्ड में गये थे। जिस रथ से उन्होंने समुद्र को पार किया था वह रथ स्थल में भी चलता था। यथा—

जलस्थलपथैस्तेषा मनिवारित गोचरा।

विचरन्ति भुवं सर्वा मनोरथस्या रथाः॥23॥

(हरिवंशपुराण)

जल और स्थल के मार्गों से जिन्हें कोई नहीं रोक सका ऐसे मनोरथ के समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथ्वी में विचरण करते हैं।

प्राचीन शास्त्रानुसार उन्होंने जो यात्रा की थी उस यात्रा की दूरी दो लाख महायोजन अर्थात् 800000000 (8×10^8) मील (80 करोड़ मील) है। कुछ विचारकों के अनुसार नौका परिवहन का सूत्रपात छः हजार वर्ष पूर्व सिंधु नदी में हुआ। अंग्रेजी शब्द Navigation (नेविगेशन) नौ परिवहन की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'नवगति' से हुई। इस प्रकार अंग्रेजी शब्द Navi- नेवी (नौ-सेना) भी संस्कृत के 'नौ' से ही विकसित हुआ।

आधुनिक कुछ टैक जल एवं स्थल में भी चलते हैं। अमरीका में एक पूर्व पायलट ने ऐसी कार बनाई है जिसे उड़ाया भी जा सकता है। ऑस्टिन [टेक्सास] निवासी रोजर विलियम्सन द्वारा बनायी गयी यह तिपाहिया कार दो हिस्सों में विभाजित है। रोडरनर नामक इस कार को 80 मील प्रति घंटा की रफ्तार से चलाया जा सकता है।

13. बच्चों से जरायु हटाने के उपदेशक 'प्रसेनजित'

जब कर्मभूमि की स्थिति धीरे-धीरे समीप आ रही थी— अर्थात् कर्मभूमि की रचना होने के लिए जब थोड़ा ही समय बाकी रह गया था तब बड़े प्रभावशाली प्रसेनजित नामके तेरहवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु एकपूर्व प्रमाण थी, शरीर की ऊँचाई पाँचसौ पचास धनुष की थी। प्रसेनजित महाराज मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रजा के तीसरे नेत्र के समान थे। अज्ञानरूपी दोष से रहित थे और उदय होते ही पद्मा-लक्ष्मी के कर ग्रहण से अतिशय शोभायमान थे, इन सब बातों से वे सूर्य के समान मालूम होते थे क्योंकि सूर्य भी मार्ग दिखाने के लिए तीसरे नेत्र के समान होता है, अंथकार से रहित होता है और उदय होते ही कमलों के समूह को आनंदित करता है। इनके समय में बालकों की उत्पत्ति जरायु से लिपटी होने लगी अर्थात् उत्पन्न हुए बालकों के शरीर पर माँस की

एक पतली झिल्ली रहने लगी। इन्होंने अपनी प्रजा को उस झिल्ली के खींचने अथवा फाड़ने आदि का उपदेश दिया था। मनुष्यों के शरीर पर जो आवरण होता है उसे जरायु पटल अथवा प्रसेन कहते हैं। तेरहवें मनु ने उसे जीतने दूर करने आदि का उपदेश दिया था। इसीलिए वे प्रसेनजित् कहलाते थे। अथवा 'प्रसा' शब्द का अर्थ प्रसृति जन्म लेना है तथा 'इन' शब्द का अर्थ स्वामी होता है। जरायु उत्पत्ति को रोक लेती है अतः उसी को प्रसेनजन्म का स्वामी कहते हैं। (प्रसा + इन = प्रसेन) इन्होंने उस प्रसेन को नष्ट करने अथवा जीतने का उपाय बतलाया था इसीलिए इसका नाम प्रसेनजित् पड़ा था।

प्रथम अकेले सन्तान का जन्म

एक मे वा सु जत्पुत्रं प्रसेनजितमत्र सः।

युग्मसृष्टेरिहौर्धमितो व्यपनिनीषया॥166॥

पहले यहाँ युगल संतान उत्पन्न होती थी परन्तु इसके आगे युगल संतान की उत्पत्ति को दूर करने की इच्छा से ही मानो गुरुदेव ने प्रसेनजित् नामक अकेले पुत्र को उत्पन्न किया था।

प्रथम बार पसीना आना

प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदलतवभूषितम्॥(1/2 167)

इसके पूर्व भोगभूमिज मनुष्यों के शरीर में पसीना नहीं आता था। परन्तु प्रसेनजित् का शरीर जब कभी पसीना के कणों से सुशोभित हो उठता था।

विवाह पद्धति का प्रारम्भ

विवाह विधिना वीरः प्रधानकुलकन्या॥ (167 1/2)

वीर मरुदेव ने अपने पुत्र प्रसेनजित् को विवाह विधि के द्वारा किसी प्रधान कुल की कन्या के साथ मिलाया था।

14. बालक के नाभिनाल काटने के उपदेशक 'नाभिराय'

प्रसेनजित् के बाद नाभिराय नाम के चोदहवें कुलकर हुए। ये महाबुद्धिमान् थे। इनमें पूर्ववर्ति युग-श्रेष्ठ कुलकरों ने जिस लोक व्यवस्था के भार को धारण किया था यह भी उसे अच्छी तरह धारण किये हुए थे। इनकी आयु एक करोड़ पूर्व की थी, शरीर की ऊँचाई पांच सौ पच्चीस धनुष थी। इनका मस्तक मुकुट से शोभायमान था और दोनों कान कुण्डल से अलंकृत थे इसीलिए वे नाभिराय

उस मेरु पर्वत के समान शोभायमान हो रहे थे जिसका ऊपरी भाग दोनों तरफ घृमते हुए सूर्य और चन्द्रमा से शोभायमान हो रहा है। उसका मुखकमल अपने सौन्दर्य से गर्वपूर्वक पूर्णमासी के चन्द्रमा का तिरस्कार कर रहा था तथा मंद मुस्कान से जो दाँतों की किरणें निकल रही थी वे उसमें केसर की भाँति शोभायमानहो रही थी। जिस प्रकार हिमवान् पर्वत गंगा के जल-प्रवाह से युक्त अपने तट को धारण करता है उसी प्रकार नाभिराय अनेकों आभरणों से उज्ज्वल और रत्नाहार से भूषित अपने वक्षस्थल को धारण कर रहे थे। वे उत्तम हथेलियों और अङ्गुलियों से सहित जिन दो भुजाओं को धारण किये हुए थे वे ऊपर को फण उठाये हुए सर्पों के समान शोभायमान हो रहे थे तथा बाजूबन्दों से सुशोभित दोनों कन्धे ऐसे मालूम होते थे मानो सर्पसहित निधियों के दो घोड़े ही हो। वे नाभिराज जिस कटिभाग को धारण किये हुए थे वह अत्यन्त सुदृढ़ और स्थिर था, उसके अस्थिबन्ध वज्रमय थे, तथा उनके पास सुंदर नाभि शोभायमान हो रही थी। उस कटिभाग को धारण कर वे ऐसे मालूम होते थे मानो मध्यलोक को धारण कर ऊर्ध्व और अधोभाग में विस्तार को प्राप्त हुआ लोक-स्कन्ध ही हों। वे करधनी से शोभायमान कमर को धारण किये थे जिससे ऐसे मालूम होते थे मानों सब ओर फैले हुए रत्नों से युक्त दीप धारण किये हुए समुद्र ही हों। वे वज्र के समान मजबूत गोलाकार और एक-दूसरे से सटी हुई जिन जंघाओं को धारण किये हुए थे वे ऐसी मालूम होती थी मानो जगतरूपी घर के भीतर लगे हुए दो मजबूत खम्भे ही हों। उनके शरीर का ऊर्ध्व भाग वःक्ष स्थलरूपी शिला से युक्त होने के कारण अत्यन्त वजनदार था। वे जिस चरणतल को धारण किये हुए थे वह सूर्य, चन्द्र, नदी, समुद्र, मच्छ, कछुप आदि अनेक शुभ लक्षणों से युक्त थे। जिससे वह ऐसा मालूम जान पड़ता था मानो यह चर-अचररूप सभी संसार सेवा करने के लिए उसके आश्रय में आ पड़ा हो। इस प्रकार स्वभाविक मधुरता और सुंदरता स बना हुआ नाभिराय का जैसा शरीर था मैं मानता हूँ कि वैसा शरीर देवों के अधिपति इन्द्र को भी मिलना कठिन है।

बालक के नाभिनाल की उत्पत्ति

तस्य काले सुतोत्पत्तौ नाभिनालमदृश्यत्।

स तन्निकर्तनोपायमादिशन्नाभिरित्यमूत्॥(164)

इनके समय में उत्पन्न होते वक्त बालक की नाभि में नाल दिखाई देने लगा

था और नाभिराय ने उसके काटने की आज्ञा दी थी इसीलिए इनका नाम नाभि, यह सार्थक नाम पड़ गया था।

सर्व प्रथम दण्ड व्यवस्था का प्रारम्भ

कालस्वभावभेदेन स्वभावो भिद्यते ततः।

द्रव्यक्षेत्रं प्रजावृत्तवैपरीत्यं प्रजायते ॥140

काल के स्वभाव में भेद होने से पदार्थों का स्वभाव भिन्न रूप हो जाता है और उसी से द्रव्य-क्षेत्र तथा प्रजा के व्यवहार में विपरीतता आ जाती है।

अव्यवस्थानिवृत्यर्थमतः परमतः प्रजाः।

हा मा धिक्कारतो भूताः तिस्रो वै दण्डनीतयः ॥141

इसीलिए हे प्रजाजनो! अब इसके आगे अव्यवस्था दूर करने के लिए 'हा', 'मा' और 'धिक्' ये तीन दण्ड की धारायें स्थापित की जाती हैं।

मर्यादोत्त्वनेच्छ स्य कथंचित्कालदोषतः।

दोषानुरूपमायोज्याः स्वजनस्य परस्य वा ॥142

यदि कोई स्वजन या परजन कालदोष से मर्यादा को लांघने की इच्छा करता है तो उसके साथ दोषी के अनुरूप उक्त तीन धाराओं का प्रयोग करना चाहिए।

नियन्त्रितो जनः सर्वस्त्वृभिर्दण्डं नीतिभिः।

दृष्टिदोषभयत्रस्तो दोषेभ्यो विनिवर्तते ॥143

तीन धाराओं से नियन्त्रण को प्राप्त हुए समस्त मनुष्य इस भय से ब्रस्त रहते हैं कि हमारा कोई दोष दृष्टि में न आ जाये और इसी भय से वे दोषों से दूर रहते हैं।

रक्षणार्थं मनर्थं भ्यः प्रजानामर्थसिद्धये।

प्रमाणामिह कर्तव्याः प्रणीता दण्डनीतयः ॥144

अनर्थों से बचने के लिए तथा प्रजा की भलाई के लिए आप लोगों को ये निश्चित की हुई दण्ड की धाराएँ स्वीकृत करनी चाहिए।

प्रसादेषु यथास्थानं मिथुनान्यकुतोभयम्।

अनुसृत्यावतिष्ठन्त्वस्मदीयमनुशासनम् ॥145

हमारी आज्ञा का समरण कर अब सब युगल निर्भय हो यथास्थान महलों में निवास करें।

इसप्रकार कहने पर सब लोगों ने प्रतिश्रुति कुलंकर के वचन शीघ्र ही स्वीकृत किये और सब बड़ी प्रसन्नता से यथास्थान अपने महलों में रहने लगे। जिस प्रकार गुरु के वचन स्वीकृत किये जाते हैं उसीप्रकार प्रजा ने चूँकि उनके वचन स्वीकृत किये थे इसीलिए वह पृथ्वी पर सर्वप्रथम प्रतिश्रुति इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। यह प्रतिश्रुति कुलंकर पल्य के दशवें भाग तक जीवित रहकर तथा सन्मति नामके पुत्र को उत्पन्न कर आयु के अंत में स्वर्ग चला गया।

ये चौदहों राजा मर्यादा की रक्षा के उपायभूत 'हा मा' और 'धिक्' इन तीन प्रकार की दण्डनीतियों को अपनाते थे। प्रजा के लिए पिता तुल्य थे और अत्यधिक प्रभावशाली थे। जिनसेन स्वामी ने भी आदि पुराण में भोग प्रधान युग की दण्डनीति का वर्णन निम्न प्रकार किया है।

तत्राद्यैः पंचभिः नृणां कुलवृद्धिं कृतागसाम्।

हाकारलक्षणो दण्डः समवस्थापितस्तदा ॥214 पृ. 65

हामाकारश्च दण्डोऽन्यैः पञ्चभिः संप्रवर्तितः।

पञ्चभिस्तु ततः शेषैर्हामाधिक्कारलक्षणः ॥215

उन कुलंकरों में से आदि के पाँच कुलंकरों में अपराधी मनुष्यों के लिए 'हा' इस दण्ड की व्यवस्था की थी अर्थात् खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया। उनके आगे के पाँच कुलंकरों ने 'हा' और 'मा' इन दो प्रकार के दण्डों की व्यवस्था की थी अर्थात् खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया, अब आगे ऐसा नहीं करना। शेष कुलंकरों ने 'हा', 'मा', 'धिक्' इन तीनप्रकार के दण्डों की व्यवस्था की थी अर्थात् खेद है अब ऐसा नहीं कना और तुम्हें धिक्कार है जो रोकने पर भी अपराध करते हो।

शरीरदण्डनं चैव वधबन्धादि लक्षणम्।

नृणां प्रबलदोषणां भरतेन नियोजितम् ॥216

भरत चक्रवर्ती के समय लोग अधिक दोष या अपराध करने लगे थे इसीलिए उन्होंने वध-बन्धन आदि शारीरिक दण्ड की नीति चलायी थी।

भारत की प्रथम वध

तस्यैव काले जलदाः कालिकाकुरुत्विषः।

प्रादुरासन्न भो भागे सान्द्राः सेन्द्रशरासनाः ॥(165)।

(आ.पृ.पृ. 60)

उन्हींके समय आकाश में कुछ सफेदी लिए हुए काले रंग के सघन मेघ प्रकट हुए थे। वे सब मेघ इन्द्रधनुष से सहित थे।

**नभो नीरन्धमारुन्धत्रजजृम्भेऽम्भोमुचां चयः।
कालादुद्भूतसामथैरारन्धः सूक्ष्मपुद्गलैः।(166)**

उस समय काल के प्रभाव से पुद्गल परमाणुओं में मेघ बनाने की सामर्थ्य उत्पन्न हो गई थी, इसीलिए सूक्ष्म पुद्गलों द्वारा बने हुए मेघों के समूह छिद्र रहित लगातार समस्त आकाश को धेर कर जहाँ-तहाँ फैल गये थे।

वे मेघ बिजली से युक्त थे, गम्भीर गर्जना कर रहे थे और पानी बरसा रहे थे जिससे ऐसे शोभायमान होते थे मानो सुवर्ण की मालाओं से सहित, मद बरसाने वाले और गरजते हुए हस्ती ही हों। उस समय मेघों की गम्भीर गर्जना से टकरायी हुई पहाड़ों की दीवालों से जो प्रतिध्वनि निकल रही थी उससे ऐसा मालूम होता था मानो वे पर्वत की दीवालें कृपित होकर प्रतिध्वनि के बहाने आक्रोश वचन (गालियाँ) ही कह रही हों। उस समय मेघमाला द्वारा बरसाये हुए जलकणों को धारण करने वाला-ठण्डा वायु मयूरों के पंखों सा फैलाता हुआ बह रहा था। आकाश में बादलों का आगमन देखकर हर्षित हुए चातक पक्षी मनोहर शब्द बोलने लगे और भौरों के समूह अकस्मात् ताण्डव नृत्य करने लगे। उस समय धारा प्रवाह बरसते हुए मेघों के समूह ऐसे मालूम होते थे मानो जिससे धातुओं के निझर निकल रहे हैं ऐसे पर्वतों का अभिषेक करने के लिए तत्पर हुए हों। पहाड़ों पर कहीं-कहीं गेरु के रंग से लाल हुए नदियों के जो पूर बड़े वेग से बह रहे थे वे ऐसे मालूम होते थे माने मेघों के प्रहार से निकले हुए पहाड़ों के रक्त के प्रवाह ही हों। वे बादल गरजते हुए मोटी धार से बरस रहे थे जिससे ऐसा मालूम होता था मानो कल्पवृक्षों का क्षय हो जाने से शोक से पीड़ित हो रुदन ही कर रहे हैं— रो रोकर आँसू बहा रहे हों। वायु के आवात से उन मेघों से ऐसा गम्भीर शब्द होता था मानों बजाने वाले के हाथ की चोट से मृदङ्ग का ही शब्द हो रहा हो। उसी समय आकाश में बिजली चमक रही थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो आकाशरूपी रङ्गभूमि में अनेक रूप धारण करती हुई तथा क्षण-क्षण में यहाँ-वहाँ अपना शरीर धुमाती हुई कोई नदी नृत्य कर रही हो। उस समय चातक पक्षी ठीक बालकों के समान आचरण कर रहे थे क्योंकि जिस प्रकार बालक पयोधर-माता के स्तन में आसक्त होते हैं उसी प्रकार चातक पक्षी भी पयोधर-

मेघों में आसक्त थे, बालक जिस तरह कठिनाई से प्राप्त हुए पय दूध को पीते हुए तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार चातक पक्षी भी कठिनाई से प्राप्त हुए पेय-जल को पीते हुए तृप्त नहीं होते थे, और बालक जिस प्रकार माता से प्रेम रखते हैं उसी प्रकार चातक पक्षी भी मेघों से प्रेम रखते थे अथवा वे बादल पामर मनुष्यों के समूह के समान आचरण करते थे क्योंकि जिस प्रकार पामर मनुष्य स्त्री में आसक्त हुआ करते हैं उसी प्रकार वे भी बिजलीरूपी स्त्री में आसक्त थे, पामर मनुष्य जिस प्रकार खेती के योग्य वर्षाकाल की अपेक्षा रखते हैं उसी प्रकार वे भी वर्षा काल की अपेक्षा रखते थे, पामर मनुष्य जिस प्रकार महाजड़ अर्थात् महामूर्ख होते हैं उसी प्रकार वे भी महाजल अर्थात् भारी जल से भरे हुए थे (संस्कृत साहित्य में श्लेष आदि के समय इ और ल में अभेद होता है) और पामर मनुष्य जिसप्रकार खेती करने में तत्पर रहते हैं उसी प्रकार मेघ भी खेती कराने में तत्पर रहते थे।

वर्षा होने का वैज्ञानिक कारण—

अबुद्धिपूर्वमुत्सुज्य वृष्टिं सद्यः पयोमुचः।

नैकधा विक्रियां भेजुर्वैचित्र्यात् पुद्गलात्मनः।(178)

यद्यपि वे बादल बुद्धिरहित थे तथापि पुद्गल परमाणुओं की विचित्र परिणति होने के कारण शीघ्र ही बरस कर अनेक प्रकार की विकृति को प्राप्त हो जाते थे।

उस समय मेघों से जो पानी की बैंद्रे गिर रही थी वे मोतियों के समान सुन्दर थीं तथा उन्होंने सूर्य की किरणों के ताप से तपी हुई पृथ्वी को शान्त कर दिया था।

भारत में वनस्पति की प्रथम उत्पत्ति

ततोऽब्दमुक्तवारिक्षमाखानिलात्पगोचरान्।

क्लेदाधारवगाहन्तर्नीहारोष्मत्वलक्षणान्।(180)

गुणानाश्रित्य सामग्रीं प्राप्य द्रव्यादिलक्षणाम्।

संरुद्धान्यद्वारवस्थाप्रभृत्याकणिशास्तिः।(181)

शनै॒शनै॒र्विवृद्धानि क्षेत्रेष्विविरलं तदा।

सस्यान्यकृष्टपच्यानि नानाभेदानि सर्वतः।(182)

प्रजानां पूर्वसुकृतात् कालादपि च तादृशात्।

सुपक्वानि यथाकालं फलदायीनि रेजिरे।(183)

इसके अनन्तर में धों से पड़े हुए जल की आर्द्रता, पृथ्वी का आधार, आकाश का अवगाहन, वायु का अन्तर्नाहार अर्थात् शीतल परमाणुओं का संचय करना और धूप की उष्णता इन सब गुणों के आश्रय से उत्पन्न हुई द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूपी सामग्री को पाकर खेतों में अनेक अंकुर पैदा हुए, वे अंकुर पास-पास जमे हुए थे तथापि अंकुर अवस्था से लेकर फल लगने तक निरन्तर धीरे-धीरे बढ़ते जाते थे। इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार के धान्य बिना बोये ही सब ओर पैदा हुए थे। वे सब धान्य प्रजा के पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के उदय से अथवा उस समय के प्रभाव से ही समय पाकर पक गये तथा फल देने के योग्य हो गये। जिस प्रकार पिता के मर जाने के बाद उनके स्थान पर आरुढ़ होता है उसी प्रकार कल्पवृक्षों का अभाव होने पर ये धान्य उनके स्थान पर आरुढ़ हुए थे।

तात्कालीन वर्षा—

नातिवृष्टिरवृष्टिर्वा तदासीत् किंतु मध्यमा।
वृष्टिस्तत्सर्वधान्यानां फलावाप्तिरविप्लुताः॥(185)॥

उस समय न तो अधिक वृष्टि होती थी और न कम, किन्तु मध्यम दरजे की होती थी इसलिए सब धान्य बिना किसी विघ्न बाधा के फलसहित हो गये थे।

तात्कालिक धान्य—

षाष्ठिकाः कलमब्रीहियवगोधुमकङ्गवः।
श्यामाककोद्रवोदारनीवारवरकास्तथा॥(186)॥
तिलातस्यौ मसूराश्च सर्षपो धान्यजीरकौ।
मुद्रगमाषा ढको राज माष निष्पावकाश्चणाः॥(187)॥
कुलित्थत्रिपुटौ चेति धान्य भेदास्त्वमेष मताः।
सकुसुम्भाः सकर्पासाः प्रजाजीवनहेतवः॥(188)॥

साठी, चावल, कलम, ब्रीहि, जौ, गेहूँ, कांगनी, सामा, कोदी, नीवार (तिनी), बटाने, तिल, अलसी, मसूर, सरसों, धनियाँ, जीरा, मूँग, उड़द, अरहर, रोंसा, मोठ, चना, कुलधी, और तेवरा आदि अनेक प्रकार के धान्य तथा कुसुम्भ (जिसकी कुसुमानी-लाल रंग बनता है) और कपास आदि प्रजा की आजीविका के हेतु उत्पन्न हुए थे।

भूख से व्याकुलित प्रजा—

उपभोग्येषु धान्येषु सत्त्वयेषु तदा प्रजाः।

तदुपायमजानानाः स्वतोऽमूर्मुहुः मुहुः॥(189)॥

इस प्रकार भोगोपभोग के योग्य इन धान्यों के मौजूद रहते हुए भी उनके उपयोग को नहीं जानने वाली प्रजा बार-बार मोह को प्राप्त होती थी वह उन्हें देखकर बार-2 भ्रम में पड़ जाती थी।

कल्पद्रुमेषु कास्त्व्येन प्रतीनेषु निराश्रयाः।

युगस्य परिवर्तेऽस्मिन्न भूवन्नाकुलाः कुलाः॥(190)॥

इस युग परिवर्तन के समय कल्पवृक्ष बिल्कुल ही नष्ट हो गये थे इसलिए प्रजाजन निराश्रय होकर अत्यन्त व्याकुल होने लगे।

तीव्रायामशनायाया मुदीर्णाहारसंज्ञकाः।

जीवनोपायसंशीति व्याकुलीकृत चेतसः॥(191)॥

युगमुख्यमुपासीना नाभि मनुमपश्चिमम्।

तेतं विज्ञापयामासुरिति दीनगिरो नराः॥(192)॥

उस समय आहार संज्ञा के उदय से उन्हें तीव्र भूख लग रही थी परन्तु उनके शान्त करने का कुछ उपाय नहीं जानते थे इसलिए जीवित रहने के संदेह से उनके चिंत अत्यन्त व्याकुल हो उठे। अन्त में वे सब लोग उस युग के मुख्य नायक अन्तिम कुलकर श्री नाभिराज के पास जाकर बड़ी दीनता से इस प्रकार प्रार्थना करने लगे। हे नाथ! मनवांछित फल देने वाले तथा कल्पान्त काल तक नहीं भुलाये जाने के योग्य कल्पवृक्षों के बिना अब हम पुण्यहीन अनाथ लोग किस प्रकार जीवित रहें? हे देव! इस ओर से अनेक वृक्ष उत्पन्न हुए हैं जो कि फलों के बोझ से झुकी हुई अपनी शाखाओं द्वारा इस समय मानों हम लोगों को बुला रहे हों। क्या ये वृक्ष छोड़ने योग्य हैं? अथवा इनके फल सेवन करने योग्य हैं? यदि हम इनके फल ग्रहण करें तो ये हमें मारेंगे या हमारी रक्षा करेंगे? तथा इन वृक्षों के समीप ही सब दिशाओं में ये कोई छोटी-2 झाड़ियाँ जम रही हैं, उनकी शाखाएँ फलों के भार से झुक रही हैं जिससे ये अत्यन्त शोभायमान हो रही हैं। इनका क्या उपयोग है? इन्हें किस प्रकार उपयोग में लाना चाहिए? और इच्छानुसार इनका संग्रह किया जा सकता है अथवा नहीं? हे स्वामिन्! आज यह सब बातें

हम लोग अनभिज्ञ हैं, मूर्ख हैं अतएव दुखी होकर आपसे पूछ रहे हैं इसलिए हम लोगों पर प्रसन्न होइए और कहिए। इस प्रकार हैं आर्य पुरुष! हमें क्या करना चाहिए? इस विषय में वे मूढ़ थे तथा अत्यन्त घबड़ाये हुए थे 'उनसे डरो मत' ऐसा था कहकर महाराज नाभिराज नीचे लिखे वाक्य कहने लगे।

सर्व प्रथम धार्य का प्रयोग

इमे कल्पतरुच्छेदे द्रुमाः पव्वफलानताः।

युष्मानद्यानुगृह्णन्ति पुरा कल्पद्रुमा यथा।(200)

चूंकि अब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये हैं इसलिए पके हुए फलों के भार से नम्र हुए ये साधारण वृक्ष ही अब तुम्हारा वैसा उपकार करेंगे जैसा कि पहले कल्पवृक्ष करते थे।

भद्रकास्तदिमे भोग्याः कार्या न भ्रान्तिरत्र वः।

अमी च परिहर्तव्या दूरतो विषवृक्षकाः।(201)

हे भद्र पुरुषो, ये वृक्ष तुम्हारे भोग्य हैं इस विषय में तुम्हें कोई संशय नहीं करना चाहिए। परन्तु (हाथ का इशारा - कर) इन विष वृक्षों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

इमाश्च नामौषधयः स्तम्बकर्यादयो मताः।

एतासां भोज्यमन्नाद्यं व्यञ्जनाद्यः सुसंस्कृतम्।(202)

ये स्तम्बकारी आदि कोई औषधियाँ हैं, इनमे मसाले आदि के साथ पकाये गये अन्न आदि खाने योग्य पदार्थ अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाते हैं।

स्वभाव मधुराश्चैते दीर्घाः पुण्ड्रेक्षुदण्डकाः।

रसीकृत्य प्रषातव्या दन्तैर्यन्तैश्च पीडिताः।(203)

और ये स्वभाव से ही मीठे तथा लम्बे चौड़े और ईख के पेड़ लगे हुए हैं। इन्हें दांतों से अथवा यन्त्रों से पेलकर इनका रस निकाल कर पीना चाहिए।

सर्व प्रथम मिट्ठी के बरतन का निर्माण

गजकुम्भस्थले तेन मृदा निर्वर्तितानि च।

पात्राणि विविधान्येषां स्थाल्यादीनि दयालुना।(204)

उन दयालु महाराज नाभिराज ने थाल आदि अनेक प्रकार के बरतन हाथी के गण्डस्थलपर मिट्ठी द्वारा बनाकर उन आर्य पुरुषों को दिये तथा इसी प्रकार

बनाने का उपदेश दिया। इस प्रकार महाराज नाभिराज द्वारा बताये हुए उपायों से प्रजा बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने नाभिराज मनु का बहुत ही सत्कार किया तथा उन्होंने उस काल के योग्य जिस वृत्ति का उपदेश दिया था वह उसी के अनुसार अपना कार्य चलाने लगी। उस समय यहाँ भोगभूमि की व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी, प्रजा का हित करने वाले केवल नाभिराज ही उत्पन्न हुए थे इसलिए वे ही कल्पवृक्ष की स्थिति को प्राप्त हुए थे अर्थात् कल्पवृक्ष के समान प्रजा का हित करते थे।

कुलकरों के पूर्वभव:

पूर्व व्यावर्णिता ये ये प्रतिश्रुत्यादयः क्रमात्।

पुरा भवे बभूस्ते विदेहेषु महान्वयाः।(207)

ऊपर प्रतिश्रुति को आदि लेकर नाभिराज पर्यन्त जिन चौदह मनुओं का क्रम-क्रम से वर्णन किया है वे सब अपने पूर्वभव में विदेह क्षेत्रों में उच्च कुलीन महापुरुष थे।

कु शतैः पात्रदानाद्यैरनुष्ठानैर्यथोचितैः।

सम्यक्त्वग्रहणात् पूर्व वधायु र्भोग भूभुवाम्।(208)

पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्वमुपादाय जिनान्तिके।

अत्रोदपत्सत स्वायुरन्ते ते श्रुतपूर्विणः।(209)

उन्होंने उस भव में पुण्य बढ़ानेवाले पात्र दान तथा यथायोग्य व्रताचरणरूपी अनुष्ठानों के द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पहले ही भोगभूमि की आयु बाँध ली थी, बाद में श्री जिनेन्द्र के समीप रहने से उन्हें क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा श्रुतज्ञान की प्राप्ति हुई थी और जिसके फलस्वरूप आयु के अन्त में मरकर वे इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए थे।

प्रथम नगरी अयोध्या की रचना

मरुदेवी और नाभिराज से अलंकृत पवित्र स्थानों में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब वहाँ उनके पुण्य के द्वारा बार-बार बुलाये इंद्र ने एक नगरी की रचना की।

सुरा ससंभ्रमा सद्यः पाकशासन शासनात्।

तां पुरीपरमानन्दाद् व्यधुः सुरपुरी निभाम्॥70

पृष्ठ. 255 सर्ग 12

इंद्र की आज्ञा से शीघ्र ही अनेक उत्साही देवों ने बड़े आनन्द के साथ स्वर्गपुरी

के समान उस नगरी की रचना की। उन देवों ने वह नगरी विशेष सुंदर बनायी थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो इस मध्य लोक में स्वर्गलोक का प्रतिबिम्ब रखने की इच्छा से ही उन्होंने उसे अत्यन्त सुंदर बनाया हो। हमारा स्वर्ग बहुत ही छोटा है क्योंकि यह त्रिदशावास है अर्थात् सिर्फ त्रिदश=तीस व्यक्तियों के रहने योग्य स्थान है। (पक्ष में त्रिदश=देवों के रहने योग्य स्थान हैं) ऐसा मानकर ही मानो उन्होंने सैकड़ों हजारों मनुष्यों के रहने के योग्य उस नगरी (विस्तृत स्वर्ग) की रचना की थी।

प्रथम सामूहिक निवास

इतस्तत्त्वं विक्षिप्तानानीयानीय मानवान्।

पुरी निवेशयामासुर्विच्यासैविविधैः सुराः॥७३

उस समय जो मनुष्य जहाँ-तहाँ बिखरे हुए रहते थे, देवों ने उन सब को लाकर उस नगरी में बसाया और सबके सुविधा के लिए अनेक प्रकार के उपयोगी स्थानों की रचना की।

अयोध्या में प्रथम राजमहल का निर्माण

नरेन्द्र वनं चास्याः सुरैर्मध्ये निवेशितम्।

सुरेन्द्रभवन स्पर्धिंपराद्वर्य विभवान्वितम्॥७४॥

उस नगरी के मध्यभाग में देवों ने राजमहल बनाया था वह राजमहल इन्द्रपुरी के साथ स्पर्धा करने वाला था और बहुमूल्य अनेक विभूतियों से युक्त था। उस नगरी की रचना करने वाले कारीगर स्वर्ग के देव थे। उनका अधिकारी (सूत्रधारा) इन्द्र था और मकान वगैरह बनाने के लिए संपूर्ण पृथ्वी पड़ी थी तब वह नगरी प्रशंसनीय क्यों न हो? देवों ने उस नगरी को वप्र (धूलि के बने हुए छोटे कोट) प्राकार चार मुख्य दरवाजों से सहित, पत्थर के बने हुए मजबूत कोट और परिखा आदि से सुशोभित किया था। उस नगरी का नाम अयोध्या था। वह केवल नाम मात्र से अयोध्या नहीं थी किन्तु गुणों से भी अयोध्या थी। कोई भी शत्रु उससे युद्ध नहीं कर सकते थे इसीलिए उसका वह नाम सार्थक था। [अरिभिः योद्धुं न शक्या—अयोध्या]

साकेत / अयोध्या

उस नगरी का दूसरा नाम साकेत भी था, क्योंकि वह अपने अच्छे-2 मकानों से बड़ी ही प्रशंसनीय थी। उन मकानों पर पताकायें फहरा रही थी जिससे वे

ऐसे जान पड़ते थे मानो स्वर्गलोक के मकानों को बुलाने के लिए अपनी पताका रूपी भुजाओं के द्वारा संकेत ही कर रहे हों। [आकेतः गृहै सह वर्तमाना = साकेत 'सम्+आकेत' – घरों से सहित]

सुकोशला / विनीता / अयोध्या

वह नगरी सुकोशल देश में थी, इसीलिए देश के नाम से 'सुकोशला' इस प्रसिद्धि को भी प्राप्त हुई थी तथा वह नगरी अनेक विनीत, पवित्र, शिक्षित, पढ़े-लिखे, विनयवान् या सभ्य मनुष्यों से व्याप्त थी इसीलिए वह विनीता भी मानी गई थी। उसका एक नाम विनीता भी था।

बभौ सुकोशला भाविविषयस्यालधीयसः।

नाभिलक्ष्मी दधानासौ राजधानी सुविश्रुता॥७९

वह सुकोशल नाम की राजधानी अत्यन्त प्रसिद्ध थी और आगे होने वाले बड़े भारी देश की नाभि [मध्यभाग] की शोभा धारण करती हुई सुशोभित होती थी।

सनृपालयमुद्द्रप्रं दीप्रशालं सखातिकम्।

तद्वयत्यन्नगरारम्भे प्रतिच्छन्दायितं पुरम्॥८०॥

राजभवन, वप्र, कोट, खाई से सहित वह नगर ऐसा जान पड़ता था मानो आगे कर्मभूमि के समय में होने वाले नगरों की रचना प्रारम्भ करने के लिए एक प्रतिबिम्ब नक्शा ही बनाया गया हो।

प्रथम नगर निवास

पुण्येऽहनि मुहूर्ते च शुभयोगे शुभोदये।

पुण्याहघोषणां तत्र सुराश्चकुः प्रमोदिनः॥८०॥

उस अयोध्यानगरी में सब देवों ने मिलकर किसी शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभ योग, शुभ लांग में हर्षित होकर पुण्याहवाचन किया।

अध्यावात्तां तदार्नीं तौ तमयोध्यां महर्द्धिकाम्।

दम्पतीं परमानन्दादा पत्सम्पत्परम्परौ॥८२॥

जिन्हें अनेक संपदाओं की परम्परा प्राप्त हुई थी ऐसे महाराज नाभिराय और मरुदेवी ने अत्यन्त आनंदित होकर पुण्याहवाचन के समय ही उस अतिशय ऋद्धियुक्त अयोध्यानगरी में निवास करना प्रारम्भ किया था।

'इन दोनों के सर्वज्ञ ऋषभदेव पुत्र जन्म लेंगे' यह समझकर इन्द्र ने अभिषेक

पूर्वक उन दोनों की बड़ी पूजा की थी। तदन्तर छः महीने बाद भगवान् ऋषभदेव यहाँ स्वर्ग से अवतार लेंगे ऐसा जानकर देवों ने बड़े आदर के साथ आकाश से रत्नों की वर्षा की। इन्द्र के द्वारा नियुक्त हुए कुबेर ने जो रत्न वर्षा की थी वह ऐसी सुशोभित होती थी मानो वृषभदेव की सम्पत्ति उत्सुकता के कारण उनके आने से पहले ही आ गई हो। ऋषभदेवने जिस अयोध्या में जन्म ग्रहण किया था, उस अयोध्या का निर्माण प्राचीन जैन इतिहास पुराण के उल्लेखानुसार देवों द्वारा सिन्धु होता है परन्तु जैन पुराणों से यह भी सिन्धु होता है यह देवों द्वारा अयोध्या निर्माण जीर्णोद्धार है; क्योंकि जैन हरिवंशपुराण से सिन्धु होता है कि इस नवनिर्माण के पहले ऋषभदेव के पिता राजा नाभिराय का जो राजप्रसाद था वह 81 खण्ड का विशाल राजमहल था।

81 खण्ड का राजप्रासाद

**प्रक्षीणः कल्पवृक्षात्मा मध्येदक्षिण भारतम्।
नाभेरपि एवाभूत प्रासादः पृथिवीमयः॥२**

उस समय दक्षिण भरत क्षेत्र में कल्पवृक्ष रूप प्रासाद अन्यत्र नष्ट हो गये थे परन्तु राजा नाभिराय का जो कल्पवृक्षरूप प्रासाद था वही पृथ्वी निर्मित प्रासाद बन गया था।

**शातकुम्भमयस्तम्भो विचित्रमणिभित्तिकः।
पुष्पविद्वमुक्तादिमालाभिरूप शोभितः॥३॥
सर्वतोभद्रसंज्ञोऽसौ प्रासादः सर्वतो मतः।
सैकाशीतिपदः शालवायुद्यानाद्यलंकृतः॥४॥**

राजा नाभिराय के उस प्रासाद का नाम सर्वतोभद्र था। उसके खम्भे सुवर्णमय थे। दीवारें नानाप्रकार की मणियों से निर्मित थीं, वह पुखराज, मूँगा तथा मोती आदि की मालाओं से सुशोभित था। 81 खण्ड से युक्त था और कोट, वापिका तथा बाग-बगीचों से अलंकृत था। वह अधिष्ठाता नाभिराय के प्रभाव से अकेला ही अनेकों कल्पवृक्षों से आवृत था तथा पृथ्वी के मध्य अपने स्थान पर अधिष्ठित था।

प्रथम जन्मोत्सव एवं नाटक

भारत वर्ष के प्रथम तीर्थकर वृषभदेव के जन्माभिषेक के बाद जब इंद्र बालक तीर्थकर को वापिस लाकर अयोध्या में माता-पिता को समर्पण करता है तब

उस उपलक्ष्य में अयोध्यानगरी में महान् जन्मोत्सव मनाया जाता है। यह जन्मोत्सव प्रथम पुत्र जन्मोत्सव था और इस अवसर पर इंद्र ने विभिन्न रूप एवं अलंकारों को धारण करके ताण्डव नृत्य एवं गर्भावतार संबंधी एवं जन्माभिषेक संबंधी नाटक किये थे।

**न तदा कोऽप्यभूददीनो न तदा कोऽपि दुर्विधः।
न तदा कोऽप्यपूर्णेच्छो न तदा कोऽप्यकौतुकः॥(93)॥**

सर्ग-14, पृष्ठ 313

उस समय उस नगर में न तो कोई दीन रहा था, न निर्धन रहा था, न कोई ऐसा ही रहा था जिसकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई हों और न कोई ऐसा ही था जिसे आनंद उत्पन्न नहीं हुआ हों। उन नगरवासियों का आनंद देखकर अपने आनंद को प्रकाशित करते हुए इंद्र ने आनंद नामक नाटक करने में अपना मन लगाया। ज्यो ही इंद्र ने अपना नृत्य प्रारम्भ किया त्वयो ही संगीत विद्या के जाननेवाले गंधर्वों ने अपने बाजे वगैरह ठीक कर विस्तार के साथ संगीत करना प्रारम्भ कर दिया।

नाटक की परिभाषा

**कृतानुकरणं नाट्यं तत्प्रयोज्यं यथागमम्।
स चागमो महेन्द्राद्यैर्यथाम्नाय मनुस्मृतः॥(97)॥**

पहले किसी के द्वारा किये हुए कार्य का अनुकरण करना नाटक कहलाता है, वह नाटक नाट्यशास्त्र के अनुसार ही करने योग्य है और उस नाट्यशास्त्र को इन्द्रादि देव ही अच्छी तरह जानते हैं।

जो नाट्य या नृत्य शिष्य-प्रतिशिष्य रूप अन्य पात्रों में संक्रान्त होकर भी सज्जनों का मनोरंजन करता रहता है यदि उसे स्वयं उसका निरूपण करने वाला ही करे तो फिर उसकी मनोहरता का क्या वर्णन करना है? तत्पश्चात् अनेक प्रकार के पाठों और चित्र-चित्र शरीर की चेष्टाओं से इंद्र के द्वारा किया हुआ वह नृत्य महात्मा पुरुषों के देखने और सुनने योग्य था। उस समय अनेकों प्रकार के बाजे बज रहे थे, तीनों लोकों में फैली हुई कुलाचलों सहित पृथिवी ही उसकी रंगभूमि थी, स्वयं इन्द्र प्रथान नृत्य करने वाला था, नाभिराय आदि उत्तम-उत्तम पुरुष उस नृत्य के दर्शक थे, जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव उसके आराध्य (प्रसन्न करने योग्य) देव थे और धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों की सिन्धि तथा परमानन्दस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होना ही उसका फल था। इन ऊपर कही हुई

समूही में से एक-एक वस्तु भी सज्जन पुरुषों को प्रीति उत्पन्न करने वाली है फिर पृथ्वीवर से पूर्योक्त सभी वस्तुओं का समुदाय किसी एक जगह आ मिले तो कहना ही क्या? उसी समय पहले इंद्र ने त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) रूप फल को उत्पन्न करने वाला गर्भ विस्तार संबंधी नाटक किया और फिर जन्माभिषेक संबंधी नाटक करना प्रारम्भ किया। तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् के महाबल आदि दशावतार संबंधी वृत्तांत को लेकर अनेक रूप दिखलाने वाले अन्य अनेक नाटक करना प्रारम्भ किये। उन नाटकों का प्रयोग करते समय इंद्र ने सबसे पहले ताण्डव नृत्य प्रारम्भ किया। ताण्डवनृत्य के प्रारम्भ में उसने नान्दी मंगल किया और फिर नान्दी मंगल कर चुकने के बाद रंगभूमि में प्रवेश किया। उस समय नाट्यशास्त्र के अवतार को जानने वाला और मंगलमय वस्त्राभूषण के धारण करने वाला वह इंद्र बहुत ही शोभायमान हो रहा था। जिस समय वह रंगभूमि में अवतीर्ण हुआ था उस समय वह वैशाख आसन से खड़ा हुआ था अर्थात् पैर फैलाकर दोनों हाथ कमर पर रखें हुआ था और चारों ओर से मरुत् देवों से घिरा हुआ था इसीलिए ऐसा जान पड़ता था मानो मरुत् अर्थात् वातवलयों से घिरा हुआ लोकस्कन्ध ही हो। रंगभूमि के मध्य में पुष्पांजलि बिखेरता हुआ वह इन्द्र ऐसा भला मालूम होता था मानो अपने पान करने से बचे हुए नाट्यरस को दूसरों के लिए बाँट ही रहा हो। वह इंद्र सुंदर वस्त्राभूषणों से सहित शोभायमान था। मानो उत्तम नेत्रों का समूह ही धारण कर रहा था। इसीलिए पुष्पों और आभूषणों से सहित किसी कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हो रहा था। जिसके पीछे अनेक मदोन्मत्त भौंरे दोड़ रहे हैं ऐसी वह पड़ती हुई पुष्पांजलि ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो आकाश को चित्र विचित्र करने वाला इंद्रों के नेत्रों का समूह ही हो। इंद्रों के नेत्रों की बड़ी-२ पंक्ति जवनिका (परदा) की शोभा धारण करने वाली अपनी फैलती हुई प्रभा से रंगभूमि को चारों ओर से आच्छादित कर रही थी। वह इंद्रताल के साथ-साथ पैर रखकर रंगभूमि के चारों ओर घूमता हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो पृथ्वी को नाप ही रहा हो। जब इन्द्र ने पुष्पांजलि क्षेपण कर ताण्डव नृत्य करना प्रारम्भ किया तब उसकी भवित्व से प्रसन्न हुए देवों ने स्वर्ग अथवा आकाश से पुष्प वर्षा की थी। उस समय दिशाओं के अंतभाग तक प्रतिध्वनि को विस्तृत करते हुए पुष्पकर आदि करोड़ों बाजें एक साथ गंभीर शब्दों से बज रहे थे। वीणा भी मनोहर शब्द कर रही थी, मनोहर मुरली भी मधुर शब्दों से बज रही थी और उन बाजों के साथ ही साथ ताल से सहित संगीत के शब्द हो रहे थे। वीणा बजाने वाले मनुष्य जिस स्वर वा शैली में वीणा बजा

रहे थे, साथ के अन्य बाजे बजाने वाले मनुष्य भी अपने-२ बाजों को उसी स्वर वा शैली में मिलाकर बजा रहे थे सो ठीक ही है एक सी वस्तुओं में मिलाप होना ही चाहिए। उस समय वीणा बजाती हुई किनर देवियाँ कोमल, मनोहर, कुछ-कुछ गंभीर, उच्च और सूक्ष्मरूप से गा रही थीं। उस समय कितनी ही देव नर्तकियाँ बर्द्धमान लय के साथ, कितनी ही ताण्डव नृत्य के साथ और कितनी ही अनेक प्रकार के अभिनव दिखलाती हुई नृत्य कर रही थी कितनी देवियाँ बिजली का और कितनी ही इन्द्रका शरीर धारणकर नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रवेश तथा निष्क्रमण दिखलाती हुई नृत्य कर रही थी। उस समय इंद्र की भुजारुपी शाखाओं पर नृत्य करती हुई वे देवियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो कल्पवृक्ष की शाखाओं पर फैली हुई कल्पलतायें ही हों। वह श्रीमान् इन्द्र नृत्य करते समय उन देवियों के साथ जब फिरकी लगाता था तब उसके मुकुट का सेहरा भी हिल जाता था और वह ऐसा शोभायमान होता था मानो कोई चक्र ही घूम रहा हो। कितनी ही ऐसी मालूम होती थी मानो इन्द्र की बहुरूपिणी विद्या ही नृत्य कर रही हो। कितनी ही देवियाँ इंद्र के हाथों की अङ्गुलियों पर अपने चरण-पल्लव रखती हुई लीलापूर्वक नृत्य कर रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो सूची नाट्य (सुई की नोक पर किया जाने वाला नृत्य) ही कर रही हों। कितनी ही देवियाँ सुन्दर पर्वों सहित इन्द्र की अङ्गुलियों के अग्रभाग पर अपनी नाभि रखकर इस प्रकार फिरकी लगा रही थीं मानो किसी बाँस की लकड़ी पर चढ़कर उसके अग्रभाग पर नाभि रखकर मनोहर फिरकी लगा रही हों। देवियाँ इन्द्र की प्रत्येक भुजा पर नृत्य करती हुई और अपने नेत्रों के कटाक्षों को फैलाती हुई बड़े यल से संचार कर रही थीं। अपने भुजदण्डों पर देवनर्तकियों को नृत्य कराता हुआ वह इन्द्र ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो किसी यन्त्र की पटियों पर लकड़ी की पुतलियों को नचाता हुआ कोई यान्त्रिक अर्थात् यंत्र चलानेवाला ही हो।

दीप्तोद्धतरसप्रायं नृत्यं ताण्डवमेकतः।
सुकमारप्रायोगाद्यं लतितं लास्यमन्यतः॥(155)

उस समय एक ओर तो दीप्त और उद्धृत रस से भरा हुआ ताण्डव नृत्य हो रहा था और दूसरी ओर सुकमार प्रयोगों से भरा हुआ लास्य नृत्य हो रहा था।

इस प्रकार जिसमें श्रेष्ठ गंधर्वों के द्वारा अनेक प्रकार के बाजों का बजाना प्रारम्भ किया था ऐसे आनन्द नामक नृत्य को इन्द्र ने बड़ी सजधज के साथ समाप्त किया।

अध्याय-4

आदि महाशिक्षाशास्त्री, महावैज्ञानिक : ऋषभदेव

भोग—भूमि एवं कर्म भूमि के संक्रमण के संधि काल में एक महान क्रांतिकारी आर्य महापुरुष ने जन्म लिया, जिनका नाम आदिनाथ, आदि ब्रह्म या ऋषभदेव था। ये जन्मतः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान के धारी महान् विद्वान् थे। उन्होंने यौवन अवस्था को प्राप्त कर यशस्वी और सुनन्दा नामक दो सुन्दरी, सुशील, सती कन्याओं के साथ विवाह किया। यह विवाह इस युग के भारतीय आर्य जाति का प्रथम विवाह था। क्योंकि इसके पहले आर्यों में विवाह पञ्चति का प्रचलन नहीं हुआ था। उनका ज्येष्ठ पुत्र भरत हुआ जिनके नाम पर इस आर्य खण्ड (आर्यवर्त) का नाम भारत हुआ। इसका विशेष वर्णन जानने के लिए पाठक को मेरे द्वारा रचित ‘ऋषभ पुत्र भरत से भारत’ नामक पुस्तक पठनीय है। उनके भारत के प्रथम कामदेव ‘बाहुबली’ तथा और भी ९९ पुत्र एवं ब्राह्मी, सुन्दरी नामक दो पुत्रियाँ हुई थीं।

एक समय भगवान् वृषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे, कि उन्होंने अपना चित्त कला और उपदेश देने में व्यावृत किया। उसी समय ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की पुत्रियाँ मांगलिक वेशभूषा धारण कर उनके निकट पहुँची।

मेधाविन्यौ विनीते च सुशीले चारुतक्षणे।
रूपवत्यो यशस्विन्यौ श्लाघ्ये मानवती जनैः॥(75)॥

आ. पु.प. 16पृ. 353

वे दोनों ही कन्याएं बुद्धिमती थी, विनीत थी, सुन्दर लक्षण से सहित थीं, रूपवती थी और मानिनी स्त्रियों के द्वारा भी प्रशंसनीय थी।

दूर से ही जिनका मर्स्तक नम्र हो रहा है ऐसी नमस्कार करती हुई उन दोनों पुत्रियों को उठाकर भगवान ने प्रेम से अपनी गोद में बैठाया, उन पर हाथ फेरा, उनका मर्स्तक सूँघा और हँसते हुए उनसे बोले कि, आओ, तुम समझती होगी कि हम आज देवों के साथ अमर वन को जायेंगे परन्तु अब ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि देवलोग पहले ही चल गए हैं।

इत्याक्रीड्य क्षण भूयोऽप्येवमाख्यद् गिरांपतिः।
युवां युवजरत्यौ स्थःशीलेन विनयेनच(96)।

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव क्षण भर उन दोनों पुत्रियों के साथ क्रीडा कर फिर कहने लगे कि तुम अपने शील और विनय गुण के कारण युवावस्था में भी वृक्ष के समान हो।

विद्या का महत्व

तुम दोनों का यह शरीर, यह अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित किया जाय तो तुम दोनों का यह जन्म सफल हो सकता है।

विद्यावान् पुरुषो लोके संमतिं याति कोविदैः।

नारी च तद्वती धन्ते स्त्री सृष्टेरग्रिमं पदम्॥(98)॥

इस लोक में विद्यावान् पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है।

विद्या यशस्करी पुंसां विद्या श्रेयस्करी मता।

सम्यगाराधिता विद्यादेवता कामदायिनी॥(99)॥

विद्या ही मनुष्य का यश करने वाली है, विद्या ही पुरुषों का कल्याण करने वाली है, अच्छी तरह से आराधना की गई विद्या देवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम्।

त्रिवर्ग फलितां सूते विद्या संपत् परम्पराम्॥(100)॥

विद्या मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है, विद्या से ही धर्म, अर्थ, काम रूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न हो होती है।

विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारकम्।

सहयायि धनं विद्या विद्या सर्वार्थसाधनी॥(101)॥

विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।

तद्विद्या ग्रहणं यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवाम्।
सत्संग्रहण कालोऽयं युवयोर्वर्त्ततेऽधुनाम्॥(102)॥

इसलिए हे पुत्रियों! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो क्योंकि तुम दोनों के विद्या ग्रहण करने का यही (अवस्था) काल है।

सर्व प्रथम अक्षराङ्क विद्यारम्भ एवं रुची शिक्षा:

इत्युक्त्या मुहुराशास्य विस्तीर्णे हेम पट्टके।
अधिवास्य स्वचित्तस्थां श्रुतदेवीं सपर्यया॥(103)॥
विभुः करदयेनाभ्यां लिखन्नक्षर मालिकाम्।
उपादिशल्लिपि संख्यास्थानं चाहैरनुक्रमात्॥(104)॥

भगवान् ऋषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने चित्त में स्थिर श्रुत देवता को आदर पूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया, फिर दोनों हाथों से अ, आ आदि वर्णमाला लिखकर उन्हें लिपि (लिखने का) का उपदेश दिया और अनुक्रम से इकाई, दहाई आदि अंकों के द्वारा उन्हें संख्या ज्ञान का भी उपदेश दिया। ऐसी प्रसिद्धि है कि भगवान् ने दाहिने हाथ से वर्णमाला और बायें हाथ से संख्या लिखी थी।

ततो भगवतो वक्त्रान्निः सृतामक्षरावलीम्।
सिद्धं नम इति व्यक्तमङ्गलं सिद्धमातृकाम्॥(105)॥
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तावलीमिव।
स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विधा भेदमुपेयुषीम्॥(106)॥
अयोगवाह पर्यन्तां सर्वविद्यासु संतताम्।
संयोगाक्षर संभूतिं नैकवीजाक्षरैश्चित्ताम्॥(107)॥
समवादीधरद् ब्राह्मी मेधाविन्यति सुन्दरी।
सुन्दरी गणितं स्थानक्रमैः सम्यग्धारयत्॥(108)॥

तदन्तर जो भगवान् के मुख से निकली हुई है, जिसमें ‘‘सिद्धं नमः’’ इस प्रकार का मंगलाचरण अत्यंत स्पष्ट है, जिसका नाम सिद्ध मातृका है, जो स्वर और व्यंजन के भेद से दो भेदों को प्राप्त है जो समस्त विद्याओं में पायी जाती है, जिसमें अनेक संयुक्त अक्षरों की उत्पत्ति है, जो अनेक वीजाक्षरों से व्याप्त है, और जो

शुद्ध मोतियों की माला के समान है ऐसे अकार को आदि लेकर हकार पर्यन्त तथा विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उपध्यमानीय इन आयोग – वह समस्त शुद्ध अक्षरावली को बुद्धिमती ब्राह्मी पुत्री ने धारण किया और अतिशय सुन्दरी सुन्दरी देवी ने इकाई, दहाई आदि स्थानों के क्रम से गणित शास्त्र को अच्छी तरह धारण किया।

लिपि निर्माण का इतिहास

मानवीय सभ्यता संस्कृति, आध्यात्मिक उन्नति के लिए शिक्षा का योगदान सबसे महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार अशुद्ध स्वर्ण पाषाण अग्नि से संस्कारित होकर, विशुद्ध होकर, चमकदार मूल्यवान् एवं बहुउपयोगी हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य शिक्षा द्वारा सुसंस्कृत होकर विशुद्ध ज्ञानवान्, तेजवान्, चरित्रवान् एवं बहुआयामी हो जाता है। नीतिकारों ने बताया है—

‘विद्याविहीनं पशुः’

मनुष्य विद्या से हीन पशु के समान है। मनुष्य को पशु-स्तर से ऊपर उठकर मानव, महामानव एवं भगवान बनने के लिए विद्या की नितान्त आवश्यकता है।

भोगभूमिज मनुष्य स्वाभाविक अनुकूल परिस्थिति एवं सुलभ प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्रियों के कारण जीवन क्षेत्र में विशेष संघर्ष नहीं करते थे। वे लोग स्वभावतः पूर्वजन्म के संस्कार से सदाचारी, नीतिवान थे। उस समय में सामाजिक, राष्ट्रीय संगठन भी नहीं था।

(1) सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्रियों के कारण (2) सामाजिक राष्ट्रीय आदि संगठन के अभाव के कारण (3) स्वाभाविक नैतिक एवं सदाचार के कारण (4) जीवन क्षेत्र में विभिन्न संघर्षों के अभाव के कारण भोगभूमि काल में दूसरों से प्राप्त शिक्षा की विशेष आवश्यकता न होना स्वाभाविक भी था।

कर्मभूमि प्रवेश के प्राथमिक चरण में भोगभूमि की समस्त परिस्थिति परिवर्तित हो चली। उस समय में काल परिस्थिति परिवर्तन के साथ-साथ सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्री हास होती चली। मनुष्य को सहज प्राप्त विद्या, सरलता, नम्रता, नैतिकता क्रमशः हास होती चली। स्वतंत्रतापूर्ण, व्यक्तिगत जीवन समाप्त होकर सामाजिक जीवन क्रमशः वृद्धिंगत हो रहा था। इस परिस्थिति में मनुष्य को नैतिक सदाचारी, ज्ञानी, संगठन प्रिय एवं युगानुकूल आगे अग्रसर होने के लिये शिक्षा की आवश्यकता नितान्त अनिवार्य थी। उस काल के इस भूखण्ड के

महाज्ञानी, दूर-दृष्टि-सम्पन्न ऋषभदेव ने उपरोक्त दृष्टिकोण को लेकर शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए अपने महल (या परिवार) से ही प्रारम्भ किया। क्योंकि व्यक्ति से, परिवार से, समाज से, राष्ट्र का निर्माण होता है। इसलिए व्यक्ति तथा परिवार को शिक्षित, सभ्य, नैतिक बनाना ही समाज एवं राष्ट्र को शिक्षित नैतिक बनाना है।

आदिनाथ की दो पुत्रियां एवं एक सौ एक पुत्र थे। जब ब्राह्मी एवं सुन्दरी शैशव अवस्था को अतिक्रम करके कुमारी अवस्था में पदार्पण कर रही थी, तब ऋषभदेव ने दोनों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये योग्य पात्र समझकर दोनों को विद्या – शिक्षा प्रदान की। ब्राह्मी कुमारी को आदिनाथ ने ‘अ, आ’ आदि स्वर व्यंजनात्मक वर्णमाला की पढ़ुति सिखलाकर अक्षर विद्या सिखलायी। सुन्दरी को 1, 2 आदि संख्या के माध्यम से अंक विद्या सिखलायी। इसी प्रकार अत्यंत ही प्राचीन काल से स्त्री शिक्षा के साथ-साथ अंकाक्षर विद्या प्रारम्भ हुई। वह काल आधुनिक भाषा में कहने पर प्राग् ऐतिहासिक काल होगा जो कि, इस पूर्व अनेक अरबों, खरबों वर्ष पहले है। कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि, अंकाक्षर विद्या कुछ हजार वर्ष पहले ही प्रारम्भ हुई। परन्तु जैन, बौद्ध, हिन्दु आदि वाङ्मय के अध्ययन से सिन्धु होता है कि अंकाक्षर विद्या का प्रारम्भ अत्यंत ही प्राचीन काल में हुआ है।

लिपि के बारे में आधुनिक मत— वर्तमान संसार में प्रायः चार सौ प्रधान लिपियाँ प्रचलित हैं। आधुनिक विद्वानों के मतानुसार ईसा पू. 10वीं सदी में वर्णमालात्मक लिपियाँ प्रारम्भ हुई। आधुनिक विद्वानों का मत है कि 25000 वर्ष पूर्व “को मेगनाल” मानव गुहा में रहते थे एवं गुफा के दिवारों में चित्र बनाते थे। इस चित्र के माध्यम से ही लिपियों का प्रारम्भिक सूत्रपात हुआ। 10000 वर्ष पहले सभ्य मानव का विकास हुआ। एशिया के पश्चिमी तट पर ईसा पूर्व 2000 में ‘समेटिक’ भाषा परिवार की एक अक्षर मालात्मक लिपि उत्पन्न हुई जो कि प्राचीनतम लिपि है। 1000 वर्ष ईसा पूर्व में व्यंजनात्मक या वर्णमालात्मक लिपि रूप ‘समेटिक लिपि’ परिवर्तित हो जाती है। प्राचीन ‘सुमेरी लिपि’ परिवर्तित होकर ईसा पूर्व 80 में ब्राह्मी लिपि रूप में परिवर्तित हुई। इस ब्राह्मी लिपि से ही पूर्ण भारतीय एवं तिब्बती, सिंहली आदि लिपियाँ उत्पन्न हुईं। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार सर्वप्रथम चित्रलिपि हुई। उसके उपरान्त लिपि क्रम से विकसित होकर

भाव चित्रलिपि में परिणमन हुई।

काल क्रम से परिवर्तित संवर्द्धित होकर भाव चित्रलिपि ध्वनि संकेत रूप में परिणमन हो गई। अनेक काल परिवर्तन के बाद ध्वनि संकेत में जो विशेष परिवर्तित हुआ, वह अक्षरात्मक लिपि है। यह अक्षरात्मक लिपि ही सभ्य भाषा के लिए बीज स्वरूप है। समस्त साहित्यरूपी विशाल भवन इस अक्षरात्मक ईंट से निर्मित हुआ है। यह अक्षरात्मक लिपि ही संयुक्त होकर अंतिम विकसित लिपि, वर्णमालात्मक लिपि में परिवर्तित हो जाती है।

लिपि निर्माता— हिन्दु धर्म की अपेक्षा ‘ब्रह्मा’ ब्राह्मी लिपि का निर्माता है। प्राचीन मिस्र की अपेक्षा ‘भोत् देव’ लिपि का निर्माता है। बेबीलोन की अपेक्षा ‘नेवो देवता’ लिपि का निर्माता है। प्राचीन यहूदी अपेक्षा पैगम्बर ‘मूसा’ लिपि का निर्माता था। इस्लाम धर्म की अपेक्षा ‘अल्लाह’ ने लिपि निर्माण करके आदम को समर्पण किया था। युनानी लोग ‘हेरमेस’ को लिपि का निर्माता मानते हैं। जैनधर्म की अपेक्षा आदिनाथ आदिब्रह्मा ऋषभदेव ने लिपि शिक्षा पहले ब्राह्मी, कुमारी को दी थी।

हीरागना जापानी लिपि का जनक बौद्ध भिक्षुक ‘कोवो दैशी’ कवि था। उसने 9वीं शताब्दी में इस लिपि का निर्माण किया था। इस लिपि में प्रथम 3 अक्षर इ-रो-हा होने से इस लिपि को इरोहा अक्षरमाला कहते हैं। इस अक्षरमाला के ये सारे अक्षर अपुनरावृत्ति से रखने से एक बौद्ध दर्शन को प्रगट करते हैं, इसका अर्थ-

इस क्षणिक संसार में सभी कुछ अनित्य है। इसके मायाजाल तथा दिखावे से मैं बचना चाहता हूँ।

सिंहल में अशोक के ब्राह्मी लिपि का शिलालेख मिला है। आश्चर्य की बात यह है कि, ब्राह्मी लिपि का प्रचार पश्चिम बोर्नियो तक हुआ है। पश्चिमी बोर्नियो में क्युअस नदी के किनारे सुंगेइते कार के पास के चश्मों के समीप एक चट्ठान पर उत्कीर्ण मूर्तियों के पास सात अभिलेख मिले हैं। उसमें लिखा हुआ है कि—

अज्ञानाच्चीयते कर्म जन्मनः कर्म कारणम्।

ज्ञानान्त्र क्रियते कर्म कर्माभावान्त्र जायते॥

उपरोक्त आधुनिक शोध से एवं प्राचीन साहित्यों के मंथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि, प्रचलित सम्पूर्ण वर्णमालात्मक लिपि में ब्राह्मी लिपि सबसे प्राचीनतम लिपि है। लिपि विद्या से ही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की विशेष उन्नती हुई है।

आधुनिक गणितज्ञ एवं विद्वान् लोग मुक्त – कंठ से स्वीकार करते हैं कि, अनेक विद्या एवं गणित का प्रारम्भ सर्व प्रथम भारत में हुआ था। शून्य एवं 1, 2, 3 आदि 9 तक इकाई संख्याओं का आविष्कार भारत में हुआ था। इटली, ग्रीक आदि देशों में चित्र, संकेत लिपि में संख्या एवं गणित विद्या का प्रचलन था। भारतीय पन्डित के अनुसार जिस वृहत्‌तम संख्या को आधा लाईन में लिख सकते हैं उसको इटेलियन के अनुसार लिखने पर आठ-दस लाईन अथवा आधा-एक पृष्ठ लगेगा।

**सर्वप्रथम वाङ्मयार्थं एवं उसका स्वरूप
न बिना वाङ्मयात् किंचिदस्ति शास्त्रं कलापि वा।
ततो वाङ्मयमेवादौ वेधास्ताभ्यामुपादिशत्।(109)**

आ. पु. पर्व 16 पृ. 356

वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है इसलिये भगवान् वृषभदेव ने सबसे पहले उन पुत्रियों के लिये वाङ्मय का उपदेश दिया था।

**सुमेधसावसं मोहादध्ये षातां गुरोर्मुखात्।
वाग्देव्याविव निशेषं वाङ्मयं ग्रन्थतोऽर्थतः।(110)**

अत्यन्त बुद्धिमती उन कन्याओं ने सरस्वती देवी के समान अपने पिता के मुख से संशय, विपर्यय आदि दोषों से रहित शब्द तथा अर्थ रूप समस्त वाङ्मय का अध्ययन किया था।

वाङ्मय की परिभाषा—

**पदविद्यामधिच्छन्दोविचितिं वागलंकृतिम्।
त्रयीं समुदितामेतां तद्विदो वाङ्मयं विदुः।(111)**

वाङ्मय के जानने वाले गणधरादि देव व्याकरण शास्त्र, छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं।

आद्य वैयाकरणकः ऋषभदेव

**तदा स्वायंभुवं नाम पदशास्त्रमभून् महत्।
यत्त्परशताध्यायैरतिगम्भीरमव्यिवत्।(112)**

उस समय स्वयंभू अर्थात् भगवान् वृषभदेव का बनाया हुआ एक बहुत भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था उसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और समुद्र

के समान अत्यन्त गम्भीर था।

छन्दशास्त्र उपदेशकः ऋषभदेव

छन्दोविचितिमध्ये वं नानाध्यायै रुपादिशत्।

उक्तात्युक्तादिभेदाश्चं षड्विंशतिमदीदृशत्।(113)

इसी प्रकार उन्होंने अनेक अध्यायों में छन्दशास्त्र का भी उपदेश दिया था और उसके उक्ता, अयुक्ता आदि छब्बीस भेद भी दिखलाये थे।

गणितज्ञः ऋषभदेव

प्रस्तारं नष्ट मुद्दिष्ट मेक द्वित्रिलघुक्रियाम्।

संख्यामथाध्ययों च व्याजहार गिरांपतिः।(114)

अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान् ने प्रस्तार, नष्ट, उदिष्ट एकद्वित्रिलघुक्रिया, संख्या और अध्ययोग छन्दशास्त्र के इन छह प्रत्ययों का भी निरूपण किया था।

अलंकारज्ञः ऋषभदेव

उपमादीनलंकारास्तन्मार्गं द्रव्यविस्तरम्।

दश प्राणानलंकार संगृहे विभुरभ्यधात्।(115)

भगवान् ने अलंकारों का संग्रह करते समय अथवा अलंकार संग्रह ग्रन्थ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था, उनके शब्दालंकार और अर्थालंकार रूप दो मार्गों का विस्तार के साथ वर्णन किया और माधुर्य ओज आदि दस प्राण अर्थात् गुणों का भी निरूपण किया था।

अथानन्तर ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों-पुत्रियों की पदज्ञान (व्याकरण ज्ञान) रूपी दीपिका से प्रकाशित हुई समस्त विद्याएँ और कलाएँ अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गयी थीं। इस प्रकार गुरु अथवा पिता के अनुग्रह से जिनसे समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिये पात्रता को प्राप्त हुई थीं। वे इतनी अधिक ज्ञानवती हो गई थीं कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी।

सर्वप्रथम अर्थशास्त्र, राजनीति आदि की शिक्षा व पुरुष शिक्षा

पुत्राणां च यथाम्नायं विनया दानपूर्णकम्।

शास्त्राणि व्याजहारैवमा तुपूर्व्या जगद्गुरुः।(118)

जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी

बनाकर क्रम से आमाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये।

अर्थशास्त्र एवं नृत्यशास्त्र का प्रशिक्षण

भरतायार्थ शास्त्रं च भरतं च ससंग्रहम्।

अध्यायैरतिविस्तीर्णः स्फुटीकृत्य जगौ गुरुः।(119)

भगवान ने भरत पुत्र के लिये अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्ट कर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था।

संगीतकला का प्रशिक्षण

विभुवृषभसेनाय गीतवाद्यर्थ संग्रहम्।

गंधर्वशास्त्रमाच्छ्यौ यत्राध्यायः परश्शतम्।(120)

स्वामी वृषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन के लिये जिसमें गाना बजाना आदि अनेक पदार्थों का संग्रह है और जिसमें सौ से भी अधिक अध्याय हैं ऐसे गन्धर्व शास्त्र का व्याख्यान किया था।

चित्रकला का प्रशिक्षण

अनन्तविजयायाख्याद विद्यां चित्रकलाश्रिताम्।

नानाध्यायशताकीर्णा साकलाः कलाः।(121)

अनन्त विजय पुत्र के लिये नाना प्रकार के सैकड़ों अध्यायों से भरी हुई चित्रकला सम्बन्धी विद्या का उपदेश दिया और लक्ष्मी या शोभा सहित समस्त कलाओं का निरूपण किया।

वास्तु-शास्त्र का प्रशिक्षण

विश्वकर्मसतं चास्मै वास्तुविद्यामुपादिशत्।

अध्यायविस्तरस्त्र बहुभेदोऽवधारितः।(122)

इसी अनन्त विजय पुत्र के लिये उन्होंने सूत्रधार की विद्या तथा मकान बनाने की विद्या का उपदेश दिया। उस विद्या के प्रतिपादक शास्त्रों में अनेक अध्यायों का विस्तार था तथा उसके अनेक भेद थे।

आयुर्वेद : धनुर्वेद, अंग लक्षण-विद्यादि का प्रशिक्षण

कामनीतिमथ स्त्रीणां पुरुषाणां च लक्षणम्।

आयुर्वेद धनुर्वेदं तन्त्रं चाश्वेभगोचरम्।(123)

तथा रत्नपरीक्षां च वाहुवल्याख्यसूनवे।

व्याचख्यौ बहुधाम्नातैरध्यायैरतिविस्तृतैः।(124)

बाहुबली पुत्र के लिये उन्होंने कामनीति, स्त्री-पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा-हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र और रत्न परीक्षा आदि के शास्त्र अनेक प्रकार के बड़े-बड़े अध्यायों के द्वारा सिखलाये।

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रं लोकोपकारि यत्।

तत्सर्वमादिकर्तासौ स्वाः समन्वशिष्टप्रजाः।(125)

इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन है। संक्षेप में इतना ही बस है कि लोक का उपकार करने वाले जो जो शास्त्र थे भगवान् आदिनाथ ने वे सब अपने पुत्रों को सिखलाये थे।

जिस प्रकार स्वभाव से दैदीप्यमान रहने वाले सूर्य का तेज शरदऋतु आने पर और भी अधिक हो जाता है उसी प्रकार जिन्होंने अपनी समस्त विद्याएँ प्रकाशित कर दी हैं ऐसे भगवान् ऋषभदेव का तेज उस समय बड़ा अद्भुत हो रहा था।

जिन्होंने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसे पुत्रों से भगवान् ऋषभदेव उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि शरदऋतु में अधिक कान्ति को प्राप्त होनेवाला सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होता है।

आदिनाथ से लेकर अद्यतन की स्रोज

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि अक्षरलिपि, अंकलिपि, भाषा, व्याकरण, गणित, आयुर्वेद, संगीत, कला आदि के ज्ञाता स्वयं ऋषभदेव थे तथा उसका प्रचार-प्रसार प्रशिक्षण भी उन्होंने स्वपुत्र-पुत्रियों के माध्यम से किया था। आगे जाकर जब ऋषभदेव सर्वज्ञ एवं विश्वदृष्टा बनेंगे तब तो वे विश्व के समस्त आध्यात्म, विज्ञान, दर्शन आदि का प्रशिक्षण केवल लाखों मनुष्य तथा पशुओं को ही नहीं देंगे बल्कि स्वर्ग के असंख्यात देवों को भी देंगे। वे मुनि, आर्थिका, श्रावक, श्राविका रूपी चतुर्विध संघ की भी स्थापना करेंगे और 84 मुख्य शिष्यों के माध्यम से हजारों संन्यासी शिष्यों को प्रशिक्षण देंगे और ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार करेंगे। इसका विस्तृत वर्णन आगे देखें। दुनियाँ का पहला विश्वविद्यालय इसा.पू. 700 में तक्षशिला में स्थापित हुआ। वहाँ विश्वभर से आये दस हजार से अधिक छात्र 60 से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे।

इसा पृ. चौथी शताब्दी में स्थापित नालन्दा विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन भारत की एक अनृठी उपलब्धि थी।

अभी उपलब्धि जैन वाङ्मय में तिलोयपण्णति, षट्खण्डागम (धवला – जयधवला प्रायः 1200 वर्ष प्राचीन) तत्वार्थसूत्र (प्रायः दो हजार वर्ष प्राचीन) गणितसार संग्रह, गोमटसार, करुणानुयोग के विभिन्न ग्रंथ आदि में गणित की विभिन्न पन्द्रुतियाँ, धाराएँ, सूत्र आदि उपलब्धि हैं। जिसमें लौकिक गणित से भी श्रेष्ठ अलौकिक गणित का वर्णन है। इसमें संख्यात, असंख्यात, अनंत की भी गणना है। गणित, दशमलवपन्द्रुति, शून्य, पाय आदि का आविष्कार भारत में हुआ था। ऐसा देश-विदेश के समस्त विद्वान् मानते हैं।

पाँचवीं शताब्दी में आर्यभट्ट ने शून्य (0) का प्रयोग किया। आर्यभट्ट से भी हजारों वर्ष पूर्व वैदिक काल खण्ड में शून्य का ज्ञान था। पाय का मूल्य सबसे पहले बोधायन ने आंका। उसीने उसका सिद्धान्त परिभाषित किया। जो 'पायथागोरियन सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। बोधायन ने यह कार्य यूरोपीय गणितज्ञों से बहुत पहले इसा पूर्व ६वींशताब्दी में किया था। 998 में ब्रह्मगुप्त हुए जिनके ग्रन्थों में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और पाय का वर्णन है। इनका ग्रन्थ 1200 वर्ष पहले एक भारतीय गणितज्ञ वैज्ञानिक लेकर अरब गया और अरब से यूरोप, यूनान पहुँचा। ब्रह्मगुप्त ने केवल पाय का वर्गमूल करके छोड़ दिया था। परन्तु भास्कराचार्य ने उसका मूल्य Value 3.14166 निकाला और आधुनिक गणित के अनुसार इसका मूल्य $22/7 = 3.142$ है।

जैनाचार्य महावीर ने गणितसार संग्रह में लघुतम समापवर्त्तय, दीर्घतम समापवर्त्तय, अंकगणित, बीजगणित आदि का वर्णन किया। बीजगणित, त्रिकोणमितीय एवं कैलक्यूलस भारत की ही विश्व को देन है। श्रीधराचार्य ने 11वीं शताब्दी में वर्ग समीकरण की व्याख्या की। ग्रीकों और रोमन द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला अधिकतम अंक 1.06 था; जबकि इसा पूर्व पाँच हजार वर्ष पहले वैदिक काल में हिन्दू 10^{53} बड़े तक विशिष्ट नामों के साथ प्रयोग में लाते थे। आज भी विदेशों में विशिष्ट नाम से उपयोग में किये जाने वाला अधिकतम अंक 'टेरा' (10^{12}) है।

आर्यभट्ट 476 सन् गुप्तकाल में हुए और उन्होंने आर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शून्य (0) का आविष्कार वर्षों पूर्व हो गया था लेकिन शून्य को लिपिबद्ध रूप में, व्यापकरूप में प्रयोग आर्यभट्ट ने किया। त्रिकोणमिति में $\sin 0$ (थीटा)

$\cos 0$ को भी आर्यभट्ट ने दिया। यूकिल्ड भी ज्यामिति के महान् अन्वेषक थे।

पृथ्वी गोल है जो अपनी धुरी पर परिभ्रमण करती है इस सिद्धान्त को भी आर्यभट्ट ने सिद्ध किया था। द्वितीय आर्यभट्ट 950 में हुए जिन्होंने अनेक महान् सिद्धान्त दिये रोयल सोसायटी जो कि अभी इंग्लैण्ड में हैं। ऐसी ही संस्था की स्थापना हमारे भारत में 1500 वर्ष पूर्व में हुई थी। यहाँ पर केवल विशिष्ट वैज्ञानिक ही सदस्य बन सकते थे; दूसरों के लिए स्थान नहीं था। इन्हें ही विक्रमादित्य के नवरत्न पंडित कहते हैं।

भारतीय संस्कृति में 6075 इसा पूर्व में एक धन्वन्तरि हुए जो कि शल्य चिकित्सा और रसायन शास्त्र के प्रवक्ता थे। उसी प्रकार अश्वनी कुमार थे जो औषध, आयुर्वेद के माध्यम से चिर यौवन रहे और एक च्यवन ऋषि थे जो वृद्ध थे: इसीलिए च्यवन ऋषि को उन्होंने औषधि दी जिसके माध्यम से वृद्ध ऋषि युवक बन गये और औषधि का नाम च्यवनप्राश पड़ गया। इन सभी का हमारे प्राचीन ग्रंथ चरकसंहिता, आयुर्वेद में वर्णन है। इसके बाद पुनर्वसु आत्रय हुए। वे इसा पूर्व 2800 वर्ष पूर्व हुए। यह सभी शिक्षा पन्द्रुति आयुर्वेदिक शल्य चिकित्सा का वर्णन प्रतिपादन उनके शिष्यों को किया। हिपोक्रिटिश यूनानी थे। इनको इतिहासकार मानते हैं कि हिपोक्रिटिश आयुर्वेदिक के शल्य चिकित्सा के आविष्कारक हैं, परन्तु उससे भी कई हजार वर्ष पहले लिखित रूप में, प्रयोग रूप में हमारे देश में शल्य चिकित्सा से लेकर अन्य प्रकार की चिकित्सा व शिक्षा थी। इस शल्य चिकित्सा का आविष्कार भी मूल ग्रंथ चरकसंहिता, वाग्भट्ट संहिता, योग रत्नाकर आदि में भी वर्णन मिलता है। ये शल्य चिकित्सा के आद्य प्रवक्ता थे। लिखित रूप में इन्होंने ग्रंथ लिखा सुश्रुत संहिता। सुश्रुत नाक, कान, गला, आँख इन सभी की शल्य चिकित्सा करते थे। एक स्थान से माँस काट करके अन्य स्थान में जोड़ देते थे। उन्होंने शल्य चिकित्सा के 120 प्रकार के यंत्रों का आविष्कार किया था। सुश्रुत तथा समकालीन चिकित्साशास्त्रियों ने अति जटिल शल्य क्रियायें की। जैसे-सिजेरियन, मोतिया बिन्द, अवयव प्रत्यारोपण, पथरी आदि; यहाँ तक कि प्लास्टिक एवं मस्तिष्क शल्य क्रिया भी होती थी। उन्हें बेहोशी की दवा का भी ज्ञान था। उनके प्राचीन ग्रन्थों में शरीरशास्त्र, जन्तु-वनस्पति विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, पाचनक्रिया, चयापचय, आनुवंशिकता विज्ञान और रोग से प्रतिरक्षा का गहरा विज्ञान पाया जाता है। जैनाचार्य उग्रादित्य ने कल्याणकारक नामक एक

आयुर्वेद ग्रन्थ की रचना की है। जैनाचार्य पूज्यपाद देवनंदी ने भी आयुर्वेद, व्याकरण, आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की है। इनके द्वारा रचित समाधितंत्र, मोक्षशास्त्र की टीकां—सर्वार्थसिद्धि भी बहुत ही सारगर्भित तथा सुप्रसिद्ध है। इन्होंने आत्मा (मन) की शुद्धि के लिए इष्टोपदेश, समाधितंत्र, सर्वार्थसिद्धि की रचना की तो वचन शुद्धि के लिए जैनेन्द्र व्याकरण की रचना की तथा शरीर की शुद्धि के लिए वैद्यशास्त्र की रचना की। यथा—

न्यासं जैनेन्द्रं संज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो-
न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा।
यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यचरदिह तां भात्यसौ पूज्यपाद-
स्वामी भूपालवंद्यः स्वपर हितवचः पूर्णदृग्बोधवृन्तः॥
जैनेन्द्रं निजशब्दभाग तुलं सर्वार्थसिद्धिः परा-
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः।
छन्दं सूक्ष्मधियं समाधिशतकं स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनियः पूज्यो मुनीनां गणैः॥(4)

इस वाक्य में ऊँचे दर्जे की कुछ रचनाओं का उल्लेख करते हुए, बड़े ही अच्छे ढंग से यह प्रतिपादित किया है कि जिसका 'जैनेन्द्र' शब्द शास्त्र में अपने अतुलित भाग को सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थटीका) सिद्धान्त में परम निपुणता को 'जैनाभिषेक' बड़े ऊँचे दर्जे की कविता को 'समाधिशतक' जिनकी स्वात्मस्थिति (स्थितप्रज्ञता) पर संसार के विद्वानों पर प्रकट करता है वे पूज्यपाद मुनि मुनियों के गणों से पूज्यनीय हैं।

जीवक बुद्ध के चिकित्सक थे। एक सेठ की लड़की थी जिसकी उल्टी के माध्यम से अंदर की आंतें बाहर निकल गयी थी उसे जीवक ने ऑपरेशन करके पुनः स्थापित कर दिया। हमारे भारत में पशु-पक्षी की सुरक्षा एवं चिकित्सा और सुरक्षा पद्धति का भी आविष्कार हुआ था। 1882 में न्यूजीलैण्ड में जन्मे हैरोल्डगिलीज तथा उनके सहकर्मी डॉ. टी.पी. इंग्लैण्ड के सर्वश्रेष्ठ प्लास्टिक सर्जन हुए।

पाषाणयुगीन लोगों को भी था ब्रेन सर्जरी का ज्ञान

पुरातत्ववादियों के शारजाह में खुदाई के दौरान करीब 7 हजार साल पुरानी एक खोपड़ी या कपाल तंत्र प्राप्त किया है। इसका अवलोकन करने पर

पुरातत्ववादियों को एक चौकानेवाली बात यह पता चली है कि पाषाणकाल के लोग भी ब्रेन सर्जरी के बारे में जानते थे और इसको करने के लिए वे आदिकालीन औजारों का प्रयोग करते थे।

वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि आज से सात हजार साल पहले नियोलिथिक या पाषाणयुग के किसी सर्जन ने न केवल मरीज के मरित्सुष्क या ट्यूमर निकालने के लिए उसके दिमाग की चीरफाड़ की थी, बल्कि उसने इसके लिए किसी हर्बल निश्चेतक का इस्तेमाल भी किया होगा। वैज्ञानिकों के मुताबिक आश्चर्य की बात यह है कि सर्जन या चिकित्सक द्वारा ट्यूमर निकालने में नाकाम रहने के बावजूद वह व्यक्ति आपरेशन के दो साल बाद तक जीवित रहने में कामयाब रहा था। आगे की जाँच पड़ताल के लिए इस खोपड़ी को जर्मनी भेज दिया गया है। जर्मनी में इस खोपड़ी का परीक्षण करने वाले एक मानव विज्ञानी डॉ. हेनरी किसैवेट्स का कहना है ‘‘हालांकि उस जमाने में किसी चिकित्सा यंत्रों का आविष्कार नहीं हुआ था लेकिन खोपड़ी को देखने पर ऐसा लगता है कि इसे नुकीले और धारदार पथरों से खोला गया होगा। पहले उन्होंने त्वचा हटायी होगी और इसके बाद उन्होंने खोपड़ी के दाहिने तरफ छेद करके ऑपरेशन किया होगा। इसे दुनियाँ की सबसे पहली प्रमुख सर्जरी कहा जा सकता है।’’

डॉ. हेनरिक कहते हैं कि खोपड़ी में किये गये छेद को देखकर लगता है कि यह ऑपरेशन बहुत कुशलतापूर्वक किया गया होगा। ऑपरेशन सफल न रहने के बाद भी वह व्यक्ति दो साल तक जीवित रहा और उसके बाद ट्यूमर के कारण संभवतः वह ब्रेन हेमरेज का शिकार होकर मर गया होगा। खोपड़ी को देखने से यह प्रमाण भी मिलते हैं कि उस युग के चिकित्सकों को निश्चेतक का काम करने वाली कुछ जड़ी बूटियों का भी ज्ञान रहा होगा जिसका प्रयोग उन्होंने इस ऑपरेशन में किया था। उस युग के मनुष्य ने केवल पालतू पशुओं को पालना और गेहूँ बाजरा जैसी कुछ सामान्य फसलों को ही उगाना सीखा था।

चूजे के सिर में बटेर का दिमाग

न्यूयार्क। आजकल वैज्ञानिक समुदाय में एक प्राणी का सिर दूसरें प्राणी के शरीर से जोड़ने की होड़ लगी हुई है। बंदरों के बाद अब चूजों की बारी आ गई है। अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक दिलचस्प परीक्षण में चूजों के सिर में बटेर का मरित्सुष्क प्रत्यारोपित करने में सफलता पाई है। इस प्रयोग की सफलता का अंदाजा इसी बातसे लगाया जा सकता है कि ये चूजे अपनी माँ यानि मुर्गी की

आवाज को तो अनसुना कर देते हैं और बटेर की आवाज को बड़े ध्यान से सुनते हैं। वैज्ञानिकों ने बटेर की भ्रूण कोशिकाओं को चूजों के भ्रूणों में प्रत्यारोपित कर दिया और अण्डों से बाहर निकलने के बाद उन्हें अलग—अलग आवाजें सुनायी। परीक्षण से जुड़े सिटी युनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क के शोधकर्ता इवान बेलाबेन का कहना है कि इस प्रत्यारोपण से उन्हें ध्वनि को उत्पन्न करने वाली मरितष्क की संरचना के बारे में जानकारी मिल सकेगी।

बहुरूपिणी विद्या (अंगों का पुनः अंकुरण)

रावण भगवती बहुरूपिणी विद्या में प्रवेश कर युद्ध करने लगा। यही कारण था कि उसका सिर यद्यपि लक्षण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार दैदीयमान कुण्डलों से सुशोभित हो उठता था।

एकस्मिन् शिरं सिच्छिन्ने शिरोदयमजायत्।

तयोरुत्कृत्वद्विं शिरांसि द्विगुणां ययुः॥(24)

एक सिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धि को प्राप्त हो जाते थे।

निकृते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टम्।

तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धिं द्विगुणा बाहुसंततिः॥25

दो भुजायें कटती थीं तो चार हो जाती थीं और चार कटती थीं तो उससे दुगुनी हो जाती थी।

हजारों सिरों और अत्यधिक भुजाओं से घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलों से घिरा हो।

मिश्रवासी सर्जरी में माहिर थे

क्या आप जानते हैं, किसी के पैर में लकड़ी का अंगूठा भी हो सकता है। विश्वास नहीं हुआ ना, लेकिन यह एकदम सच है। पिछले दिनों मिश्र के पिरामिडों में से एक महिला की ममी प्राप्त हुई। खोजकर्ताओं को उस समय आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने उस महिला की ममी (मृत शरीर) का एक्स-रे करवाया। एक्स-रे के दौरान उन्होंने पाया कि उस महिला के पैर में प्राकृतिक अंगूठे के स्थान पर लकड़ी का अंगूठा लगा हुआ था और उसे पैर के शेष हिस्से से जोड़ने के लिए मजबूत और न सड़ने वाले मोटो धागे से बांधा जाता था। खोजकर्ताओं ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा कि मिस्र के लोग अपनी विभिन्न बीमारियों

से बचने के लिए वास्तविक अंगूठे को काटकर लकड़ी का अंगूठा लगा दिया करते थे। एक बात और रप्त होती है कि वे लोग हजारों साल पहले से सर्जरी में माहिर थे।

गैसों की खोज

एक व्यक्ति ने पहली बार वायुमण्डल में दो अलग—अलग गैसों के होने की बात कही। उसी ने हवाई जहाज के निर्माण का भी असफल प्रयास किया। विस्मय की बात यह थी कि उसका विज्ञान से दूर-दूर तक का वास्ता नहीं था। ये महाशय थे—15वीं सदी के महान् चित्रकार—लियोनार्दो द विंची।

हिपोक्रेटीज रोगी की मानसिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए उसका इलाज करने की बात करने वाले विश्व के प्रथम चिकित्सक थे। उनके उपदेशों पर आधारित शपथ आज भी विश्व के प्रत्येक चिकित्सक को लेनी होती है।

क्रेन तथा सड़क निर्माण

भारी वस्तुओं को उठाने वाली 'क्रेन' का आविष्कार किया था डेरिक नामक एक व्यक्ति ने, जिसे एक अपराध में फांसी की सजा सुनाई गई थी। वह इस सजा से बचकर स्वयं जल्लाद बन गया था। इसी तरह आधुनिक सड़कों का पहला निर्माता था—जॉन मैकेंडम नामक एक व्यक्ति, जो एक कुख्यात डाकू का वंशज था। उसने 1815 में ब्रिस्टल में जिस विधि से सड़क का निर्माण किया, बाद में उसे दुनिया के सब देशों ने अपनाया।

किसी अच्छे कागज को उठाकर रोशनी की तरफ करके देखने पर, कागज के अन्दर बने निशान को कहा जाता है—‘वाटरमार्क’ (जलचिह्न), करेन्सी नोटों और डाक टिकटों आदि में विशेष रूप से वाटरमार्क देखे जा सकते हैं। सबसे पहले ग्यारहवीं शताब्दी में इटली में इस तरह के निशान बनाए गए थे।

गुलाब के इत्र का आविष्कार किया था नूरजहां ने। गुलाब के फूलों से भरे पानी के कुण्ड में तैरते—तैरते, इन फूलों के पास एक चिकने पदार्थ को देखकर उसके दिमाग में उसे एकत्रित करने का विचार आया।

गुरुत्वाकर्षण की खोज

भास्कराचार्य जिन्होंने कि न्यूटन से 500 वर्ष पूर्व गुरुत्वाकर्षण की खोज की। न्यूटन जब पेड़ के नीचे बैठे थे तो एक फल उनके सिर पर पड़ा तो उन्होंने सोचा कि फल ऊपर या इधर—उधर जाने की बजाय सीधा नीचे ही क्यों आया? और उन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज की, और सूत्र दिया। इसके बहुत

पहले भास्कराचार्यने सूत्र दिया था “आकृष्टि शक्तिश्च मही तपायत स्वस्थ गुरु स्वामिमुख स्वशक्या ।” भूमि में आकर्षण शक्ति है। अतः आकाश में रिथत भारी वस्तु को भूमि अपनी ‘शक्ति’ से अपनी ओर खींच लेती है; और हम मानते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रतिपादन न्यूटन ने किया।

जीव एवं भौतिक द्रव्य की गति के वैज्ञानिक कारण

जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिपादन करते हुए आचार्य नेमीचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्यों के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त एवं सारांभित प्रतिपादन द्रव्यसंग्रह शास्त्र में उल्लेख करते हुए लिखा है कि ‘विस्सौद्गाई’ अर्थात् जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्वगमन स्वरूप है।^१ अमृतचंद्र सूरि तत्वार्थसार में जीव एवं पुद्गल के स्वभाव का वर्णन करते हुए उल्लेख करते हैं कि—

ऊर्ध्व गौरव धर्माणः जीवो इति जिनोत्तमै।

अधोगौरव धर्माणः पुद्गला इति चोदितम्॥

सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान् ने जीव को ऊर्ध्व गौरव (ऊर्ध्व गुरुत्व) धर्म वाला बनाया है। पुद्गल को अधोगौरव (अधोगुरुत्व) धर्मवाला प्रतिपादन किया है।

प्लावन सूत्र का आविष्कार

आर्कमिडीज ने प्लावन सूत्र, आयतन सूत्र को प्रतिपादित किया था ऐसा माना जाता है; जबकि इसका जन्मदाता प्रायः 2500 वर्ष पूर्व अभय कुमार था जो कि श्रेणिक का पुत्र एवं महामंत्री था जो अभय कुमार ने हाथी का वजन करने के लिए आयतन सूत्र का प्रतिपादन किया था। कुछ गरीब ब्राह्मणों की रक्षा के लिए किया था। श्रेणिक उसको कष्ट देना चाहता था। श्रेणिक ने कहा— हाथी का वजन करके ले आओ। इसके लिए अभयकुमार ने आर्कमिडीज जैसा सूत्र दिया था कि तुम एक नौका जल में रखो, फिर नौका में हाथी को रखो, नौका वजन कारण ढूबेगी, जहाँ तक नौका ढूबेगी वहाँ तक चिन्ह लगा दो, फिर हाथी को निकाल दो, फिर उस पथर का वजन करो, फिर वह हाथी के वजन का हो जायेगा। इस सिद्धान्त का उल्लेख पाइथागोरस के जन्म होने से पहले ही भारत के ‘शिल्पसूत्र’ में पाया जाता है।

बराहमिहिर ने वृहत् संहिता में ऋतुविज्ञान, कृषिविज्ञान, भविष्य कथन विज्ञान का वर्णन किया है।

सिंचाई के लिए जलाशय एवं बांध का निर्माण सबसे पहले भारत में सौराष्ट्र

में हुआ।

ईसापूर्व 150 वर्ष के शक राजा— रुद्रदमन के अनुसार— रैवतक पहाड़ी पर मनोरम झील— ‘सुदर्शन’ का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के कार्यकाल में हुआ।

पाँच हजार वर्ष पूर्व जब विश्व की अनेक सभ्यतायें जंगल निवासी घुमंतू लोगों तक ही सीमित थी; भारतियों ने सिन्धु घाटी में हड्पा सभ्यता का विकास किया।

अमेरिका स्थित आई.ई.ई. ने साबित किया कि प्रो. जगदीश चंद्र बसु ही बेतार संचार प्रणाली के अन्वेषक थे, न कि मार्कोनी, जिसके बारे में विश्व का वैज्ञानिक समाज सौ साल भ्रम में रहा। गणितज्ञ चंद्रशेखर ने सितारे के सबसे बड़े आकार की गणना की अब वैज्ञानिक उसी को चंद्रशेखर सीमा कहते हैं। रामानुजम् एक श्रेष्ठ गणितज्ञ थे जिन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. हार्डी के साथ संभावना सिद्धान्त (Probability Theory) की खोज की। रामानुजम की मौलिक प्रतिभा को स्वयं हार्डी ने सौ में से सौ अंक दिये जबकि स्वयं को केवल पच्चीस। इसप्रकार हार्डी के मन में रामानुज के प्रति इतना आदर था।

आदिनाथ के कुमारावस्था का काल

अपने इष्ट पुत्र और इष्ट स्त्रियों से धिरे हुए भगवान् ऋषभदेव का बहुत भारी समय निरन्तर अनेक प्रकार के दिव्य भोग भोगते हुए व्यतीत हो गया।

ततः कुमारकालोऽस्य कलितो मुनिसत्तमैः।

विंशतिः पूर्वलक्षणां पूर्यते स्म महाधियः॥१२८॥

आ. पु. पर्व १६ पृ. ३५७

इस प्रकार अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव करते हुए भगवान् का बीस लाख पूर्व वर्षों का कुमार काल पूर्ण हुआ था ऐसी उत्तम मुनि गणधरदेव ने गणना की है।

प्राचीनकाल में मनुष्यों की आयु सुदीर्घ होने के कारण कुमारकाल भी सुदीर्घ होता था। उत्तम भोगभूमिज की तीन पल्य, मध्यम भोग—भूमिज की दो पल्य, जघन्य भोगभूमिज की एक पल्य प्रमाणित आयु थी। यह आयु उत्तरोत्तर घटती गयी। आदिनाथ भगवान् ने जघन्य भोगभूमि के अन्तिम समय में जन्म लिया था। उनकी आयु ८४ लाख पूर्व वर्ष की थी। इस आयु के अनुपात से भगवान् का कुमार काल २० लाख पूर्व वर्ष का था। तीर्थकर आदि शलाका महापुरुष विशिष्ट पुण्यशाली होने के कारण सम्पूर्ण जीवन में उनकी शरीर की अवस्था कुमार काल

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता
की अवस्था के बराबर रहती है। सिर में केवल सुन्दरता के लिए केश होते हैं परन्तु, उनकी दाढ़ी-मूँछ नहीं आती है। विशिष्ट सातिशय पुण्य के कारण उनकी शरीर की संरचना अत्यन्त सुन्दर, संगठित, दृढ़, समचतुरस्र संस्थान होती है। वे आहार करते हैं, परन्तु निहार (मलमूत्र त्याग) नहीं करते हैं। विश्व में सबसे अधिक पुण्यशाली तीर्थकर होने के कारण उनको कभी भी जीवन भर रोगादि नहीं होता है।

साधारणतः देखा जाता है जो विशेष दुःखी, सन्तापी, पापी, भय, चिन्ता, रोगादि युक्त होते हैं वे शीघ्र ही वृद्ध जैसे भासित होते हैं। जो उपर्युक्त दुःख आदि से रहित होते हैं वे भी प्रायः चिरकाल तक स्वस्थ युवक जैसे भासित होते हैं।

यदि साधारण मनुष्यों में ऐसी परिस्थिति हो सकती है तब तीर्थकर जैसे महापुरुष जीवन भर कुमार अवस्था जैसे शरीर को धारण करते हैं उसमें आश्चर्य क्या है? इससे सिद्ध होता है कि चिरकुमार रहने के लिए पुण्यकर्म, तनाव-चिन्तामुक्त जीवन, सदाचार, शुद्ध शाकाहार भोजन की आवश्यकता है। उपर्युक्त सिद्धान्त को जीवन में उतारने पर अभी भी मानव पूर्ण जीवन नहीं तो जीवन के बहुअंश कुमार जैसी स्फूर्ति, ताजगी, उत्साह से भरपूर स्वरथ जीवनयापन कर सकता है।

प्रारम्भिक कर्मभूमि की दुःखित प्रजाओं की आदिनाथ से विनती

अत्रान्तरे महौषध्यो दीप्तौषधयश्च पादपाः।

ससर्वैषधयः कालाञ्चाताः प्रक्षीणशक्तिकाः॥(130)॥

इस बीच में काल के प्रभाव से महौषधि, दीप्तौषधि, कल्पवृक्ष तथा सब प्रकार की औषधियाँ शक्ति हीन हो गयी थीं।

स्वतः उत्पन्न धान्यादि की कमी

सस्यान्यकृष्टपच्यानि यान्यासन् स्थितये नृणाम्।

प्रायस्तान्यपि कालेन यथुर्विरलतां भूवि॥(131)॥

मनुष्यों के निर्वाह के लिए जो बिना बोये हुए उत्पन्न होने वाले धान्य थे वे भी काल के प्रभाव से पृथिवी में प्रायः करके विरलता को प्राप्त हो गये थे— जहाँ कहीं कुछ-2 मात्रा में ही रह गये थे।

रसवीर्य विपाकैस्तैः प्रहीणाः पादपा यदा।

तदातङ्गादिवाधामिः प्रजा व्याकुलतां गताः॥(132)॥

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

जब कल्पवृक्ष रस, वीर्य और विपाक आदि से रहित हो गये तब वहाँ की प्रजा रोग आदि अनेक बाधाओं से व्याकुलता को प्राप्त होने लगी।

तत्रहाणान्मनोवृत्तिं दधाना व्याकुलीकृताम्।

नाभिराजमुपासेदुः प्रजा जीवित काम्यया॥(133)॥

कल्पवृक्षों के रस, वीर्य आदि के नष्ट होने से व्याकुल मनोवृत्ति को धारण करती हुई प्रजा जीवित रहने के उपाय प्राप्त करने की इच्छा से उन्हें मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगी।

अथानन्तर अन्नादि से नष्ट होने से जिसे अनेक प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं और जो सबको शरण देने वाले भगवान की शरण को प्राप्त हुई है ऐसी प्रजा सनातन भगवान् के समीप जाकर इस प्रकार निवेदन करने लगी कि—

हे देव! हम लोग जीविका प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आये हुए हैं इसलिए हे तीन लोक के स्वामी! आप उसके उपाय दिखलाकर हम लोगों की रक्षा कीजिए।

हे विभो! जो कल्पवृक्ष हमारे पिता के समान थे— पिता के समान ही हम लोगों की रक्षा करते थे वे सब मूल सहित नष्ट हो गये हैं और जो धान्य बिना बोये ही उत्पन्न होते थे वे भी अब नहीं फलते हैं।

हे देव! बढ़ती हुई भूख प्यास आदि की बाधाएँ हमें दुःखी कर रही हैं। अन्न पानी से रहित हुए हम लोग अब एक क्षण भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हैं।

हे देव! शीत, आताप, महावायु और वर्षा आदि का उपद्रव आश्रय रहित हम लोगों को दुःखी कर रहा है इसलिए आज इन सबके दूर करने का उपाय कहिए।

हे विभो! आप इस युग के आदि कर्ता हैं और कल्पवृक्ष के समान उन्नत हैं, आपके आश्रित हुए हम लोग भय के स्थान कैसे हो सकते हैं?

इसलिए हे देव! जिस प्रकार हम लोगों की आजीविका निरुपद्रव हो जाये, आज उसी प्रकार उपदेश देने का प्रयत्न कीजिए और हम लोगों पर प्रसन्न होईये।

प्रजाओं के दुःख दूर करने के लिए ऋषभदेव का उपाय

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान् आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे कि

पूर्वापर विदेहेषु या स्थितिः समवास्थिता।

साय प्रवर्त्तनीयत्र ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः॥(143)॥

पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान है वही स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।

षट् कर्म एवं वर्णाश्रम

षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थितिः।

यथा ग्रामगृहादिनां संस्त्यायाश्च पृथग्विधा-।(144)।

वहाँ जिस प्रकार असि, मसि आदि छह कर्म हैं जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए।

तथा त्राप्युचितावृतिरुपायैरेभिरङ्गिनाम्।

नोपायान्तरमस्तेषां प्राणिनां जीविकां प्रति।(145)।

इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।

कर्मभूर्य जातेयं व्यतीतौ कल्पभूरुहाम्।

ततोऽत्र कर्मभिःषड्भिः प्रजानां जीविकोचिता।(146)।

कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है, इसलिये यहाँ प्रजा को असि, मसि आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।

इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षणभर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।

विभिन्न देशों की स्थापना

अथानन्तर भगवान के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।

शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद् गुरु भगवान के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथा क्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।

**कोसलादीन् महादेशान् साकेतादि पुराणि च।
सारामसीमनिगमान् खेटादीश्च न्यवेशयत्।(151)।**

तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या अदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेड़ो आदि की रचना की थी।

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुत्य, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कछ, मगथ, विर्भ, कुरुजांगल, कराहट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, कम्बोज, अरह, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय इन देशों की रचना की तथा इनके सिवाय उस समय और भी अनेक देशों का विभाग किया।

अदेवमातृकाः केचिद् विषया देवमातृकाः।

परेसाधारणाः केचिद् यथास्वं ते निवेशिताः।(157)।

इन्द्र ने उन देशों में से कितने ही देश यथासम्भव रूप से अदेवमातृक अर्थात् नदी-नहरों आदि से सींचे जाने वाले, कितने ही देश देवमातृक अर्थात् वर्षा के जल से सींचे जाने वाले और कितने ही देश साधारण अर्थात् दोनों से सींचे जाने वाले निर्माण किये थे।

अभूतपूर्वैरुद्भूतैर्भूरभातैर्जनास्पदैः।

दिवः खण्डिवियातैः कौतुकाद्वरणीतत्तम्।(158)।

जो पहले नहीं थे नवीन ही प्रकट हुये थे, ऐसे देशों से वह पृथ्वी तल ऐसा सुशोभित होता था, मानो कौतुक वश स्वर्ग के टुकड़े ही आये हों।

देशैः साधारणानूपजाङ्गलैस्तैस्तता मही।

ऐजे रजतभूर्भर्तुरारादा च पर्योनिधेः।(159)।

विजयार्ध पर्वत के समीप से लेकर समुद्र पर्यन्त कितने ही देश साधारण थे, कितने ही बहुत जलवाले थे और कितने ही जल की दुर्लभता से सहित थे, उन देशों से व्याप्त हुई पृथ्वी भारी सुशोभित होती थी।

सुरक्षोपाय एवं किले निर्माण

जिस प्रकार स्वर्ग के धारों-स्थानों की सीमाओं पर लोकपाल देवों के स्थान

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता
होते हैं उसी प्रकार उन देशों की अन्त सीमाओं पर भी सब और अन्तपाल अर्थात् सीमारक्षक पुरुषों के किले बने हुये थे।

तदन्तरात्मदे १११चबभूवुरनुरक्षिताः।
लुब्धकारण्यचरकपुलिन्दशबरादिभिः॥(161)

उन देशों के मध्य में और भी अनेक देश थे जो लुब्धक, आरण्य, चरट, पुलिन्द तथा शबर आदि म्लेच्छ जाति के लोगों के द्वारा रक्षित रहते थे।

राजधानी निर्माण

मध्ये जनपदं रेजू राजधान्यः परिष्कृताः।
वप्रप्राकार परिखाँगोपुराद्वालकादिभिः॥(162)

उन देशों के मध्यभाग में कोट, प्राकार, परिखा, गोपुर और अटारी आदि से शोभायमान राजधानी सुशोभित हो रही थी।

ग्राम नगरादि के निर्माण

तानि स्थानीयसंज्ञानि दुर्गाण्यावृत्य सर्वतः।
ग्रामादीनां निवेशोऽभूद्यथाभिहितलक्षणाम्॥(163)

जिनका दूसरा नाम स्थानीय है ऐसे राजधानीरूपी किले को घेरकर सब और शास्त्रोक्त लक्षण वाले गाँवों आदि की रचना हुई थी।

ग्रामावृतिपरिक्षेपमात्राः स्युरुचिता श्रयाः।
शूद्रकर्षकभूयिष्टाः सारामाः सजलाशयाः॥(164)

जिनमें बाड़ से घिरे हुए घर हों, जिनमें अधिकतर शूद्र और किसान लोग रहते हों तथा जो बगीचा और तालाबों सहित हों उन्हे ग्राम कहते हैं।

ग्रामः (ग्रामः) कुलशतेनेष्टो निकृष्टः समधिष्ठितः।
परस्तत्पञ्च शत्या स्यात् सुसमृद्धकृषिवलः॥(165)

जिसमें सौ घर हों उसे निकृष्ट अर्थात् छोटा गाँव कहते हैं तथा जिसमें पाँच सौ घर हों और जिसके किसान धन सम्पन्न हों उसे बड़ा गाँव कहते हैं।

ग्रामादि की सीमा

क्रोशदिक्कोशसीमानो ग्रामः स्युरधमोत्तमाः।
सम्पन्नस्यसुक्षेत्राः प्रभूतयवसोदकाः॥(166)

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता
छोटे गाँवों की सीमा एक कोस और बड़े गाँवों की सीमा दो कोस की होती है। इन गाँवों के धान के खेत सदा सम्पन्न रहते हैं और इनमें घास तथा जल भी अधिक रहता है।
सीमा के चिन्ह

सरिदूगिरि दरीगृष्टिक्षीरकण्टकशाखिनः।
वनानि सेतवश्चेति तेषां सीमोपलक्षणम्॥(167)

नदी, पहाड़, गुफा, श्मशान, क्षीरवृक्ष अर्थात् धूवर आदि के वृक्ष, बबूल आदि कंटीले वृक्ष, वन और फूल ये सब उन गाँवों की सीमा के चिन्ह कहलाते हैं अर्थात् नदी आदि से गाँवों की सीमा का विभाग किया जाता है।

राजा के कर्तव्य एवं अधिकार

तत्कर्तृभोक्तृनियमो योगक्षमानुचिन्तनम्।
विष्टिदण्डकरणां च निवन्धो राजसाद्वेत्॥(168)

गाँवों के बसाने और उपभोग करने वालों के योग्य नियम बनाना, नवीन वस्तु के बनाने और पुरानी वस्तु की रक्षा करने के उपाय वहाँ के लोगों से बेगार कराना, अपराधियों को दण्ड देना तथा जनता से कर वसूलना आदि कार्य राजाओं के अधीन रहते थे।

नगर

परिखागोपुराद्वालवप्रप्राकार मण्डतम्।
नानाभवनविन्यासां सोद्यानं सजलाशयम्॥(169)
पुरमेवंविधं शस्तमुचितोद्वै शसुस्थितम्।
पूर्वोत्तरप्लवाम्भस्कं प्रधानपुरुषोचितम्॥(170)

जो परिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्राकार से सुशोभित हो, जिसमें अनेक भवन बने हुये हों, बगीचे और तालाबों से सहित हो, जो उत्तम रीति से अच्छे स्थान पर बसा हुआ हो, जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व और उत्तर के बीच वाली ईशान दिशा की ओर हो तथा जो प्रधान पुरुषों के रहने के योग्य हो वह प्रशंसनीय पुरा अथवा नगर कहलाता है।

खर्वट

सरिदूगिरिभ्यां संरुद्धं खेटमाहुर्मनीषिणः।
केवलं गिरिसंरुद्धं खर्वटं तत्रचक्षते॥(171)

जो नगर नदी और पर्वत से घिरा हुआ हो उसे बुद्धिमान पुरुष खेट कहते हैं और जो केवल पर्वत से घिरा हो उसे खर्वट कहते हैं।

पत्तन

मङ्ग्लमामनन्ति ज्ञाः पञ्चग्रामशतीवृत्तम्।

पत्तनं तत्सुद्रान्ते यत्रौभिरवतीर्यते।(172)।

जो पांच सौ गाँवों से घिरा हो उसे पण्डितजन मङ्ग्ल मानते हैं और जो समुद्र के किनारे हो तथा जहाँ पर लोग नावों के द्वारा उत्तरते (आते-जाते) हैं उसे पत्तन कहते हैं।

संवाह

भवेद् द्रोणमुखं नामा निम्नगातटमाश्रितम्।

संवाहस्तु शिरोव्यूठ धान्य संचय इष्वते।(173)।

जो किसी नदी के किनारे पर हो उसे द्रोणमुख कहते हैं और जहाँ मस्तक पर्यन्त ऊँचे-ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों वह संवाह कहलाता है।

पुटभेदनभेदानाममीषां च क्वचित् क्वचित्।

संनिवेशोऽभवत् पृथक्यां यथोदेशमितोऽमुतः।(174)।

इसप्रकार पृथक्या पर जहाँ-तहाँ अपने योग्य स्थानों के अनुसार कहीं-कहीं पर ऊपर कहे हुए गाँव, नगर आदि की रचना हुई थी।

राजधानी आदि

शतान्यष्टौ च चत्वारि द्वे च स्युर्गामसंख्या।

राजधान्यास्तथा द्रोणमुखखर्वटयोः क्रमात्।(175)।

दशग्राम्यास्तु मध्ये यो महान् ग्रामः स संग्रहः।

तथा योषकरादिनामपि लक्ष्म विकल्पताम्।(176)।

एक राजधानी में आठ सौ गाँव होते हैं, एक द्रोणमुख में चार सौ गाँव होते हैं और एक खर्वट में दो सौ गाँव होते हैं। दस गाँवों के बीच जो एक बड़ा भारी गाँव होता है उसे संग्रह (जहाँ पर हरेक वस्तुओं का संग्रह रखा जाता हो) कहते हैं। इसी प्रकार धोष तथा आकार आदि के लक्षणों की कल्पना कर लेनी चाहिए अर्थात् जहाँ पर बहुत धोष (अहीर) रहते हैं, उसे धोष कहते हैं और जहाँ पर सोने चाँदी आदि की खान हुआ करती है, उसे आकर कहते हैं।

पुरां विभागमित्युच्चौः कुर्वन् गीर्वाण नामकः।

तथा पुरन्दर स्वातिमगादन्वर्थतां गताम्।(177)।

इस प्रकार इन्द्र ने बड़े अच्छे ढंग से नगर, गाँवों आदि का विभाग किया था। इसलिये वह उसी समय से पुरन्दर इस सार्थक नाम को प्राप्त हुआ था।

ततः प्रजा निवेश्यैषु स्थानेषु स्रष्टुराज्ञया।

जगाम कृतकार्यो गां मध्यवानुज्ञया प्रभोः।(178)।

तदनन्तर इन्द्र भगवान की आज्ञा से इन नगर, गाँव आदि स्थानों में प्रजा को बसा कर कृतकृत्य होता हुआ प्रभु की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया।

आद्य जीविका निर्वाह प्रशिक्षण का प्रारम्भ

असिर्मपिः कृषिविद्या वाणिज्य शिल्पमेव च।

कर्माणीमानि षोडा स्युः प्रजाजीवनहेतवः॥(179)

तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान् मति कौशलात्।

उपादिक्षत सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरु॥(180)

असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छः कार्य प्रजा की आजीविका के कारण हैं। भगवान् वृषभदेव ने अपनी बुद्धि की कुशलता से प्रजा के लिए इन्हीं छः कर्मों के द्वारा वृत्ति (आजीविका) करने का उपदेश दिया था सो ठीक ही है क्योंकि उस समय जगद्गुरु भगवान् सरागी ही थे वीतरागी नहीं थे। सांसारिक कार्यों का उपदेश सराग अवस्था में दिया जा सकता है।

आद्य वर्णों की स्थापना एवं उनकी जीविका

उत्पादितास्त्रयो वर्णास्तदा तेनादिवेधसा॥

क्षत्रिया वणिजः शूद्राः क्षतन्नाणादिभिर्गुणैः॥(183)।

क्षत्रियाः शस्त्रजीवित्वमनुभय तदाभवन्।

वैश्याश्च कृषिवाणिज्य पाशुपाल्योपजीविताः॥(184)।

तेषां शुश्रूणाच्छूद्रास्ते दिधा कार्व कारवः।

कारवो रजकाद्याः स्युः ततोऽन्ये स्युरकारवः॥(185)।

उसी समय आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ने तीन वर्णों की स्थापना की थी जो कि क्षत्रिय अर्थात् विपत्ति से रक्षा करना आदि गुणों के द्वारा क्रम से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहलाते थे। उस समय जो शस्त्र धारणकर आजीविका करते थे वे

क्षत्रिय हुए, जो खेती, व्यापार तथा पशुपालन आदि के द्वारा जीविका करते थे वे वैश्य कहलाते थे और जो उनकी सेवा सुश्रुषा करते थे वे शूद्र कहलाते थे। वे शूद्र दो प्रकार के थे—एक कारु दृसंरा अकारु। धोबी आदि शूद्र कारु कहलाते थे और उनसे भिन्न अकारु कहलाते थे।

सामाजिक व्यवस्था—

यथास्यं स्वोचितं कर्म प्रजारधुर संकरम्।
विवाह जाति संबन्धव्यवहारश्च तन्मतम्। (187)।

उस समय प्रजा अपने—अपने योग्य कर्मों को यथायोग्य रूप से करती थी। अपने वर्ग की निश्चित आजीविका को छोड़कर कोई दूसरी आजीविका नहीं करता था। इसलिये उनके कार्य में कभी संकर (मिलावट) नहीं होता था। उनके विवाह, जाति सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि सभी कार्य भगवान आदिनाथ की आज्ञानुसार होते थे।

आद्य राजा : ऋषभदेव

ऋषभदेव का राज्याभिषेक

इस प्रकार जब कितना ही समय व्यतीत हो गया और छह कर्मों की व्यवस्था से जब प्रजा कुशलता पूर्वक सुख से रहने लगी तब देवों ने आकर शीघ्र ही उनका सम्राट पद पर अभिषेक किया। उस समय उसका प्रभाव स्वर्गलोक और पृथ्वी लोक में खूब ही प्रकट हो रहा था।

नाभिराज आदि को लेकर जो बड़े-बड़े राजा थे उन सभी ने सब राजाओं में श्रेष्ठ यह ऋषभदेव वास्तव में राजा के योग्य है, ऐसा मानकर उनका एक साथ अभिषेक किया था।

इस प्रकार जब देवों के बन्दी जन उच्च स्वर से शुभ स्नान सूचक मंगल पाठ पढ़ रहे थे तब भगवान वृषभदेव ने राज्य लक्ष्मी को धारण करने अथवा उसके साथ विवाह करने योग्य स्नान को प्राप्त किया था।

महा मुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति भगवान वृषभदेव ही हैं, यह कहते हुए महाराज नाभिराज ने अपने मस्तक का मुकुट अपने हाथ से उतार कर भगवान के मस्तक पर धारण किया था।

भोगभूमि के समय में भोग भूमिज मनुष्य एवं पशु स्वभावतः अत्यन्त सरल, न्यायप्रिय, नम्र होने के कारण तथा जीवनोपयोगी सामग्री इच्छानुसार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के कारण उस समय किसी प्रकार का विशेष अन्याय, अत्याचार नहीं होता था। इसीलिये उस समय में प्रत्येक जीव सुखी, स्वावलम्बी एवं स्वयं

अनुशासित था। इसीलिए उस समय तक एक अनुशासन कर्ता एवं अनुशासन प्रणाली की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु कर्मभूमि के प्रारम्भ में जीवनोपयोगी सामग्री की कमी होने से तथा स्वभाव में असदाचारण, अन्याय, अत्याचार का प्रवेश होने के कारण अनुशासन कर्ता एवं विशेष अनुशासन पद्धति की आवश्यकता हुई। इसीलिए एक अनुशासन कर्ता (राजा) की नियुक्ति करना अनिवार्य हो गया। अतः विज्ञ जन—गण एवं देवगण ने मिलकर सर्वगुण सम्पन्न ऋषभदेव का राजा के रूप में चुनाव किया।

विश्व के भरत खण्ड सम्बन्धी प्रथम राजा ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव ने राजा होकर प्रजा की सुख-सुविधाओं के लिए पूर्व संस्कारित ज्ञान विज्ञान अनुभव से एवं तात्कालिक परिस्थिति को लेकर विभिन्न अनुशासन प्रणालियाँ शोध-बोध करके प्रचारित कीं।

राज पोषाक

जगत मात्र के बन्धु भगवान वृषभदेव के ललाट पर पट्टबंध भी रखा जो कि ऐसा मालूम होता था मानों यहाँ वहाँ भागने वाली चंचल राज्यलक्ष्मी को रिथर करने वाला एक बंधन ही हो।

उस समय भगवान माला पहने हुए थे, उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, उनके दोनों कानों में कुण्डल सुशोभित हो रहे थे। वे मस्तक पर लक्ष्मी के क्रीड़ाचल के समान मुकुट धारण किये हुए थे, कण्ट में हार लता और कमर में करधनी पहने हुए थे, जिस प्रकार हिमवान पर्वत गंगा का प्रवाह धारण करता है उसी प्रकार वे भी अपने कंधे पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे।

उनकी दोनों लम्बी भुजाएं कड़े, बाजुबन्द और अनन्त आदि आभूषणों से विभूषित थी। उन भुजाओं से भगवान ऐसे मालूम होते थे, मानो शोभायमान बड़ी-2 शाखाओं से सहित चलता—फिरता कल्पवृक्ष ही हो। उनके चरण नीलमणि के बने हुए नूपुरों से सहित थे इसीलिए ऐसे जान पड़ते थे मानो जिन पर भ्रमर बैठे हुए हैं ऐसे खिले हुए दो लाल कमल ही हों। इस प्रकार प्रत्येक अंग में पहने हुए आभूषण रूपी सम्पदा से आदि ब्रह्मा भगवान वृषभदेव ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों भूषणांग जाति के कल्पवृक्ष हों।

ऋषभदेव का राज्यानुशासन—

अथानन्तर कर्मभूमि की रचना करने वाले भगवान वृषभदेव ने राज्य पाकर

महाराज नाभिराज के समीप ही प्रजा का पालन करने के लिए नीचे लिखे अनुसार प्रयत्न किया।

राज्यानुशासन विभाग

कृत्वादितः प्रजासर्गं तद् वृत्तिनियमं पुनः स्वर्धमानतिवृत्त्यैव नियच्छन्नन्वशात् प्रजाः।(242)

भगवान ने सबसे पहले प्रजा की सृष्टि (विभाग आदि) की, फिर उसकी आजीविका के नियम बनाये और फिर वे अपनी-अपनी मर्यादा का उल्लंघन न कर सकें इस प्रकार के नियम बनाये। इस तरह वे प्रजा का शासन करने लगे।

प्रजा का विभाग

क्षत्रिय

**स्वदोभ्या यारयान् शस्त्रं क्षत्रियान् सृजद् विभुः।
क्षत्रिये नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः।(43)**

उस समय भगवान ने अपनी दोनों भुजाओं में शस्त्र धारण कर क्षत्रियों की सृष्टि की थी, अर्थात् उन्हें शस्त्र विद्या का उपदेश दिया था, सो ठीक ही है, क्योंकि जो हाथों में हथियार लेकर सबल शत्रुओं के प्रहार से निर्बलों की रक्षा करते हैं वे ही क्षत्रिय कहलाते हैं।

वैश्य

**ऊरुभ्यां दर्शयन् यात्रामस्त्राक्षीद् वणिजः प्रभुः।
जलस्थलादियात्राभिस्तद् वृत्तिर्वर्तया यतः।(244)**

तदनन्तर भगवान ने अपने ऊरुओं से यात्रा दिखलाकर अर्थात् परदेश जाना सिखलाकर वैश्यों की रचना की सो ठीक ही है, क्योंकि जल, स्थल आदि प्रदेशों में यात्रा करके व्यापार करना ही उनकी मुख्य आजीविका है।

शुद्र

**न्यग्रृतिनियतां शूद्रां पदभ्यामेवासृजत् सुधीः।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिनैककथा स्मृता।(245)**

हमेशा नीच (दैन्य) वृति में तत्पर रहने वाले शूद्रों की रचना बुद्धिमान ऋषभदेव ने पैरों से ही की थी, क्योंकि ब्रात्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन उत्तम वर्णों की सेवा सुश्रूषा आदि करना ही अनेक प्रकार की आजीविका है।

ब्रात्मण

**मुखतोऽध्यापयन् शास्त्रं भरतः स्रक्ष्यति द्विजान्।
अधीत्यध्यापने दानं प्रतिच्छेष्येति तत्क्रियाः।(246)**

इस प्रकार तीन वर्णों की सृष्टि तो स्वयं भगवान् वृषभदेव ने की थी, उनके बाद भगवान् वृषभदेव के बड़े पुत्र महाराज भरत के मुख से शास्त्र का अध्ययन कराते हुए ब्रात्मणों की रचना करेंगे, स्वयं पढ़ना, दूसरों को पढ़ाना, दान लेना तथा पूजा यज्ञ आदि उनके कार्य होंगे।

आदिनाथ भगवान जन्मतः अवधिज्ञान से सम्पन्न थे। भोग भूमि के अवसान के बाद कर्म भूमि का आगमन हुआ। भोगभूमि में व्यक्तिनिष्ठ जीवन था। कर्मभूमि में समाज निष्ठ जीवन प्रारम्भ हुआ। समाज को सुसंगठित एवं उत्साह सहित सुचारू रूप से परिपालन करने के लिए आदिनाथ भगवान ने अवधिज्ञान से शाश्वतिक कर्मभूमि विदेह की अवस्था को अवगत जान करके विदेह की व्यवस्था के सदृश इस भूखण्ड में भी विदेह की व्यवस्था प्रारम्भ की। उन्होंने गुण, कर्म के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की स्थापना की। जो दूसरे की रक्षा करते हैं वे क्षत्रिय हुए। जिन्होंने जंघा बल से व्यवसाय आदि कार्य सम्पादन करके समाज की सेवा की वे वैश्य हुए। जिन्होंने समाज उपकारक क्षत्रिय एवं वैश्यों की सुरक्षा के लिये उनकी सेवा की वे शूद्र हुए।

आदिनाथ भगवान् ने सामाजिक, सुसंगठन, परिचालन, एवं लौकिक कर्तव्य को संपादन करके अलौकिक, अध्यात्मिक उन्नतिके लिए जब सर्व सन्यास रूप मुनिव्रत को स्वीकार करके आत्मसाधना के माध्यम से जगत् उद्धारक तीर्थकर पदवी को प्राप्त कर ली थी। उस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत ने गुण, कर्म एवं व्रत सम्पन्न धर्मात्मा व्यक्तियों को ब्रात्मण वर्णरूप में स्थापन किया। जो ब्रह्म को जानते हैं, धर्मानुकूल आचरण करते हैं, तथा धर्मानुकूल आचरण दूसरों को करवाते हैं वे ब्रात्मण हुए। इसीलिए ब्रात्मण सम्पूर्ण वर्णों में शील स्थानीय मुख्य हुए।

हिन्दु धर्म में रुपक अलङ्कारीय भाषा में इसका प्रतिपादन किया गया है कि, जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होता है वह ब्रात्मण, जो ऊरुओं से उत्पन्न होता है वह वैश्य और जो पैरों से उत्पन्न होता है वह शूद्र है। यह वर्ण व्यवस्था सामाजिक सुव्यवस्था के लिए गुण, कर्म व्यवसाय के लिए अनुकूल करना हितकर एवं

अनिवार्य है।

**स्वामिमां वृत्तिमुक्तस्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत्।
स पार्थिवैर्नियन्त्रयो वर्णसंकीर्णरन्यथा।(248)।**

उस समय भगवान ने यह भी नियम प्रचलित किया था कि जो कोई अपने वर्ण की निश्चित आजीविका छोड़कर दूसरे वर्ण की आजीविका करेगा वह राजा के द्वारा दण्डित किया जाएगा क्योंकि ऐसा न करने से वर्ण संकीर्णता हो जायेगी अर्थात् सब वर्ण एक हो जायेंगे उनका विभाग नहीं हो सकेगा।

कर्मभूमि का कारण

**कृष्णादिकर्मषट्कं च सृष्टा प्रागेव सृष्टवान्।
कर्मभूमिरियं तस्मात् तदासीत्तद्व्यवस्थ्या।(249)।**

भगवान आदिनाथ के द्वारा विवाह आदि की व्यवस्था करने के पहले ही असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मों की व्यवस्था होने से यह कर्मभूमि कहलाने लगी थी। भोगभूमि के समय में पूर्वोपार्जित पृथ्य कर्म के उदय से कल्पवृक्ष से सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्री अर्जन करने के लिए किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भोगभूमि के अवसान के बाद कर्मभूमि के प्रादुर्भाव से कल्पवृक्ष विलीन होने के कारण जीवनोपयोगी सामग्रियों की उपलब्धि न होने के कारण प्रजाओं को अनेक कष्टमयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उस कष्टमयी परिस्थितियों से प्रजाओं की सुरक्षा के लिए कुछ प्रणालियाँ प्रजाओं को सिखाई थी। इस असि, मसि आदि कर्म के कारण इस युग को कर्मयुग एवं इस भूमि को कर्मभूमि कहने लगे।

दण्डनीति

**सृष्टेति ताः प्रजाः सृष्ट्वा तद्योगक्षेमसाधनम्।
प्रायुड्क्त युक्तितो दण्डं हामाधिक्कारत्क्षणम्।(250)।**

इस प्रकार ब्रह्मा आदिनाथ ने प्रजा का विभाग कर अनेक भोग (नवीन वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा) की व्यवस्था की। रक्षा के लिए युक्ति पूर्वक हा, मा और धिक्कार इन तीन दण्डों की व्यवस्था की थी।

दुष्टानां निग्रहः शिष्टं प्रतिपातनमित्ययम्।

न पुरासीक्लमो यस्मात् प्रजाः सर्वा निरागसः।(251)।

दुष्ट पुरुषों का निग्रह करना अर्थात् उन्हे दण्ड देना और सञ्चन पुरुषों का

पालन करना यह क्रम कर्मभूमि से पहले अर्थात् भोगभूमि में नहीं था क्योंकि उस समय पुरुष निरपराध होते थे। किसी प्रकार का अपराध नहीं करते थे।

दण्डनीति की उचितता

**प्रजा दण्डधराभावे मात्स्यं न्यायं श्रयन्त्यमूः।
ग्रस्यतेऽन्तः प्रदुष्टेन निर्बलो हि बलीयसा।(252)।**

कर्मभूमि में दण्ड देने वाले राजा का अभाव होने पर प्रजा मात्स्यन्याय का आश्रय करने लगेगी अर्थात् जिस प्रकार बलवान मच्छ छोटे मच्छों को खा जाते हैं उसी प्रकार दुष्ट बलवान पुरुष, निर्बल पुरुष को निगल जाएगा।

**दण्डभीत्या हि तोकोऽयमपथं नानुधावति।
युक्तदण्डधरस्तस्मात् पार्थिवः पृथिवीं जयेत्।(253)।**

यह लोग दण्ड के भय से कुमार्ग की ओर नहीं दौड़ेंगे इसलिए दण्ड देने वाले राजा का होना उचित ही है और ऐसा राजा ही पृथिवी को जीत सकता है।

भोग भूमिज मानव स्वभावतः सरल स्वभावी, निरपराधी, नीतिवान होने के कारण वे लोग स्वभावतः ही अनीति, अन्याय, दुराचार, शोषण आदि नहीं करते थे। इसलिये भोगभूमि में दण्डनीति की कोई प्रकार की आवश्यकता एवं उचितता नहीं थी किन्तु कर्मभूमिज मानव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रेरित होकर अन्याय, अत्याचार, दुराचार तथा अनैतिक कार्य करने लगे। शक्तिशाली मनुष्य दुर्बलों को पीड़ित करने लगे, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को पीड़ा देती है तथा खा जाती है। इस अनैतिक उपक्रम को रोकने के लिये एक नीति पूर्ण व्यवस्था वृषभदेव ने विशेष रूप से प्रारम्भ की थी, जिसको दण्डनीति कहते हैं। आचार्य गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन में स्पष्ट रूप से दण्डनीति की आवश्यकता स्वीकार करते हुए कहते हैं कि— “कलौ दण्डोनीतिः” कलिकाल की नीति दण्डनीति है और वह दण्डनीति राजाओं के द्वारा प्रचारित, प्रसारित एवं पेषित होती है। योग्य दण्डनीति के अभाव से दुष्ट दुर्जन दोषी जन अधिक ही अन्याय, अत्याचार में प्रवृत्ति करते हैं इसीलिए जिस प्रकार रोगी को निरोगी करने के लिए योग्य वैद्य रोगी को कड़वी औषधि देता है, अपथ्य सेवन से दूर रखता है तथा शल्य चिकित्सा भी करता है इससे भले तात्कालिक रोगी को क्षणिक दुःख-कष्ट हो तो भी आगामी काल में रोगी को अधिक सुख की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार योग्य नीति से दोषी को दण्ड देने पर उसको तात्कालिक कष्ट हो सकता है किन्तु भविष्यत में दोषी

व प्रजा को अधिक सुख सुविधा प्राप्त होती है।

वर्तमान काल में शारीरिक दण्ड कम करके उसकी (दोषी की) मानसिक – विचारधारा को परिवर्तन करके निर्दोषी बनाने के लिए देश-विदेश में मनोवैज्ञानिक पद्धति से दण्ड का प्रयोग किया जा रहा है यह एक उत्तम रीति है। परन्तु कुछ उच्चाधिकारी, न्यायालय के कर्मचारी वर्ग, वकील एवं न्यायाधीश रिश्वत लेकर न्यायी को अन्यायी एवम् अन्यायी को न्यायी सिन्दू करते हैं तथा योग्य दण्ड न मिलने के कारण देश-विदेश में अन्याय व अत्याचार दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। एक दोषी को योग्य रीति से दण्ड देने पर अन्य लोग दोष करने से भयभीत होते हैं जिससे वे दोष नहीं करते हैं तथा दोषी का दोष दूर होता है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में शान्ति का साम्राज्य विस्तारित होता है।

कर व्यवस्था

पर्यस्तिन्या यथा क्षीरमद्रोहे पोपजीव्यते।

प्रजाय्वेवं धनं दोष्या नातिपीडाकैरः कैरः।(254)

जिस प्रकार दूध देने वाली गाय से उसे बिना किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाये दूध दुहा जाता है और ऐसा करने से वह गाय भी सुखी रहती है तथा दूध दुहने वाले की आजीविका भी चलती रहती है उसी प्रकार राजा को भी प्रजा से धन वसूल करना चाहिए। वह धन अधिक पीड़ा न देने वाले करों (टैक्सों) से वसूल किया जा सकता है। ऐसा करने से प्रजा भी दुःखी नहीं होती और राज्य – व्यवस्था के लिए योग्य धन भी सरलता से मिल जाता है।

प्रशासन चलाने के लिए अर्थ की भी आवश्यकता होती है। देश के नवनिर्माण, जलसंचय, व्यवस्था दुष्काल से पीड़ित प्रजा की सहायता, वैदेशिक, आक्रमण से देश की सुरक्षा आदि के लिए अर्थ की नितान्त आवश्यकता होती है। कभी-कभी आपात कालीन परिस्थिति में हठात् अधिक अर्थ की आवश्यकता भी हो जाती है इन सब परिस्थितियों के लिए अर्थसंचय राजकोष में नितान्त अनिवार्य है। इसीलिये न्यायवत् प्रजापालक राजा प्रजा को बिना कष्ट दिए उनसे कुछ अर्थ स्वीकार करता है जिसको कर कहा जाता है। करों से संचित धन राजा स्वस्वार्थ के लिये खर्च न करता हुआ प्रजा के हित के लिए व्यय करता है। प्रजा से अनीति पूर्ण अधिक कर लेना प्रजा का रक्त शोषण है। राजस्व से राजाका स्वस्वार्थ के लिए व्यय करना राजनीति एवं धर्मनीति के विरुद्ध है। इसीलिए जो राजा राजस्व को हरण करता है वह भी दण्डनीय है। योग्य कर देना प्रजा का कर्तव्य है। योग्य

कर नहीं देने वाली प्रजा भी राजनीति एवं धर्मनीति से विरुद्ध कार्य करने के कारण दण्डनीय है।

राज्य विभाग (दण्डधरों की नियुक्ति)

ततो दण्डधरनेता ननु मेने नृपान् प्रभुः।

तदायत्तं हि लोकस्य योगक्षेमानुचित्तनम्।(255)

इसीलिये भगवान् वृषभदेव ने नीचे लिखे हुए पुरुषों को दण्डधर (प्रजा को दण्ड देने वाला) राजा बनाया जो ठीक ही है क्योंकि प्रजा के योग और क्षेम का विचार करना उन राजाओं के ही अधीन होता है।

(1) महामण्डलीक राजा की नियुक्ति

समाहूय महाभागान् हर्यकम्पनकाश्यपान्।

सोमप्रभं च संसान्य सत्कृत्य च यथोचितम्।(256)

कृतभिषेचनानेतान् महामण्डलिकान् नृपान्।

चतुःसहस्रभूनाथपरिवारान् व्यधाद् विभुः।(257)

भगवान् ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महाभाग्यशाली क्षत्रियों को बुलाकर उनका यथोचित सम्मान और सत्कार किया। तदनन्तर राज्याभिषेक कर उन्हें महामण्डलीक राजा बनाया। ये राजा चार हजार अन्य छोटे राजाओं के अधिपति थे।

(2) कुरुवंश का प्रथम राजा

सोमप्रभः प्रभोराप्तकुरु राजसमाहूयः।

कुरुणामधिराजोऽभूत् कुरुवंश शिखामणिः।(258)

सोमप्रभ भगवान् से कुरुराजा नाम पाकर कुरुदेश का राजा हुआ और कुरु वंश का शिखामणि कहलाया।

(3) हरिवंश का प्रथम राजा

हरिश्च हरिकान्ताख्यां दधानस्तदनुज्ञया।

हरिवंशमलंचक्रे श्रीमान् हरिपराक्रमः।(259)

हरि, भगवान की आज्ञा से हरिकान्त नाम को धारण करता हुआ हरिवंश को अलंकृत करने लगा क्योंकि वह श्रीमान् हरिपराक्रम अर्थात् इन्द्र अथवा सिंह के समान पराक्रमी था।

(4) नाथ वंश का प्रथम राजा

अकम्पनोऽपि सृष्टिशत् प्राप्तश्रीधरनामकः।
नाथवंशस्य नेताभूत् प्रसन्ने भुवनेशिनि॥(260)

अकम्पन भी भगवान से श्रीधर नाम पाकर उनकी प्रसन्नता से नाथवंश का नायक हुआ।

(5) उग्रवंश का प्रथम राजा

काश्यपोऽपि गुरोः प्राप्तमाधवाख्यः पतिर्विशाम्।
उग्रवंशस्य वंशयोऽभूत् किञ्चाप्यं स्वामिसम्पदा॥(261)

और कश्यप भी जगद्गुरु भगवान से मधवा नाम प्राप्त कर उग्रवंश का मुख्य राजा हुआ सो ठीक ही है स्वामी की सम्पदा से क्या नहीं मिलता अर्थात् सब कुछ मिलता है।

आधिराज नियुक्ति

तदा कच्छ महाकच्छ प्रभुखानपि भूभुजः।
सोऽधिराजपदे देवः स्थापयामास सत्कृतान्॥(262)

तदनन्तर भगवान् आदिनाथ ने कच्छ महाकच्छ आदि प्रमुख-प्रमुख राजाओं का सत्कार कर उन्हें अधिराज के पद पर स्थापित किया।

प्रशासन की सुव्यवस्था के लिए बड़े राष्ट्र को अनेक उपविभाग में विभक्त करके उस विभाग का अनुशासन करने के लिए यथायोग्य महामण्डलीक, अधिराज नियुक्त किये। जिस प्रकार वर्तमान काल में देश को अनेक प्रदेश एवं प्रदेश को अनेक जिला में विभक्त किया जाता है।

पहले एक ही क्षत्रियवंश था। परन्तु ऋषभदेव के समय में विभिन्न राज्यों में राज्यशासन करने वाले प्रधान राजाओं के नाम पर विभिन्न क्षत्रिय वंशों का शुभारम्भ हुआ।

पुत्रों की व्यवस्था

पुत्रानपि तथा योग्यं वस्तुवाहनसंपदा।
भगवान् संविधत्ते स्म तद्धिराज्योब्जने फलम्॥(263)

इसी प्रकार भगवान ने अपने पुत्रों के लिए भी यथायोग्य रूप से महल, सवारी तथा अनेक प्रकार की सम्पत्ति का विभाग कर दिया था। सो ठीक ही है क्योंकि

पुत्र पिता का उत्तराधिकारी है। जिस प्रकार पुत्र का परम कर्तव्य पिता की सेवा करना है उसी प्रकार पुत्र को भी योग्य अधिकार देना पिता का कर्तव्य हो जाता है। नीतिकारों ने कहा है-

पालयेत् पंचवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्तेषु षोडशवर्षे, पुत्रं मित्रवदा चरेत्॥

पुत्र को पाँच वर्ष तक पालन करना चाहिए, दस वर्ष तक सुयोग्य बनाने के लिए योग्य शिक्षा-दीक्षा के लिए ताड़न करना चाहिए तथा पुत्र के सोलह वर्ष का होने के पश्चात् मित्र के समान आचरण करना चाहिए।

योग्य अवसर पर यदि पुत्र को योग्य अधिकार नहीं दिया जाता है तो पुत्र भी पिता के प्रति योग्य कर्तव्य परायण नहीं होता है। इसलिए वृषभदेव ने योग्य काल देखकर उनकी भी योग्य व्यवस्था की थी।

वर्तमान काल में कुछ पिताओं द्वारा योग्य पुत्र को वृद्धावस्था में भी योग्य अधिकार नहीं देने के कारण आधुनिक पुत्र भी पिताओं को योग्य आदर सत्कार सम्मान नहीं देते हैं। जैन कानून में वर्णित है कि, विवाहित योग्य पुत्रों को योग्य पैत्रिक - सम्पत्ति देकर अपने पैर पर खड़े होने के लिए उनको स्वतन्त्र कर देना चाहिए जिससे पुत्र जीवन में स्वावलम्बी होकर स्वतन्त्र सुखमय जीवन-यापन कर सके। योग्य काल में उपरोक्त कार्य सम्पादन करने से पिता, पुत्र में स्नेह, सौहार्द एवं संगठन रहता है। वर्तमान काल में कुछ पिताओं द्वारा पुत्रों को उपरोक्त अधिकार नहीं देने से पुत्र भी विवाह के अनन्तर कलह करके अलग हो जाते हैं जिससे परिवार में स्नेह, सौहार्द, संगठन नहीं रहता है। यदि स्वयं पुत्र उपरोक्त अधिकार नहीं चाहता है तो अलग बात है।

इक्षु रस आविष्कारक ऋषभदेव

आकनाच्चा तदेक्षुणां रससंग्रहणे नृणाम्।

इक्ष्वाकुरित्यभूद देवो जगतामभिसंमतः॥(264)

आ० पु. पृ. 3। भाग ।

उस समय भगवान् ने मनुष्यों को इक्षु का रस संग्रह करने का उपदेश दिया था। इसलिए जगत् के लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे।

भोगभूमि के काल में समस्त खाद्य सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है, परन्तु

आदिनाथ के समय तक कल्पवृक्ष से यथेष्ट खाद्य सामग्री प्राप्त होना दुर्लभ हो गया था। उस समय स्वयं उत्पन्न रस भरित इक्षुदण्ड से रस निकालकर उस रस के प्रयोग का ऋषभदेव ने प्रजा को प्रशिक्षण दिया था इसलिए जगत् के लोगों ने ऋषभदेव को इक्षवाकु नाम से सम्बोधित किया। इसलिए ऋषभदेव भगवान का वंश इक्षवाकु क्षत्रिय वंश है।

सर्व अपाप आजीविका की शिक्षा

यावती जगती वृत्तिरपापोपहता च या।

सा सर्वास्य मतेनासीत् स हि धाता सनातनः॥(188)॥

उस समय संसार में जितने पापरहित अजीविका के उपाय थे वे सब भगवान ऋषभदेव की सम्मति में प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि सनातन ब्रह्मा भगवान ऋषभदेव ही हैं।

युग निर्माता आदि ब्रह्मा (कृतयुग)

युगादि ब्रह्मणा तेन यदित्यं स कृतो युगः।

ततः कृतयुगं नाम्नातं पुराण विदो विदुः॥(189)॥

चूंकि युग के आदि ब्रह्मा भगवान वृषभदेव ने इस प्रकार कर्म युग का प्रारम्भ किया था। इसलिए पुराण के जानने वाले उन्हें कृतयुग नाम से जानते हैं।

कर्म युग प्रारंभ

युगादि ब्रह्मणा तेन यदित्यं स कृतो युगः।

ततः कृतयुगं नाम्नातं पुराण विदो विदुः॥(189)॥

आषाढ़ मासवहु लप्रतिपद्विवसे कृति।

कृत्या कृतयुगारम्भं प्रजापत्यमुपेयिवान्॥(190)॥

कृतकृत्य भगवान ऋषभदेव आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन कृतयुग का प्रारंभ करके प्रजापत्य (प्रजापतिपने) को प्राप्त हुए थे अर्थात् प्रजापति कहलाने लगे।

वस्तुतः विश्व अनादि अकृत्रिम होने के कारण इसका कर्ता, धर्ता, हर्ता कोई नहीं है, परन्तु भोगभूमि के उपरान्त आदिनाथ भगवान् कर्मभूमि संबंधी समस्त व्यवस्था जन-हित के लिए प्रचार-प्रसार करने के कारण आदिनाथ ही व्यवहारनय की अपेक्षा आदि ब्रह्मा प्रजापति युग निर्माता कहलाये।

आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन ऋषभदेवने कृतयुग (कर्मयुग) प्रारम्भ किया था। इसलिए इस दिन को युगादि दिवस (वर्षारम्भ) कहते हैं।

विधाता विश्वकर्मा च सूष्टा चेत्यादिनामभिः।

प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म जगतां पतमिच्युतम्॥(267)॥

इनके सिवाय तीनों जगत् के स्वामी और विनाश रहित भगवान को प्रजा 'विधाता' 'विश्वकर्मा' और 'सूष्टा' आदि अनेक नामों से पुकारती थी।

गौः स्वर्ग स प्रकृष्टात्मा गौतमोऽभिमतः सत्ताम्।

स तस्मादागतो देवो गौतम श्रुतिमन्वभूत्॥(265)॥

'गौ' शब्द का अर्थ स्वर्ग है, जो उत्तम स्वर्ग हो उसे सञ्जन पुरुष गौतम कहते हैं। भगवान ऋषभदेव स्वर्गों में सबसे उत्तम सर्वार्थसिद्धि से आये थे इसलिये 'गौतम' इस नाम को प्राप्त हुए थे।

काश्यमित्युत्यते तेजः काश्यपस्तस्य पात्नात्।

जीवनोपायमननान् मनुः कुलधरोऽप्यसौ॥(266)॥

भगवान् वृषभदेव उस तेज के रक्षक थे इसलिए 'काश्यप' कहलाते हैं। उन्होंने प्रजा की आजीविका के उपायों का भी मनन किया था इसलिए वे मनु और कुलकर भी कहलाते थे।

राज्यकाल

भगवान् का राज्यकाल 63 लाख पूर्व नियमित था सो उनका वह भारी काल पुत्र, पौत्रों आदि के सुख का अनुभव करते हुये उन्हें इस बात का पता ही नहीं चला कि मुझे राज्य करते हुए कितना समय (काल) हो गया है।

महादैदीप्यमान भगवान् ऋषभदेव ने अयोध्या के राज्य सिंहासन पर आसीन होकर पुण्योदय से प्राप्त हुई साम्राज्य लक्ष्मी का सुख से अनुभव किया था।

स्वर्ग से आयात सामग्री

इत्थं सुरासुरगुरुर्गुरु पुण्य योगाद्।

भोगान् वितन्वति तदा सुरतोकनाथे॥

सौख्यैरगाद् धृतिमविन्यधृतिः स धीरः।

पुण्यार्जने कुरुत यत्नमतो बुधेन्द्राः॥(270)॥

इस प्रकार सुर और असुरों के गुरु तथा अचिन्त्य धैर्य के धारण करने वाले

भगवान् कृष्णभद्रेव को इन्द्र उनके विशाल पुण्य के संयोग से भोगोपभोग की सामग्री भेजता रहता था, जिससे वे सुखपूर्वक संतोष को प्राप्त होते रहते थे। इसलिये हे पण्डित जन! पुण्योपार्जन करने में प्रयत्न करो।

इस प्रकार जो प्रशस्त लक्ष्मी के स्वामी थे, स्थिर रहने वाले भोगों का अनुभव करते थे, स्नेह रखने वाले अपने पुत्र पौत्रों के साथ संतोष धारण करते थे। इन्द्र सूर्य और चन्द्रमा आदि उत्तम-उत्तम देव जिनकी आज्ञा पालन करते थे और जिन पर किसी की आज्ञा नहीं चलती थी ऐसे भगवान् कृष्णभद्रेव सिंहासन पर आरुङ् होकर इस समुद्रान्त पृथ्वी पर शासन करते थे।

‘जय जीव’ की घोषणा

सुरवैतालिका: पेटु रुत्साहान् सहमंगतैः

प्रचक्रुरमरास्तोषा जय जीवेति घोषणाम्(198)

देवों के बंदीजन मंगलों के साथ साथ भगवान् के पराक्रम पढ़ रहे थे और देव लोग संतोष से ‘जयजीव’ इस प्रकार घोषणा कर रहे हैं।

यह घोषणा विश्व की सर्वत्रेष्ठ घोषणा है क्योंकि जीव चेतन गुण युक्त होने से और जीव संसार में कर्म द्वारा पराजित होकर दुःख अनुभव करनेके कारण जीवों को कर्मों को नष्ट करके सुखी बने यह विश्व का सर्वत्रेष्ठ मंगल कार्य है। अतः ‘जीव धर्मोऽस्तु मंगलम्’ विश्व का सर्व त्रेष्ठ आदर्श है।

अध्याय-5

प्रथम वैशिक आध्यात्मिक वैज्ञानिक : भ. कृष्णभद्रेव

प्रथम संत कृष्णभद्रेव

आत्म कल्याण के साथ साथ विश्व कल्याण के लिए अनेक वर्ष राज्य शासन के बाद कृष्णभद्रेव सन्यासी बने। मौनी, ध्यानी और मान से रहित वे अतिशय बुद्धिमान मुनि कृष्णभद्रेव धीरे-धीरे अनेक देशों में विहार करते हुये किसी दिन पुरिमताल नाम के नगर के समीप जा पहुँचे।

उसी नगर के समीप एक शकट नाम का उद्यान था जो कि उस नगर से न तो अधिक समीप था और न तो अधिक दूर था। उसी पवित्र, आकुलता, रहित, रमणीय, एकांत और जीवरहित वन में भगवान् ठहर गये।

शुन्दु बुद्धिवाले भगवान् ने वहाँ ध्यान की सिद्धि के लिये वटवृक्ष के नीचे एक पवित्र तथा लम्बी, चौड़ी शिलापट पर विराजमान होकर चित्त की एकाग्रता धारण की।

वहाँ पूर्व दिशा की ओर मुख कर पद्मासन से बैठे हुये तथा लेश्याओं की उत्कृष्ट शुद्धि को धारण करते हुए भगवान् ने ध्यान में अपना चित्त लगाया।

अतिशय विशुन्दु बुद्धि को धारण करने वाले भगवान् वृषभद्रेव ने सबसे पहले सर्वत्रेष्ठ मोक्षपद में अपना चित्त लगाया और सिन्धु परमेष्ठी के आठ गुणों का चिन्तन वन किया।

पश्चात् उत्तम धर्मध्यान की इच्छा करने वाले भगवान् ने अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन वन किया क्योंकि शुभ बारह अनुप्रेक्षाएँ ध्यान की परिवार अवस्था को ही प्राप्त हैं अर्थात् ध्यान का ही अंग कहलाती है।

उस समय देवीध्यमान हुई भगवान् की ध्यानरूपी शक्ति ऐसी दिखाई देती थी मानो मोहरूपी शत्रु के नाश को सूचित करने वाली बड़ी हुई बड़ी भारी उल्का ही हो।

उस समय क्षपकत्रेणी रूपी रंगभूमि में मोहरूपी शत्रु के नष्ट हो जाने से अतिशय देवीध्यमान होते हुए मुनिराज वृषभद्रेव ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे किसी कुशरी के मैदान से प्रतिमल्ल (विरोधीमल्ल) के भाग जाने पर विजयीमल्ल सुशोभित होता है।

तदनन्तर अविनाशी गुणों का संग्रह करने वाले भगवान् क्षीण कषाय नाम के बारहवें गुणस्थान में प्राप्त हुये। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण मोहनीय कर्म की धूलि उड़ा दी अर्थात् उसे बिल्कुल ही नष्ट कर दिया और स्वयं स्नातक अवस्था को प्राप्त हो गये।

मुनि कृष्णभद्रेव बने सर्वज्ञ (सर्वोच्च वैज्ञानिक)

ज्ञानदर्शनः वीर्यादिविध्ना ये के चिदुद्धताः।

तानशेषान् द्वितीयेन शुक्लध्यानेन विच्छिदे॥२६३॥

चतुर्थः कटुकाः कर्म प्रकृतीर्थ्यानवहिना।

निर्दहन्, मुनिरूद्भूतकैवल्योऽभूत् स विश्वदक॥२६४॥

तदनन्तर ज्ञानावरण दर्शनावरण, अन्तराय कर्म की जो कुछ उद्धत प्रकृतियाँ थीं उन सबको उन्होंने एकत्ववितर्क नाम के दूसरे शुक्लध्यान से नष्ट कर डाला

और इस प्रकार वे मुनिराज ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अतिशय दुःखदायी चारों घातिया कर्मों को जलाकर केवलज्ञानी हो लोका-लोक के देखने वाले सर्वज्ञ हो गये।

अनन्तज्ञानदृग्वीर्यविरतिः शुद्धदर्शनम्।
दानलाभौ च भोगोपभोगावानन्यमश्रिताः॥२६५॥
नवकेवललघ्नीस्ता जिन भास्यान् द्युतीरिव।
स भेजे जगदुद्भासी भव्याम्भोजानि बोधयन्॥२६६॥

इस प्रकार समस्त जगत् को प्रकाशित करते हुये और भव्य जीवरूपी कमलों को प्रफुल्लित करते हुए वे वृषभ—जिनेन्द्ररूपी सूर्य किरणों के समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चरित्र, शुद्ध सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग और उपभोग इन अनन्त नौ लब्धियों को प्राप्त हुये।

इस प्रकार जिन्होंने ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी ईंधन के समूह को जला दिया है, जिनके केवलज्ञान रूपी विभूति उत्पन्न हुई है और जिन्हें समवशरण का वैभव प्राप्त हुआ है, ऐसे वे जिनेन्द्र बहुत ही सुशोभित हो रहे हैं।

ज्ञान कल्याणक दिन

फाल्गुने मासि तामिश्रपक्षस्यैकादशीतिथौ।
उत्तराषाढ़नक्षत्रै कैवल्यमुद्भूद् विभौः॥२६८॥

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था।

विश्व धर्म सभा

जिसमें देवरूपी कारीगरों ने सैकड़ों प्रकार की उत्तम-उत्तम रचनाएँ की हैं ऐसा भगवान् वृषभदेव का समोसरण देवों ने दूर से ही देखा।

द्विषट्योजनविस्तारमभूदास्थानमीशितुः।
हरिनीलमहारत्नघटितं विलसत्तलम्॥७७॥

जो बारह योजन (96 मील) विस्तार वाला है और जिसका तल भाग अतिशय देवीप्यामान हो रहा है ऐसा इन्द्र नील मणियों से बना हुआ वह भगवान् का समवसरण बहुत ही सुशोभित हो रहा था।

इन्द्रनील मणियों से बना और चारों ओर से गोलाकार वह समवसरण ऐसा

जान पड़ता था मानों तीन जगत की लक्ष्मी का मुख देखने के लिये मंगल रूप एक दर्पण ही हो। जिस समवसरण के बनाने में सब कामों में समर्थ इन्द्र स्वयं सूत्रधार था, ऐसे उस समवसरण की वास्तविक रचना का कौन वर्णन कर सकता था।

गन्धकुटी

जो अपनी कान्ति से सूर्यमण्डल के साथ स्पर्द्धा कर रहा था, बड़ी-बड़ी ऋद्धियों से युक्त था, और कहीं-कहीं पर आकाश-गंगा के फेन के समान स्फटिक मणियों से जड़ा हुआ था; जो कहीं-कहीं पर पद्मराग की फैलती हुई किरणों से व्याप्त हो रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानों जिनेन्द्र भगवान् के चरणतल की लाल-लाल कांति से ही अनुरक्त हो रहा हो, जो अतिशय पवित्र था, चिकना था, कोमल स्पर्श से सहित था और जिसके समीप में अनेक मंगल द्रव्यरूपी सम्पदाएँ रखी हुई थीं ऐसे उस तीन कट्टीदार तीसरे पीठ के विस्तृत मस्तक अर्थात् अग्रभाग पर कुबेर ने गन्धकुटी बनाई। वह गन्धकुटी बहुत ही विस्तृत थी, ऊँचे कोट से शोभायमान थी और अपनी शोभा से स्वर्ग के विमानों का भी उल्लंघन कर रही थी।

सिंहासन

उस गन्धकुटी के मध्य में धनपति ने एक सिंहासन बनाया था जो कि अनेक प्रकार के रलों के समूह से जड़ा हुआ था और मेरु पर्वत के शिखर को तिरस्कृत कर रहा था। प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् वृषभदेव उस सिंहासन को अलंकृत कर रहे थे। वे भगवान् अपने माहात्म्य से उस सिंहासन के तल से चार अंगुल ऊँचे अधर विराजमान थे, उन्होंने उस सिंहासन के तल भाग को छुआ नहीं था। उसी सिंहासन पर विराजमान हुये भगवान् की इन्द्र आदि देव भगवान् की बड़ी-बड़ी पूजाओं द्वारा परिचर्या कर रहे थे।

दिव्यध्वनि

भगवान् के मुखरूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशय युक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी और वह भव्य जीवों के मन में स्थित मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करती हुई सूर्य के समान सुशोभित हो रही थी। यद्यपि वह दिव्यध्वनि एक प्रकार की ही थी तथापि भगवान् के माहात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अपने अन्तर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्व-भाषा रूप परिणमन कर रही थी और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्वों का बोध करा रही थी।

धर्म-चक्र प्रवर्तन के लिये इन्द्र का अनुरोध

इन्द्र ने चर और अचर जगत् के गुरु भगवान् वृषभदेव की स्तुति कर फिर तीर्थ विहार के लिये नीचे लिखी हुई प्रार्थना की है। हे भगवान् ! भव्यजीव रूपी धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं सो हे विभो ! उन्हें धर्मरूपी अमृत से सींचकर उनके लिये आप ही शरण होइए। हे भव्य जीवों के समूह के स्वामी ! हे फहराती हुई दयारूपी ध्वजा से सुशोभित जिनेन्द्र देव ! आपकी विजय के उद्योग को सिँचु करने वाला यह धर्म चक्र तैयार है। हे भगवान् ! मोक्षमार्ग को रोकने वाली मोह की सेना को नष्ट कर चुकने के बाद अब आपका यह समीचीन मोक्षमार्ग के उपदेश देने का समय प्राप्त हुआ है। इस प्रकार जिन्होंने समस्त तत्वों का स्वरूप जान लिया है और जो स्वयं ही विहार करना चाहते हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव के सामने इन्द्र के वचन पुनरुक्त से प्रकट हुये थे।

मंगलमय का मंगल-विहार

उस समय भगवान् के दिग्बिजय के काल में सुवर्णमय कमलों से चारों ओर से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों जिसमें कमल फूल रहे हैं ऐसा सरोवर ही हो।

इस प्रकार समस्त जगत् के स्वामी भगवान् वृषभदेव ने जगत् को आनन्दमय करते हुये तथा अपने वचनरूपी अमृत से सबको सन्तुष्ट करते हुए समस्त पृथ्वी पर विहार किया था।

मिथ्यान्धकारघटनां विघटय वचोऽशुभिः।

जगद्योत्तयामास जिनाकों जनतार्तिहत् ॥२८१॥

जन समूह की पीड़ा हरने वाले जिनेन्द्ररूपी सूर्य ने वचनरूपी किरणों के द्वारा मिथ्यारूपी अन्धकार के समूह को नष्ट कर समस्त जगत् प्रकाशित किया था।

सुवर्णमय कमलों पर पैर रखने वाले भगवान् ने जहाँ-जहाँ से विहार किया वहीं-वहीं के भव्यों ने धर्मामृत रूप जल की वर्षा से परम सन्तोष धारण किया था।

जिस समय वे जिनेन्द्र रूपी मेघ समीप में धर्मरूपी अमृत की वर्षा करते थे उस समय सारा संसार संतोष धारण कर सुख के प्रवाह से लुप्त हो जाता था- सुख के प्रवाह में डूब जाता था।

उस समय अत्यन्त लालायित हुये भव्य जीवरूपी चातक जिनेन्द्ररूपी मेघ से धर्मरूपी जल को बार-बार पी कर चिरकाल के लिए सन्तुष्ट हो गये थे।

इस प्रकार जो चर और अचर जीवों के स्वामी हैं, जो संसाररूपी गर्त में डूबे हुए जीवों का उद्धार करना चाहते हैं, जिनकी वृत्ति अखण्डित है, देव और असुर जिनके साथ हैं तथा जो सुवर्णमय कमलों के मध्य में चरण कमल रखते हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान् ने समस्त पृथ्वी में विहार किया।

उस समय संसाररूपी तीव्र दावानल से जलते हुये संसारी रूपी वन को धर्मामृत रूप जल के छीटों से खींचकर जिन्होंने सबका संताप दूर कर दिया है और जिनके दिव्य ध्वनि प्रकट हो रही है ऐसे वे भगवान् वृषभदेव ठीक वर्षात्रितु के समान सुशोभित हो रहे थे।

विभिन्न देशों में मंगल विहार

समीचीन मार्ग के उपदेश में तत्पर तथधीर-वीर भगवान् ने काशी, अवन्ती, कुरु, कोशल, सुह्य, पुण्ड्र, चेदि, अंग, वंग, मगध, आन्ध, कलिंग, भद्र, पांचाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशों में विहार किया था।

महादेव ऋषभदेव का कैलास गमन

इस प्रकार जिन का चरित्र अत्यन्त शान्त है, जिन्होंने अनेक भव्य जीवों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराया है, और जो तीनों लोकों के गुरु हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव अनेक देशों में विहार कर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, ऊँचे और अपना अनुकरण करने वाले कैलास पर्वत को प्राप्त हुये।

वहाँ उसके अग्रभाग पर देवों के द्वारा बनाये हुये सुन्दर पूर्वोक्त वर्णन से सहित और स्वर्ग की शोभा बढ़ाने वाले सभा मण्डप में विराजमान हुये। उस समय वे जिनेन्द्र देव अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी से सहित थे, आदर के साथ भक्ति से नम्रीभूत हुये बारह सभा के लोगों से घिरे हुये थे और उत्तमोत्तम आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हो रहे थे।

आदिनाथ का विशाल धर्म संघ

जो मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति चला रहे हैं, अनेक ऋद्धियों से सुशोभित वृषभसेन आदि ८४ गणधरों से घिरे हुए हैं, ४,७५० पूर्व ज्ञानियों से सहित हैं, ४,९५० शिक्षक मुनियों से युक्त हैं, ९,००० अवधिज्ञानरूपी नेत्र का धारण करने वाले मुनियों से सहित हैं, २०,००० केवलज्ञानियों से युक्त हैं, २०,६०० विक्रियाऋद्धि के धारक मुनियों से वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, ९२,७५० मनःपर्यज्ञानियों से अन्वित हैं, परवादियों को हटाने वाले ९२,७५० वादियों से वन्दनीय हैं, और

इस प्रकार सब मिलाकर तपश्चरण रूपी सम्पदाओं को प्राप्त करने वाले ८४,०८४ मुनिराज जिनकी निरन्तर पूजा करते हैं, ब्राह्मी आदि ३,५०,००० आर्थिकाएँ जिनके गुणों का स्तवन कर रही हैं, दृढ़ब्रत आदि ३,००,००० श्रावक जिनकी सेवा कर रहे हैं, तथा सुव्रता आदि ५,००,००० श्राविकाएँ जिनकी स्तुति कर रही हैं, भवनवासी आदि चार प्रकार के देव, देवियाँ जिनके चरणकमलों का स्तवन कर रही हैं, चौपाये आदि तिर्यञ्चगति के जीव जिनकी सेवाएँ कर रहे हैं, ३४ अतिशय विशेषों से जिनका अभ्युदय प्रकट हो रहा है, जो केवल आत्मा से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट ज्ञान, विशिष्ट दर्शन, विशिष्ट सुख, और विशिष्ट वीर्य को प्राप्त हो रहे हैं, जो शरीर की सुन्दरता से युक्त हैं, जो सज्जाति आदि सात परम स्थानों से संगत हैं, जो आठ प्रातिहार्यों से युक्त हैं, जिन्होंने चार धातियाँ कर्म नष्ट कर दिये हैं, जो वृषभ आदि एक हजार आठ नामों से कहे जाते हैं और जिन्होंने भव्यजीवरूपी कमलों के बन को प्रफुल्लित कर दिया हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव थे।

ऋषभदेव का विहार काल एवं मोक्ष

तीनों लोकों के स्वामी भगवान् आदिनाथ ने भी धर्म के योग्य क्षेत्रों में समीचीन धर्म का बीज बोकर उसे धर्म वृष्टि के द्वारा खूब ही सींचा।

सतां सत्फलसंप्राप्त्यै विहरन् स्वर्गणैः समम्।
चतुर्दशदिनोपेतसहस्राब्दोनपूर्वकम् ॥३२२॥
लक्ष्मि कैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिखरान्तरे।
पौर्णमासीदिने पौषे निरिच्छः समुपाविशत् ॥३२३॥

इस प्रकार सज्जनों को मोक्षरूपी उत्तम फल की प्राप्ति कराने के लिए भगवान् ने अपने गणधरों के साथ-साथ एक हजार वर्ष और ९४ दिन कम १ लाख पूर्व विहार किया और जब आयु के १४ दिन बाकी रह गये तब योगों का निरोध कर पौष मास की पूर्णमासी के दिन श्रीशिखर और सिद्धशिखर के बीच में कैलाश पर्वत पर जा विराजमान हुए।

माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त और अभिजित नक्षत्र में भगवान् ऋषभदेव पूर्व दिशा की ओर मुँह कर अनेक मुनियों के साथ-साथ पर्यकासन से विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्म किया प्रति-पाति नाम के शुक्लध्यान से तीनों योगों का निरोध किया और फिर अन्तिम गुणस्थान में ठहरकर

पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण प्रमाण काल में चौथे व्युपरत क्रिया निवृत्ति नाम के शुक्ल ध्यान से अद्यातिथा कर्मों का नाश किया। फिर औदारिक, तैजस और कार्मण इस तीनों शरीरों के नाश होने से सिद्धत्व पर्याय प्राप्त कर वे सम्यक्त्व आदि निज के ८ गुणों से युक्त हो क्षणभर में ही तनुवातवलय में जा पहुँचे तथा वहाँ पर नित्य निरंजन अपने निरंतर संसार को देखते विराजमान हुए।

वैदिक ग्रन्थों में वर्णित ऋषभदेव

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरमहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽण्यवद्यानान्तरोदरभावेन सिद्धसभरतार्थपरिपूर्णो ।

परम हंसों को त्याग के आदर्श की शिक्षा देने के लिये इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेव ने कई तरह की योगचर्याओं का आचरण किया। वे निरन्तर सर्वत्रेष्ठ महान् आनन्द का अनुभव करते रहते थे। उनकी दृष्टि में निरूपाधिकरूप से सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा अपने आत्म-स्वरूप भगवान् वासुदेव से किसी प्रकार का भेद नहीं था। इसलिये उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे।

ऋषभदेव को ऋष्टि प्राप्ति

योगौश्वर्याणि वै हृष्टि समनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाज्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत ॥३५॥

उनके पास आकाश गमन, मनोजवित्व (मन की गति के समान ही शरीर का भी इच्छा करते ही सर्वत्र पहुँच जाना), अन्तर्धान, परकाय प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना), दूर की बातें सुन लेना और दूर के दृश्य देख लेना आदि सब प्रकार की सिद्धियाँ अपने आप ही सेवा करने को आयी, परन्तु उन्होंने उनका मन से आदर व ग्रहण नहीं किया।

ऋषभदेव जी का देह त्याग (मुक्ति)

अथैवमखिललोक पालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेष भाषा-चरितैरविवलक्षित भगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाणउपरतानुवृत्तिरूपराम ॥६॥

इसी से भगवान् ऋषभदेव यद्यपि इन्द्रादि सभी लोकपालों को भी भूषण स्वरूप थे, तो भी वे जड़ पुरुषों की भाँति अवधूतों के से विविध वेष, भाषा और आचरण से अपने ईश्वरीय प्रभाव को छिपाये रहते थे। अन्त में उन्होंने योगियों को देहत्याग

की विधि सिखाने के लिए अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्तःकरण में अभेदरूप से स्थित परमात्मा को अभिन्नरूप से देखते हुए वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर लिङ्गदेह के अभिमान से भी मुक्त होकर उपराम हो गये।

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत् ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रमाणः कोङ्क्वेङ्कुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान् यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचार॥१॥

इस प्रकार लिङ्गदेह के अभिमान से मुक्त भगवान् ऋषभदेवजी का शरीर योगमाया की वासना से केवल अभिमानाभास के आश्रय ही इस पृथ्वीतल पर विचरता रहा। वह दैववश कोङ्क, वेङ्क और दक्षिण आदि कुटक कर्णाटक के देशों में गया और मुँह में पथर का टुकड़ा डाले तथा बाल बिखेरे उन्मत्त के समान दिगम्बर रूप से कुटकाचल के बन में घूमने लगा।

कलियुग में ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट लोग

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ष्य कोङ्क्वेङ्कुटकानां राजाहन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्ट्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते॥१॥

राजन् ! जिस समय कलियुग में अधर्म की वृद्धि होगी, उस समय कोङ्क, वेङ्क और कुटक देश का मन्दमति राजा अहंत् वहाँ के लोगों से ऋषभदेव जी के आश्रमातीत आचरण का वृत्तान्त सुनकर तथा स्वयं उसे ग्रहण कर लोगों के पूर्वसञ्जित पापफलरूप होनहार के वशीभूत हो भय रहित स्वधर्म पथ का परित्याग करके अपनी बुद्धि से अनुचित और खण्डपूर्ण कुमार्ग का प्रचार करेगा।

ऋषभदेव तथा उनके धर्म का माहात्म्य

अयमवतारो रजसोपस्तुतकैवल्योपशिक्षणार्थः॥१२॥

भगवान् का यह अवतार रजोगुण से भरे हुए लोगों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के लिये ही हुआ था।

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।

गायन्ति यत्रत्यजना मुरोः कर्माणि भद्राप्यवतारवन्ति॥१३॥

इसके गुणों का वर्णन करते हुए लोग इन वाक्यों को कहा करते हैं— अहो!

सात समुद्रों वाली पृथ्वी के समस्त द्वीप और वर्षों में यह भारत वर्ष बड़ी ही पुण्य भूमि है, क्योंकि यहाँ के लोग श्रीहरि के मङ्गलमय अवतार चरित्रों का गान करते हैं।

अहो नु वंशो यशसावदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः।

कृतावतारः पुरुषः स आद्यः च चारधर्म यदकमहितुम्॥१४॥

अहो ! महाराज प्रियव्रत का वंश बड़ा ही उज्ज्वल एवं सुयशपूर्ण है, जिसमें पुराणपुरुष श्री आदिनारायण ने ऋषभावतार लेकर मोक्ष की प्राप्ति कराने वाली परमहंसर्य धर्म का आचरण किया।

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी।

यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः॥१५॥

अहो ! इन जन्मरहित भगवान् ऋषभदेव के मार्ग पर कोई दूसरा योगी मन से भी कैसे चल सकता है क्योंकि योगी लोग जिन योगसिद्धियों के लिये लालायित होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, उन्हें इन्होंने अपने आप प्राप्त होने पर भी असत् समझकर त्याग दिया था।

इति ह स्म सकलवेदलोकदेववात्मणगवां परमगुरोर्भगवत् ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसा समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनु श्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततो भवित्वरनयोरपि समनुवर्तते॥१६॥

राजन् ! इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण और गौओं के परमगुरु भगवान् ऋषभदेव का यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया। यह मनुष्यों के समस्त पापों को हरने वाला है। जो मनुष्य इस परम मङ्गलमय पवित्र चरित्र को एकाग्रचिन्त से श्रद्धापूर्वक निरन्तर सुनते या सुनाते हैं उन दोनों की ही भगवान् वासुदेव में अनन्य भक्ति हो जाती है।

नित्यानु भूतनिजलभनिवृत्ततृष्णः

श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।

लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-

माख्यान्मो भगवते ऋषभाय तस्मै॥१८॥

निरन्तर विषय—भोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से चिरकाल तक बेसुध हुए लोगों को जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोक का

उपदेश किया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्म स्वरूप की प्राप्ति से सब प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार है।

अथ षष्ठोऽध्यायःश्री भा. पुराणम् १

विभिन्न शास्त्रों में वर्णित ऋषभदेव

अग्नींधं सूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूक् सुतो द्विजः।
ऋषभाद् भरतो जसे वीरः पुत्र शताद्वरः॥३९॥
सोऽभिशिंच्यर्षभः पुत्रं महा प्राव्राज्य मास्थितः।
तपस्तेये महाभागः पुलहात्रय शंसयः॥४०॥
हिमावहं दक्षिणं वर्ष भरताय पिता ददौ।
तस्मात् भारतं वर्ष तस्य नाम्ना महात्मनः॥४१॥

— मार्कण्डेय पुराण अध्याय ३३ पृ. ६९

हिमावहं तु यद्वद्वं नामे रासीन्महात्मनाः।
तस्यर्षभोऽभृत्युत्रो मेरु देव्या महा द्युतिः॥३६॥
ऋषभाद् भरतो जसे वीरः पुत्रः शताग्रजः।
सोऽभिशिंच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः॥३८॥

— कूर्म पुराण अध्याय ४९ पृष्ठ ६९

जरा मृत्युं भयं नास्ति धर्मा धर्मो युगादिकम्।
नाधर्म मध्यमं हिमादेशात् नामितः॥१०॥
ऋषभो मरु देवयां च ऋषभात् भरतो भवत्।
ऋषभोक्त श्री पुत्रे शाल्य ग्रामे हरि गतः॥११॥
भरताद् भारतं वर्ष भरता सुमति स्वभूतः॥१२॥

— अग्नि पुराण अध्याय १० पृ. ६२

नाभि स्व जनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूर्वजम्॥५०॥
ऋषभाद् भरतो जड़े परिः पुत्र शताग्रजः।
सोऽभिशिंच्याप्य भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः॥५१॥

हिमावहं दक्षिणं वर्ष भरतायन्य वेदयत्।
तस्माद् भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥५२॥

— वायु महापुराण पूर्वार्ध अध्याय ३३ पृ. ६९

नाभिस्त्वं जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महाद्युतिम्॥५६॥

ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्।

ऋषभाद् भरतो जड़े वीरं पुत्र शताग्रजाः॥६०॥

सोऽभिशिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्य मस्थितः।

हिमावहं दक्षिणं पर्वतस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥६१॥

— व्रत्माण्ड पुराण पूर्वार्ध अनुष्ठङ्ग पाद अध्याय १४ पृ. २४

नाभेमेरु देव्यां पुत्रमजनय ऋषभनामानं तस्य भरतो।

पुत्रस्य तावदग्रजः तस्य भारतस्य पिता ऋषभः।

हिमाद्रेदक्षिणं वर्ष मदद भारतं नाम शशास॥

— वाराह पुराण अध्याय ७४ पृ. ४९९

[अत्र नाभेः सर्ग कथयामि]

नाभोर्निंसर्गं वदयामि हिंमाकेस्मिन्न बोधतः।

नाभिस्त्वं जनमत्पुत्रं मरु देव्यां महामतिः॥१९॥

ऋषभं पार्थिवः श्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूजितं।

ऋषभाद् भरतो जड़े वीरः पुत्र शताग्रजः॥२०॥

सोऽभिशिंच्याप्य ऋषभो भरतं पुत्र वत्सलः।

ज्ञान वैराग्य माश्रित्य जितेन्द्रिय महोरगान॥२१॥

सर्वात्म नात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरम्।

नग्नो जटो निराहारो चीरी हवान्त गतो हिसः॥२२॥

निरारास्त्यक्त सन्देहः शैवमाप परं पदम्।

हिमाद्रे दक्षिणं वर्ष भारतस्य न्यवेदत्॥२३॥

तस्मात् भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।

— लिंग पुराण अध्याय ४७ पृ. ६८

नते स्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टु सुसवदा।
हिमाद्यं तुवै वर्ष नाभेगसीम्नहात्मनः॥२७॥
तस्यर्घभो भवत् पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युति।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्र शतस्य सः॥२८॥

— विष्णु पुराण द्वितीयांश अ. १ पृ. ७७,
वैकटेश्वर छापा बम्बई का

नाभे पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतो भवरत्।
तस्य नामा पिहं वर्ष भारतं चेति कीर्त्यते॥५७॥

— स्कंध पुराण माहेश्वर खण्ड के कौभार ख.अ. ३७

ऋषभं मा समनानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गेपितं गवाम्॥

ऋग्वेद

अर्हन् विभविष्णु सायकानि धन्वहिनिष्ठं भजंति विश्वस्तुं।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमम्बं न षा ओ जीयो रुद्रत्वदस्ति॥

— ऋग्वेद अ. २ सू. २३ वर्ष १७

हे अर्हन्! तुम वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बाणों को, उपदेश रूपी धनुष को, तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किये हो। हे अर्हन्! आप संसार के सब प्राणियों पर दया करते हो और हे कामादिक को जलाने वाले! आपके समान कोई रुद्र नहीं है।

यथार्थ धार्मिक वही है जो सत्याग्रही, सरल, पवित्र, उदारमना, न्यायपरायण, निष्पक्ष, धैर्यवान, शान्त, गंभीर, साहसी और निर्भय हो। जो प्रत्येक प्राणी का हितचिंतक, गुणिओं को सम्मान देने वाला, दुःखी, रोगी, गरीब, असहाय, दुर्बल, संकटापन की सेवा—सहायता करने वाला और दुष्ट/शत्रु से अपनी रक्षा करता हुआ भी उनके कारण अपना भाव दूषित नहीं करने वाला हो। जो स्वयं को महान, श्रेष्ठ, पवित्र, आदर्श बनाते हुए भी दुष्ट, पापी, नीच से धृणा नहीं करता है।

अध्याय-६

वैशिक वैज्ञानिक ऋषभदेव द्वारा शोध-बोध एवं प्रतिपादित सिद्धान्त

धर्म शब्द ‘धृ’ धातु से बना है। ‘धृ’ का अर्थ है धारण करना। जिसमें धारण करने की शक्ति है उसको धर्म कहते हैं।

धर्म की विभिन्न परिभाषायें

“देश्यामी समीचीनं धर्म कर्मनिवर्हणम्।

संसारदुखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥”

मैं उस धर्म को कहूँगा जो धर्म संसारी जीवों के समस्त मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक दुःखों के कारणभूत कर्मों को नाश करके अनंत उत्तम सुख को धारण करता है। इससे सिद्ध होता है कि धर्म के माध्यम से अधिवैदिक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तथा इहलोक, परलोक आदि के भय से निवृत्ति होती है एवं जीव को शाश्वतिक, अतीन्द्रिय, आध्यात्मि अनंत सुख प्राप्त होता है। कहा है—

“यस्मात् अभ्युदय निश्रेयस्य सिद्धिः स धर्मः।”

जिससे स्वर्गादि का अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुख की सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं। कहा है—

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्तते।

धर्मेणैव समाप्येते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।

धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय॥

धर्म सर्व प्रकार के सुख को देने वाला है, हित करने वाला है, धर्म से ही निर्वाण अथवा मोक्ष सुख मिलता है। इसीलिये हे सुख इच्छुक भव्य जीवों! धर्म को ही संचित करिये। धर्म को छोड़कर संसारी जीवों का कोई भी हित करने वाला नहीं है। धर्म का मूल दया अर्थात् करुणा या अहिंसा है। धर्म में मैं अपने चित्त को प्रतिदिन लीन करता हूँ। हे जगत् उद्धारक, सुख शांति प्रदायक धर्म! मेरा पालन कीजिये।

पवित्रि क्रियते येन येनैव द्वियते जगत्।
नमस्तस्मै दयाद्वाय धर्म कल्पाद्विपाद्वाय वै॥

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आद्र धर्मरूपी कल्पवृक्ष के चरण को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् धर्म से ही पतित जीव पावन हो सकता है, दानव मानव हो सकता है। मानव महामानव, भगवान् बन सकता है। यह संपूर्ण चराचर विश्व धर्म से आधारित है।

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धव।
अनाथ वत्सल सोऽयं स त्राता कारणं विना।

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बान्धव है, अनाथ का रक्षक है और बिना स्वार्थ के रक्षण करने वाला है।

धर्मो मंगल मुक्तिकडुङ्गं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धर्मे सयामणो॥

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा—धर्म है, संयम—धर्म है एवं तप धर्म है। जिसका मन सर्वदा धर्म में लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं। संक्षिप्त में धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ—

वत्यु सहावो धर्मो अहिंसा खमादि आद धर्मो।
रयणत्तयं य धर्मो अणेयंत सुभावणा धर्मो॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग अकिञ्चन, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म हैं। रत्नत्रय अर्थात् सम्पददर्शन—सम्पदज्ञान—सम्पदक् चरित्र धर्म है। अनेकान्त (स्याद्वाद) बाहर भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थभाव भी धर्म है।

इस संक्षिप्त गाथा सूत्र में जो धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, शब्दतः पृथक्-पृथक् होते हुए भी भाव से एक ही हैं। इसमें प्रायः विश्व में प्रचलितधर्म संप्रदाय की धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। वस्तु स्वभाव धर्म यह सामान्य परिभाषा है, चेतन—अचेतन द्रव्य में जो स्व—स्वभाव हैं, वही भाव उनका धर्म है, जैसे पुद्गल का धर्म जड़त्व एवं जीवक अर्थ चेतनत्व है। इस परिभाषा में संपूर्ण धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। परंतु उत्तरवर्ती परिभाषाएँ चैतन्य द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य का स्वभाव रूप धर्म की परिभाषाएँ हैं।

वस्तु स्वभाव धर्म (६ द्रव्यों का गुणधर्म)

“वस्तु सहावो धर्मो”—

वस्तु का स्वभाव धर्म :— यह समग्र विश्व परिणमन शील होते हुए भी शाश्वतिक है अर्थात् विश्व की कभी सृष्टि नहीं हुई। कभी विनाश नहीं होगा, परन्तु प्रत्येक क्षण में परिणमन होता रहेगा।

यथा लोगो अकिञ्चिमो खलु अणाइणिइणो सहाविणव्वत्तो।

जीवाजीवेहिं फु डो सव्वागासावयवो णिघ्चो॥

(त्रिलोकसार गाथा ४)

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य है।

‘प्रतिक्षण गच्छतीति जगत्’”

स्थिति जनन निरोध तत्क्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।

(बृहत् स्वयंभू स्तोत्र)

जो प्रतिक्षण गमन करता है अथवा परिणमन करता है उसको जगत् कहते हैं। चराचर रूपी जगत् प्रतिक्षण उत्पन्न होता है, नाश होता है एवं स्थिति को प्राप्त होता है।

नैवासतो जन्मसतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति॥

(बृहत् स्वयंभूस्तोत्र)

सर्वथा असत् द्रव्य, सर्वथा उत्पन्न नहीं हो सकता है एवं सर्वता सत् द्रव्य का का नाश नहीं हो सकता है, केवल परिवर्तन हो सकता है। जैसे दीपक की प्रज्ज्वलित अवस्था में सर्वापद्धति पुद्गल स्कंध प्रकाश रूप में परिणमन होते हैं एवं दीपक बुझने के पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्गल स्कंध अंधकार (तम) रूप में परिणमित हो जाते हैं। परंतु पुद्गल स्कंधों का सर्वथा नाश नहीं होता है।

गीता में कहा है—

‘नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।’

सर्वथा असत् का सद्भाव नहीं होता है एवं सर्वता सत् का अभाव नहीं हो सकता है। वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि-

Nothing can be destroyed and nothing can be created but only the form can be changed.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। कोई भी सद्भूत द्रव्य का नाश नहीं होता है, परंतु उसके आकार प्रकार में परिवर्तन हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि विश्व अकृत्रिम, अनादि-निधन एवं परिणमनशील है। इस विश्व में अर्थात् लोकाकाश में जीव द्रव्य अजीव द्रव्य भरे हुए हैं। यह लोकाकाश (विश्व) आलोकाकाश के मध्य में स्थित है।

विश्व में सामान्य रूप से दो द्रव्य हैं— 1. जीव (Soul) 2. अजीव। अजीव के पांच भेद हैं— 1. पुद्गल (Matter) 2. धर्म (Media of motion) 3. अर्धर्म (Media of rest) 4. आकाश (Space) 5. काल (Time)। इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्य छः प्रकार के हैं। इन द्रव्यों का जो स्वभाव है, वह ‘वस्तु स्वभाव धर्म’ के अन्तर्भूत है। अतः सामान्य रूप से संपूर्ण द्रव्यों के ‘वस्तु स्वभाव धर्म’ निम्नलिखित है—

अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व, उत्पाद-व्यय-धौव्य ये सर्व द्रव्यों का सामान्य धर्म हैं।

अस्तित्व— जिस धर्म के माध्यम से प्रत्येक द्रव्य विश्व में सद्भाव स्वरूप है, उसको अस्तित्व धर्म कहते हैं। होना, रहना सद्भाव ये सब अस्तित्व के पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए जैसे आकाश अथवा आत्मा-परमात्मा शाश्वतिक है, उसी प्रकार भौतिक द्रव्य भी शाश्वतिक है।

वस्तुत्व— वस्तुत्व धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य अंतरंग-बहिरंग के सद्भाव से अपना-अपना कार्य करता है।

प्रमेयत्व— इस धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य ज्ञान का विषय बनते हैं अर्थात् ज्ञान इस धर्म के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानता है।

अगुरुलघुत्व— इस धर्म के कारण द्रव्य खण्डित होकर अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता है। यह स्थितिस्थापक गुण हैं।

उत्पाद, व्यय, धौव्य— पूर्व पर्याय का नाश होना व्यय है, नवीन पर्याय की उत्पत्ति अथवा सृष्टि होना उत्पाद है एवं दोनों परिस्थिति में द्रव्य का कायम रहना धौव्य है। जैसे— कुम्हार मिट्ठी से घड़ा बनाता है, इससे मिट्ठी रूप पूर्व पर्याय का नाश हुआ, घड़ा रूप उत्तर पर्याय की उत्पत्ति हुई और दोनों अवस्थाओं में मिट्ठी रूप द्रव्य का सद्भाव ध्वता है।

जीव द्रव्य का गुणधर्म

चेदण णाणं दंसणं, सुह अणंते विरीय अव्वावाहं
णिम्मम णिरापेक्खं जीवाणं उत्तमो धम्मो॥२६॥

अर्थ— चेतना— अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अवगाहनत्व, निर्मलत्व, निरपेक्ष भाव जीवों के उत्तम द्रव्य है।

उपरोक्त छहों द्रव्यों में जीव द्रव्य सबसे अति उत्तम द्रव्य है, क्योंकि जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि उत्तम-उत्तम गुण पाये जाते हैं। विश्व में अनंतानंत स्वतंत्र-स्वतंत्र जीव हैं। उसमें से अनंत जीव स्वतन्त्र परतन्त्र होकर अनंत दुःख सहने वाले भी हैं। सुख अथवा मुक्तावस्था, दुःख अथवा संसारावस्था को स्वयं जीव निर्माण करता है।

अप्पा कर्ता विकर्ता य, दुक्खाण य सुहाणय।
अप्पा मित्तमित्तं य दुष्पद्धिय सुपद्धिय॥(बुद्धदेव)

अर्थ— आत्मा स्वयं सुख-दुःख का कर्ता है। सुपथगमी आत्मा स्वयं का मित्र है एवं कुपथगमी आत्मा स्वयं का शत्रु है।

स्वभावतः प्रत्येक आत्मा द्रव्यदृष्टि से समान है, प्रत्येक आत्मा में अनंत सुख आदि गुणों का सद्भाव होते हुए भी स्व-अर्जित कर्म के कारण वह अनंत सुखादि वर्तमान में तिरोहित हैं, किन्तु नाश नहीं हुए हैं। जब प्रबुद्ध आत्मा स्व पुरुषार्थ के माध्यम से जीव के स्वभावभूत आगे वर्णित अहिंसा, उत्तम क्षमादि धर्म का पालन करेगा तब पूर्व संचित कर्म नष्ट होकर, तिरोहित ज्ञान-सुखादि गुण प्रकट हो जायेंगे। उस कर्म से रहित अवस्था के जीव को ही परमात्मा कहते हैं अर्थात् पतित आत्मा ही धर्म साधन के माध्यम से पावन होकर परमात्मा बन जाता है। जिस प्रकार खान से निकला हुआ अशुद्ध, सुवर्ण, सोलह ताप अग्नि से शुद्ध स्वर्ण हो जाता है, उसी प्रकार कर्म-कलंक से दूषित संसारी आत्मा भी धर्म रूप अग्नि से शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है।

मुक्त जीव

समस्त कर्म से मुक्त होने के बाद मुक्त जीव एक समय में सिद्धशिला में विराजमान हो जाते हैं और वहाँ पर अनंत सुखादि गुणों को भोगते हुए वहाँ ही भविष्यत अनंत काल तक स्थिर रहते हैं। संसार में वापिस आने के कारण रूप कर्म के अभाव से पुनः संसार में नहीं आते हैं। वहाँ विश्व को देखते, जानते हैं,

परन्तु किसी के भी कर्ता धर्ता-हर्ता नहीं हैं। क्योंकि वे राग-द्वेष से रहित हैं।

संसारी जीव

संसारी जीव के दो भेद हैं— (1) स्थावर (2) त्रस

स्थावर—जिस जीव में केवल स्पर्शन इन्द्रिय ही रहती है, उस जीव को स्थावर जीव कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—

- (1) पृथ्वीकायिक
- (2) जलकायिक
- (3) अग्निकायिक
- (4) वायु कायिक
- (5) वनस्पतिकायिक।

पृथ्वीकायिक—जिस जीव का स्वरूप पृथ्वी स्वरूप है, उसे पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं, पत्थर, मिट्टी, मणि आदि इसके भेद हैं।

जलकायिक—जल ही जिस जीव का शरीर है, उसे जलकायिक कहते हैं। जैसे— पानी, ओस, बर्फ आदि।

अग्निकायिक—अग्नि ही जिसका शरीर है, उसे अग्निकायिक जीव कहते हैं। जैसे— अग्नि, दीप-शिखादि।

वायुकायिक—जिसका शरीर वायु ही है उसे वायुकायिक जीव कहते हैं। जैसे— हवादि।

वनस्पतिकायिक—जिस जीव का शरीर वनस्पति है, उसे वनस्पतिकायिक कहते हैं। जैसे— आम का वृक्ष, गुलाब का वृक्ष, रामफल का वृक्ष, सीताफल का वृक्ष आदि।

निगोदिया जीव—

वनस्पति के दो भेद हैं— (1) साधारण वनस्पति (2) प्रत्येक वनस्पति।

साधारण वनस्पति—जिस वनस्पतिकायिक जीव के एक शरीर के आश्रय में अनंतानंत जीव रहते हैं और वे सब एक साथ जन्म लेते हैं, एक साथ श्वासोच्छवास लेते हैं, एक साथ भोजन करते हैं एक साथ मरते हैं उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं। इन्हें ही निगोदियाँ जीव कहते हैं।

वर्तमान जीव विज्ञान की अपेक्षा हम इसे बैकटीरिया या वायरस कह सकते हैं। उपरोक्त पाँच स्थावर में शरीर, बल, स्पर्शन इन्द्रिय, श्वासोच्छवास एवं आयु प्रमाण इस प्रकार चार प्राण होते हैं। वे जन्म लेते हैं, आहार ग्रहण करते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, भयभीत होते हैं, जीवनोपयोगी सामग्री संग्रह करते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, मैथुन करते हैं एवं मरते भी हैं।

उपरोक्त पाँच स्थावर के दो भेद हैं— (1) सूक्ष्म (2) बादर।

सूक्ष्मजीव

सूक्ष्म जीव बिना आधार से रह सकते हैं, इसलिए सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हैं। सूक्ष्म जीव दूसरों को बाधा नहीं देते हैं एवं दूसरों से बाधित नहीं होते हैं, अर्थात् सूक्ष्मजीव को कोई रुकावट डाल नहीं सकता है, मार नहीं सकता है, जला नहीं सकता है।

बादरजीव

बादरजीव को रहने के लिए आधार चाहिये। इसलिये बादर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए नहीं है, परन्तु आठ पृथ्वी के आधार पर एवं स्थूल जीवों के शरीर में रहते हैं।

नित्यनिगोद

जो अभी तक त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं और आगे भी त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं होंगे, उनको नित्यनिगोद कहते हैं। अन्य मतानुसार जो अभी तक त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं किये हैं, किन्तु भविष्य काल में त्रसपर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। इस जीव के परिणाम अत्यन्त कलुषित होने के कारण निगोद अवस्था को त्याग कर त्रस अवस्था को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है।

इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद—जो निगोदियाँ जीव निगोद-अवस्था को त्याग करके त्रसपर्याय को प्राप्त कर पुनः निगोद-अवस्था को प्राप्त करते हैं उनको इतरनिगोद कहते हैं।

त्रसजीव—

जो त्रस नाम कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में उत्पन्न होते हैं, उनको त्रस जीव कहते हैं। त्रस के चार भेद हैं, (1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चतुरिन्द्रिय (4) पंचेन्द्रिय। यह जीव भय से भयभीत होकर प्राण (रक्षा) के लिये भागते हैं, इसलिये भी इनको त्रस कहते हैं। स्थावरजीव प्रायः भय से भयभीत होकर भाग नहीं पाते हैं।

द्वि-इन्द्रिय जीव

जिस जीव में स्पर्शन, रसना इन्द्रिय होती है, उन्हें द्वि-इन्द्रिय जीव कहते हैं। यथा— शंख, लट आदि।

त्रि-इन्द्रिय जीव

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण, इन्द्रिय होती है, उन्हें त्रि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं, यथा-चांटी, खटमल आदि।

चतुरिन्द्रिय-जीव

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु इन्द्रिय होती हैं। यथा-मक्खी, भौंरा, पतंगा, मच्छर आदि।

पंचेन्द्रिय-जीव

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय होती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा- मनुष्य, गाय, पश्ची, देव, नारकी आदि।

स्पर्शन (चर्म), रसना (जिह्वा), ग्राण (नाक), चक्षु (नेत्र), कर्ण (कान) ये पाँच इन्द्रिय हैं।

पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद 1. असंज्ञी 2. संज्ञी

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव- पंचेन्द्रिय सहित, किन्तु मन रहित जीव को असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे-जल-सर्प, कुछ तोता, गोह सर्प आदि।

एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक में मन नहीं रहता है। तो भी पंचेन्द्रिय मन रहित जीव को ही असंज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रियादि को नहीं कहते हैं। मन रहित संसारी जीव विशेष उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता है। उनमें हिताहित विचार करनेके लिये विवेक नहीं होता है। उनमें सम्यग्दर्शन भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसलिये वे मोक्ष मार्गी भी उस समय उस पर्याय में नहीं बन सकते हैं। इस प्रकार के जीव अनंतानंत हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव- पाँच इन्द्रिय और मनसहित जीव को संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। यथा-मनुष्य, देव, नारकी, गाय बैल आदि।

संज्ञी जीव उपदेश ग्रहण कर सकता है, इनमें विशेष विवेक रहता है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है एवं उसी पर्याय में मोक्ष भी जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान, केवल पंच स्थावर जीव में वनस्पति कायिक जीव को, जीव सिद्ध कर पाया है, अन्य चार स्थावर (पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक) को अभी तक जीव सिद्ध नहीं कर पाये हैं। कुछ वनस्पतिकायिक अत्यंत स्थूल होने के कारण उनको जीव सिद्ध करना सरल है किंतु चार स्थावर जीवों के शरीर इतने सूक्ष्म हैं की, उनके एक शरीर को हमें चक्षु अथवा यंत्र

के माध्यम से देखना कठिन हो जाता है। उदाहरण स्वरूप एक जल बिन्दु एक जलकायिक जीव नहीं है, किंतु असंख्यात जलकायिक जीव का शरीर है। तो विचार करिये कि एक शरीर कितना सूक्ष्म है और उस जैविक शरीर में जो क्रिया होती है, उसका वैज्ञानिक लोग अभी तक शोध नहीं कर पाये हैं।

भारत के स्वनाम धन्य वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचंद्र बोस ने 1806 में वनस्पति को वैज्ञानिक दृष्टि से जीव सिद्ध करके विज्ञान जगत् को चमत्कृत कर दिया, जिससे उन्हें सर्वत्र सम्मान मिला। परन्तु जैनधर्म में लिखित रूप से ईसा (ईसामसीह) पूर्व से भी वनस्पति जीव प्रसिद्ध है, इसके साथ-साथ अन्य चार प्रकार के स्थावर का वैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्म केवल प्राचीन नहीं है, परन्तु एक प्रामाणिक वैज्ञानिक धर्म है। विज्ञान में जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में जो वर्णन हैं, उससे बहुत ही विस्तृत एवं प्रामाणिक वर्णन जैन धर्म में है। वैज्ञानिकों को शोध करने के लिए जैन धर्म का जीव विज्ञान सर्वलाइट के समान कार्य कर सकता है। जयपुर में जन्मे प्रो. महश्वरी वनस्पति विज्ञान के अभिनव अन्वेषक थे।

प्रायः जीव को उल्कान्ति एकेन्द्रिय से लेकर द्विन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, होती है परन्तु अनेक जीव सीधे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय भी बन सकते हैं और पंचेन्द्रिय भी जघन्य कार्य के कारण एकेन्द्रिय बन सकते हैं तथा पंचेन्द्रिय आध्यात्मिक उल्कान्ति के माध्यम से भगवान् भी बन सकता है। इसलिये एक जीव की उल्कान्ति की अपेक्षा वैज्ञानिक डारविनका उल्कान्ति जीव सिद्धान्त कुछ अंश में सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। क्योंकि वह संपूर्ण एक प्रकार जीव जाति को परिवर्तित होकर दूसरी उच्च जीव जातिरूप से परिणमन करना मानता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार उल्कान्ति ही उल्कान्ति है। परन्तु उल्कान्तिके साथ-साथ अवक्रान्ति भी होती है।

जीव संबंधी शोध करने के लिए वैज्ञानिकों को गोमद्वासार जीव-कांड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, द्रव्य संग्रह, तत्वार्थ-सूत्र आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये।

पुद्गल द्रव्य का गुणधर्म (भौतिक एवं रासायन)

फास रस गंध वर्ण पुरणं गत्तण येवा।

सद छायाप्कास पुग्गल दव्वाणं धम्मं॥

अर्थ- जिस द्रव्य में स्पर्श-रस, गंध-वर्ण होते हैं और जो पूरण-गलन रूप

होता है (पूरण अर्थात् मिलना, गलन अर्थात् बिछुड़ना) और जो शब्द-छाया-प्रकाश रूप परिणमन करता है, उसको पुद्गल कहते हैं। दृश्यमान समस्त जगत् पुद्गल ही हैं। जिसको छूकर जाना जाता है, देखकर जाना जाता है, चखकर जाना जाता है, सूंघकर जाना जाता है और सुनकर जाना जाता है, वह समस्त द्रव्य पुद्गल ही है।

अप, तेज, वायु, अग्नि आदि पुद्गल ही हैं। विज्ञान इसको Element कहता है।

पुद्गल दो प्रकार का है— 1. अणु, 2. स्कंध

1. अणु :— पुद्गल का अविभाज्य प्रदेश जो कि पुनः किसी भी प्रक्रिया से खंडित नहीं हो सकता है एवं जिसका आदि-मध्य-अन्त एक ही है और जो अग्नि से जलता नहीं है, पानी से गीला नहीं होता, किसी यंत्र के माध्यम से अथवा चक्षु से दिखाई नहीं देता है, उसे अणु कहते हैं। परमाणु जब मंद गति में गमन करता है तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है। मध्यम गति में अनेक विकल्प हैं। अणु जब गमन करता है, तब उसकी (एक राजू अर्थात्) असंख्यात् योजन है। जिसको वैज्ञानिक दृष्टि से असंख्यात् प्रकाश वर्ष कह सकते हैं। (एक सैकण्ड के असंख्यात् भाग को एक समय कहते हैं।)

2. स्कंध— एकाधिक परमाणु जब उपयुक्त- योग्य सूक्ष्मत्व (ऋण) एवं रिनाध (धन) गुण के कारण से बंधते हैं, तब स्कंध उत्पन्न होता है। सूक्ष्म अवगाहनत्व गुण के कारण एवं विशेष बंध प्रक्रिया के कारण संख्यात्-असंख्यात्-अनंत या अनंतानंत परमाणु बनने के बाद भी चक्षु इन्द्रिय के अगोचर हो सकते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारा गृहित समस्त पुद्गल स्थूल स्कंध ही हैं। कुछ सूक्ष्म स्कंध को इन्द्रिय के माध्यम से भी नहीं देख सकते हैं।

वैज्ञानिक लोग कुछ वर्ष पूर्व प्रकाश, विद्युत आदि को द्रव्य रहित केवल शक्ति मानते थे परन्तु वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक आइन्स्टीन आदि ने सिद्ध किया है कि जहाँ पर भौतिक शक्ति है, वहाँ भौतिक द्रव्य है जहाँ पर भौतिक द्रव्य रहेगा वहाँ भौतिक शक्ति रहेगी।

इसको सिद्ध करने वाला आईन्स्टीन का सूत्र है $E=mc^2$ । परन्तु जैनधर्म प्रकाश, विद्युत, उद्योत (चन्द्र किरण), सूर्य किरण अंधकार आदि को पुद्गल की पर्याय प्राग् ऐतिहासिक काल से ही मान रहा था। विज्ञान जो ऑक्सीजन, हाइड्रोजन,

आदि 105 या 85 मौलिक तत्व मानता है वह वस्तुत एक पुद्गल द्रव्य ही है। क्योंकि उसमें स्पर्श-रस-गंध-वर्ण समान गुण पाये जाते हैं। विज्ञान जिसको वर्तमान अणु मानता है वह जैन सिद्धान्त की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है जिसमें अनंतानंत परमाणु मिले हुये हैं। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुये भी उनके द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः पुनः अनेक विभाग में विभाजित होता जा रहा है। इससे सिद्ध होता है कि उनका सिद्धान्त अपरिवर्तित, पूर्ण-सत्य-सिद्धान्त नहीं है।

अन्तरंग एवं बहिरंग कारण अर्थात् वातावरण के कारण पुद्गल में विभिन्न परिवर्तन होता रहता है। पुद्गल शुद्ध परमाणु रूप परिणमन होकर भी पुनः अशुद्ध पर्याय रूप में परिणमन कर सकता है। भौतिक वस्तु की ठोस अवस्था, तरल अवस्था एवं बाष्प अवस्था पुद्गल की पर्याय ही हैं। पुद्गल में जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, एक क्षण में हैं, अन्य क्षण में उनका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण अन्य भी हो सकता है। जैसे-कच्चा आम का वर्ण हरा, स्पर्श कठोर रस तीतां व खट्टा, गंध (असुरभि गंध) होती है और वही आम जब पक जाता है तब वर्ण-पीला, स्पर्श-नरम, रस-मीठा और गन्ध सुगंधित हो जाती है। इसी प्रकार पुद्गल वर्ण से वर्णन्तर रस से रसान्तर, स्पर्श से स्पर्शन्तर, गंध से गंधान्तर होकर विभिन्न वैचित्र पूर्ण अवस्था विशेष को प्राप्त होता रहता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक जगत में जो शोध हुई है और शोध हो रही है, उसका क्षेत्र प्रायः पुद्गल ही है। विद्युत, अणुबम, रेडियो, टेलीफोन, टेपरिकार्डर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सिनेमा आदि केवल पुद्गल की ही देन है। पुद्गल में भी अनंत शक्तियाँ निहित हैं। पुद्गल जितना शुद्ध से शुद्धतर होता है, उतनी उसकी शक्तियाँ ऊर्जित होती जाती हैं। वैज्ञानिकों को पुद्गल सम्बन्धी शोध करने के लिए तत्वार्थ सूत्र का पञ्चम अध्याय, प्रवचन-सार, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थ बहुत बड़ा अलम्बन हो सकते हैं।

धर्म द्रव्य का गुणधर्म- (गति माध्यम)

अमुत्त णिच्च शुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।

गई परिणयाणं जीव रुदीणं गमणे णिमित्त धम्मम्।

धर्म द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण है। गति परिणत जीव एवं पुद्गलों को गमन करने में उदासीन निमित्त होता है।

विश्व में जीव और पुद्गल गमनागमन रूप क्रिया करते हैं, उस गमनागमन क्रिया के लिए माध्यम चाहिए। उस माध्यम रूप को धर्मद्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्मद्रव्य का अर्थ पूर्ण रूप क्रिया या आचरण नहीं हैं परन्तु यह एक पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त अभौतिक, अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध असंख्यात् प्रदेशी वाला एक अखण्ड द्रव्य है।

गइ परिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।

तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो नेइ॥

As water assists the movement of moving fish, so Dharma assists the movement of moving Pudgala and Jiva but Dharma itself does not move, but the (Pudgala and Jiva) which do not move, the Dharma does not help to move them.

जैसे गमन करती हुई मछली को पानी गमन करने में सहायक होता है परन्तु पानी जबरदस्ती मछलीको गमन नहीं करवाता है, उसी प्रकार गमन करते हुए जीव- पुद्गल द्रव्य का उदासीन निमित्त बनता है।

जिस प्रकार स्व-शक्ति से गमन करती हुई रेल के लिए रेल की पटरी की परम आवश्यकता होती है, रेल की पटरी के बिना रेल नहीं चल सकती है उसी प्रकार धर्मद्रव्य गति क्रिया के लिए नितांत आवश्यक है। विश्व की समस्त स्थानांतरित रूप क्रिया (एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए गमन) बिना धर्म द्रव्य की सहायता से नहीं हो सकती है, यहाँ तक कि श्वासोच्छ्वास के लिये, रक्त संचालन के लिये, पलक झपकने के लिए, अंग-प्रत्यंग संकोच विस्तार करने के लिए तार, बेतार के माध्यम से शब्द भेजने के लिये, रेडियो, टी.वी., सिनेमा आदि में संवाद एवं चित्र भेजने के लिये, देखने के लिये एवं सुनने के लिये, ग्रह से ग्रहान्तर तक संवाद चित्र भेजने के लिए, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के गमनागमन के लिए धर्म द्रव्य की सहायता नितांत आवश्यक है। धर्म द्रव्य के अभाव में ये क्रियायें हो नहीं सकती हैं।

धर्म द्रव्य के साथ वैज्ञानिक जगत् के ईर्थर को कुछ हद तक समान मान सकते हैं परन्तु जैनधर्म में जो तथ्य पूर्ण वर्णन है वह वर्णन वैज्ञानिक जगत् के ईर्थर में नहीं पाया जाता है। ईर्थर की शोध अभी हुआ है किंतु धर्म द्रव्य का वर्णन जैनधर्म में प्राचीनकाल से है। धर्म द्रव्य को विशेष जानने के लिये द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय, मोक्ष-शास्त्र का पंचम अध्याय देखना चाहिये। धर्म द्रव्य का

वर्णन जैन दर्शन में ही है अन्य दर्शन में नहीं है।

अधर्म द्रव्य का गुण धर्म (स्थिति माध्यम)

अमुत्त णिच्च सुद्धं लोयायासं पमाणं सिद्धम्।

द्विदि परिणयाणं जीव रूबीणं द्विदि णिमित्तमधम्म्॥

अर्थ-अधर्म-द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य-शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। जिस समय में जीव एवं पुद्गल ठहरते हैं, उस समय अधर्म द्रव्य ठहरने के लिये उदासीन निमित्त कारण बनता है।

यहाँ अधर्म का अर्थ पाप क्रिया नहीं है। परन्तु अमूर्तिक लोकाकाश व्यापी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्य हैं। जैसे गमन करते हुए पथिक वृक्ष की छाया में बैठता है तब छाया ठहरने के लिये उदासीन कारण बनती है। जैसे रेल को ठहराने के लिये स्टेशन की रेल पटरी सहायक होती है। जैसे बैठने के लिये कुर्सी, पाटा, चटाई आदि सहायक होते हैं किन्तु कुर्सी आदि जबरदस्ती मनुष्य को पकड़कर नहीं बैठाती। वैसे ही अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है। इसलिये उदासीन शब्द कहा है जो कि महत्व का है।

अधर्म द्रव्य के अभाव से स्थिर रहने रूप क्रिया नहीं हो सकती है। इसके अभाव से विश्व के सम्पूर्ण जीव एवं पुद्गल अनिश्चित एवं अव्यवस्थित रूप से सर्वदा चलायमान ही रहेंगे। टेबल के ऊपर पुस्तक रखने पर दूसरे समय में पुस्तक वहाँ पर नहीं रहेगी। गाड़ी को रोकने पर भी गाड़ी नहीं रुकेगी, कोई भी व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये एक ही स्थान में खड़ा या बैठा नहीं रह सकता है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व यगृच्छाभाव ये यत्र-तत्र फैलकर अव्यवस्थित हो जायेगा और वर्तमान में जो विश्व की संगठन (संरचना) है, वह नहीं रह सकती हैं शरीर का भी जो संगठन है, वह भी फैलकर के विस्फोट होकर यत्र-तत्र बिछुड़ जायेगा।

आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा जो केन्द्राकर्षण शक्ति Gravitational force है उसके साथ अधर्म द्रव्य की कुछ सदृश्यता पायी जाती है। परन्तु अधर्मद्रव्य की जो स्टीक वैज्ञानिक सूक्ष्म परिभाषा है, वह केन्द्राकर्षण शक्ति में नहीं है।

इसके बारे में विशेष जानने के लिए द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

अधर्म द्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में ही है, अन्य दर्शनों में नहीं है।

आकाश द्रव्य का गुण धर्म

अमुत्त णिच्च सुद्धं सव्ववापि महादव्यम्।
सग-पर ओगासदाणं आगास दव्याणं धम्मम्।

आकाश द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य, शुद्ध है, सबसे बड़ा द्रव्य है, स्व-पर को अवकाश (स्थान) देना इसका धर्म है।

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी, सर्वव्यापि, सबसे बड़ा द्रव्य है। अन्य पुद्गल आदि पांच द्रव्य इस आकाश के जिस मध्य भाग में रहते हैं इसे लोकाकाश (विश्व) कहते हैं। लोकाकाश केवल असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश अमूर्तिक होने के कारण इसका भाग (टुकड़ा) नहीं हो सकता है तो भी यहाँ पर अन्य-अन्य द्रव्य पाये जाते हैं उसको लोकाकाश तथा शेष भाग को अलोकाकाश व्यवहार चलाने के लिए कल्पित किया गया है। आकाश (Space) अन्य द्रव्य से रहित एक शून्य खोखलापन नहीं है परन्तु वह स्वयं अस्तित्व, वस्तुत्व, अमृत आदि अनंत गुण सहित एक वास्तविक द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य के रहने के लिए यह द्रव्य सहायक होता है इसके अभाव से रहना असम्भव हो जायेगा। कुछ दर्शन आकाश को मानते हैं तो कुछ इसको नहीं मानते हैं। विज्ञान भी अभी जिस प्रकार जैन धर्म (दर्शन) में वर्णन है, इसी प्रकार मानता है लोकाकाश के तीन भेद हैं। ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग लोक) मध्य लोक (जिसमें भारत, ऐश्वर्या, पृथ्वी, जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं) अधोलोक (नरकलोक)। आकाश में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, निहारिकायें आदि रहते हैं।

काल द्रव्य का गुण धर्म

अमुत्त णिच्च सुद्धं पतेय लोयाप्पदेसे द्विठिदं।
सग पर परिणयाणं णिमित्तं काल दव्यस्त धम्मं॥३॥

अर्थ— काल द्रव्य अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध एवं लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अवस्थित है। काल द्रव्य स्वयं के परिणमन के लिए जीव-पुद्गल, धर्म, अर्थात् आकाश के परिणमन के लिये निमित्त सहायक होता है।

काल के दो प्रकार— (1) निश्चय काल (2) व्यवहार काल

(1) **निश्चय काल**— रत्नों की राशि की तरह स्वतन्त्र रूप से लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्थित होने वाले असंख्यात कालाणु निश्चय काल द्रव्य हैं।

(2) **व्यवहार काल**— सूर्य, चन्द्र आदि के गमन के कारण जो दिन, रात,

ऋतु, अयन, घड़ी, घण्टा आदि जो व्यवहार होता हैं उसको व्यवहार काल कहते हैं। अढाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र के गमन के कारण व्यवहार काल है। स्वर्ग, नरक में व्यवहार काल नहीं होने पर भी यहाँ अर्थात् मध्यलोक की अपेक्षा वहाँ का व्यवहार चलता है। परन्तु निश्चय काल स्वर्ग-नरकादि सम्पूर्ण लोकाकाश में विद्यमान है। प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद-व्यय आदि शुद्ध परिणमन होता है उसके लिये भी काल द्रव्य चाहिये। काल द्रव्य के अभाव से परिणमन का अभाव हो जायेगा, जिससे प्रत्येक द्रव्य कूटस्थ हो जायेगा, अर्थात् अपरिवर्तनशील हो जायेगा। कूटस्थ के कारण कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा।

कुछ दार्शनिक केवल व्यवहार काल को मानते हैं और निश्चय काल के सद्भाव का निषेध करते हैं किन्तु निश्चय काल के अभाव में व्यवहार काल भी नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रतिपक्ष सहित होती है अर्थात् व्यवहार का प्रतिपक्ष निश्चय होना चाहिये। वर्तमान में वैज्ञानिक लोग इसको (Time Substances) कहते हैं।

विश्व संरचना के लिये जीव का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। जीव ज्ञाता है, दृष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, प्रभु है, विभु है। जीव बिना समस्त विश्व शमशान के समान सन्नाटामय चैतन्य रहित है। द्वितीय महत्वपूर्ण भूमिका पुद्गल द्रव्य की है। विश्व के संचालन में जितना जीव का हाथ है उतना ही हाथ पुद्गल का भी है। विश्व की समस्त भौतिक-संरचना पुद्गल से होती है। विश्व को गृह मानने पर गृह का मालिक जीव है एवं गृह निर्माण पुद्गल से होता है। धर्म द्रव्य, आने वाले पथिक के लिये मार्ग का काम करता है, तो अर्थम् द्रव्य पथिक के लिये स्टेशन है। काल पुरातन को मिटाकर नवीनीकरण के लिये सूत्रधार है तो आकाश सबको विश्राम देने के लिए सहायता करता है। इस प्रकार विश्व के लिये छह द्रव्य परस्पर सहयोग देकर अनादि से सह-अवस्थान कर रहे हैं एवं करते रहेंगे।

अपृतानपृतसिद्धे : अनेकान्त एवं सापेक्ष सिद्धान्त

The contradictory characteristics are established from different points of view.

मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है।

अनेकान्त-

स्वभाव से ही प्रत्येक द्रव्य अनेक धर्म से युक्त होता है इसलिये प्रत्येक द्रव्य

स्वभावतः ही अनेकान्तमय है। जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव-कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुये भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुये भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त हैं।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे सेव फल नारियल से छोटा होते हुये भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आँवला सेव फल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। घी निरोगी के लिये शक्ति दायक होते हुए भी ज्वर-रोगी के लिये हानिकारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है परंतु पेट्रोल-टांकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व, आदि गुणों के कारण अनेक भी है। एक आत्मा स्वभावतः एक होते हुए भी अस्तित्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य गुण के कारण अनेक है। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक द्रव्य अनेक विरोधी गुणों से एवं अविरोधी गुणों से युगपत् (एक साथ) युक्त होने के कारण अनेकान्तमय हैं।

स्याद्वाद-

वक्ता एक समय में एक ही धर्म को कह सकता है, अन्य अनेक धर्म होते हुए भी वह नहीं कह सकता है। प्रतिपादित धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने के लिये अथवा सूचना के लिये स्यात् या कथंचित् शब्द प्रवक्ता प्रयोग करता है। अनेकान्त प्रकरण में बताया गया है कि प्रत्येक द्रव्य में एक साथ अनेक धर्म विद्यमान रहते हैं। शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण वक्ता एक समय में एक गुण का वर्णन कर पाता है अन्य धर्म का नहीं तो भी अन्य धर्म लोप नहीं होते हैं, किन्तु अविवक्षित हो जाते हैं। जैसे एक वक्ता बोलता है कि रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे। इस वाक्य में पुत्रत्व धर्म को छोड़कर पितादि अन्य धर्म का वर्णन नहीं किया, तो भी पितादि गुण लोप नहीं हो गये। इस पितादि गुण को सुरक्षित करने के लिये, उनकी सत्ता को स्वीकार करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग करता है। स्यात् का अर्थ है, अपेक्षा से, कथंचित् एक दृष्टि से। यदि वक्ता हठग्राह

पूर्वक बोलेगा कि रामचन्द्र केवल पुत्र ही है तो अन्य पितादि धर्म लोप करने के कारण उसका अभिप्राय एवं वचन मिथ्या हो जायेगा।

स्याद्वाद के सप्त भंग (प्रकार) हैं—

1. स्यात् अस्ति— एक अपेक्षा से द्रव्य हैं। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं।

2. स्यात् नास्ति— अन्य अपेक्षा से द्रव्य नहीं। जैसे—रामचन्द्र लव-कुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

3. स्यात् अव्यक्तत्व— एक साथ दो गुणों का वर्णन एक शब्द में नहीं हो सकता है अतः अव्यक्तत्व है। जैसे—रामचन्द्र, दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक साथ क्या हो सकता है? पुत्र अथवा पिता। इस पिता पुत्र रूपी गुण को हम दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक शब्द में वर्णन नहीं कर सकते हैं। इसलिये अव्यक्तत्व अर्थात् वचन के अविषय है।

4. स्यात् अस्ति नास्ति— स्वगुण की अपेक्षा एवं पर गुण की अपेक्षा जो क्रम से वर्णन किया जाता है उस भंग को अस्ति नास्ति भंग कह जाता है। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

5. स्यात् अस्ति अव्यक्तत्व— क्रमशः स्वगुण की अपेक्षा द्रव्य है, और युगपत् स्वपर की अपेक्षा वस्तु अव्यक्तत्व है। जैसे—रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तत्व है।

6. स्यात् नास्ति अव्यक्तत्व— क्रमशः पर गुण की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और युगपत् स्व—पर गुण की अपेक्षा अव्यक्तत्व है। जैसे रामचन्द्र लव-कुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है और दशरथ तथा लव-कुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तत्व है।

7. स्यात् अस्ति नास्ति अव्यक्तत्व— क्रमशः स्वधर्म की अपेक्षा वस्तु है, पर धर्म की अपेक्षा वस्तु नहीं है, युगपत् स्वपर धर्म की अपेक्षा अव्यक्तत्व है। जैसे—रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है, दशरथ और लवकुश की अपेक्षा युगपत् कहने की अपेक्षा अव्यक्तत्व है।

अनेकान्त भावात्मक अहिंसा है स्याद्वाद वाचनिक अहिंसा है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद, समन्वय के लिये, विश्व शांति के लिये अमृत तुल्य है।

द्रव्य में स्थित समस्त गुण, धर्म, पर्यायों की सत्ता को स्वीकार करने से द्रव्यों के पूर्ण गुणादि की रक्षा होती है तथा मन में यथार्थ भाव होने के कारण भाव

अहिंसा होती है। अहिंसा का अर्थ दूसरों की सत्ता को स्वीकार करना भी है। स्याद्वाद से अन्य अविवक्षित धर्मों को वचन के माध्यम से घात नहीं पहुँचाने के कारण वाचनिक अहिंसा हुई। विश्व में जो अशान्ति, विष्णव, युद्ध होता है, उसका मूल कारण दूसरों की सत्ता को ठुकराना, अधिकार को स्वीकार नहीं करना, उनके सत्यांश को मान्यता नहीं देना है परन्तु अनेकान्त एवं स्याद्वाद उपरोक्त दोषों को दूर करते हैं, जिसमें विश्व में समन्वय एवं शांति की स्थापना हो सकती है। दोनों सिखते हैं कि तुम्हारा जो सत्य है उस सत्य को बिना त्याग किये अन्य के सत्यांश को स्वीकार करो, सम्मान दो।

“Right is mine” जो सत्य है वह मेरा है, यह अनेकांत का अमर संदेश है। परन्तु “Mine is right” मेरा जो कुछ हो वह सब सत्य है मानना अनेकांत एवं स्याद्वाद की उदार नीति के विरुद्ध है। वे इस संकीर्ण स्वार्थपूर्ण हठग्राहिता को नहीं मानते हैं। अनेकांत से मनोभाव, हृदय उदार एवं विशाल हो जाता है। स्याद्वाद से वचन हित, मित, प्रिय अमृतोपम हो जाता है। अनेकांत मानसिक औषधि है एवं स्याद्वाद वाचनिक औषधि है। पहिले अनेकांत-स्याद्वाद के ऊपर गहन अध्ययन के अभाव से या कुछ संकीर्ण मनोभाव से कुछ लोग विरोध करते थे। परंतु जितना-जितना मनुष्य समाज तार्किक की ओर बढ़ा, निरपेक्ष दृष्टि से देखने लगा, विज्ञान की नवीन शोध हुई। धर्म एवं दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ तब अनेकांत, स्याद्वाद का महत्व दिन दुगना रात चौगुना बढ़ रहा है। इसका वर्णन अन्य धर्म में यत्र-तत्र आंशिक रूप में होते हुये भी विधिवत् रूप से सूक्ष्म वर्णन नहीं है। वर्तमान भौतिक विज्ञान जगत में महामना, सात्त्विक, समन्वय एवं अहिंसावाद के पुजारी महावैज्ञानिक आईन्स्टीन ने जो शोध-बोध करके जगत् को चमकृत कर दिया है। इससे विज्ञान में एक नई क्रांति एवं दिक् परिवर्तन हुआ है। उसका मूल कारण सापेक्ष सिद्धान्त है। वर्तमानमें दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो या राजनैतिक सब की दृष्टि अनेकांत की ओर बढ़ रही है, यह विश्व के लिये मंगल सूचक है। पूर्वचार्यों ने कहा भी है—

जेण विणा लोगस्स य ववहार सवदा ण निवट्ठई।

तेण भुवणैकगुरुणा णमो अनेकांत वायस्स॥

जिस अनेकांत वाद के बिना लोक-व्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकांत वाद को मेरा नमस्कार हो।

कर्म सिद्धान्त

सक्षायत्वाज्जीवः कर्मणे योग्यान्युद्गतानादत्ते स बन्धः

The soul owing to its being with passion. assimilates matter which is fit to from karmas this is bondage.

कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध है।

‘विपाकोऽनुभवः’ अनुभव is the matuting and fruition of karmas. विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति पड़ना ही अनुभव है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय भावों से जीव के आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होता है जिससे विश्व में भरे हुए ठसाठस तदयोग्य अनंतानंत कर्मपरमाणु आकर्षित होकर जीव के असंख्यात प्रदेशों में संश्लेष रूप से बँध जाते हैं। यह बंध भी प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग रूप में होता है। समय प्राप्त करके जब कर्म उदय में आता है तब जीव को स्वयोग्य से प्रभावित करता है। शुभ, प्रशस्त पुण्य कर्म से जीव को शारीरिक-मानसिक सुख मिलता है तो अप्रशस्त अशुभ पापकर्म से जीव को शारीरिक-मानसिक दुःख मिलता है। आत्म विशुद्धि, समता, ध्यान आदि के माध्यम से जीव जब संपूर्ण कर्मों को नष्ट कर देता है तब वह जीव मुक्त हो जाता है। मुक्तावस्था में जीव के अनंत गुण, शक्ति, सुख, ज्ञान, प्रगट हो जाते हैं।

लोकाकाश एवं अलोकाकाश (विश्व एवं प्रतिविश्व)

धर्माऽधर्मा कालो पुगलजीवा य संति जावदिये।

आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो॥(20)

धर्माधर्मौ कालः पुद्गल जीवाः च सन्ति यावतिके।

आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः॥

Lokakasa is that in which Dharma, Adharma, Kala, Pudgale and Jiva exists. That which is beyond (this Lokakasa) is called Alokakasa.

धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पाँच द्रव्य जितने आकाश में हैं वह तो लोकाकाश है और उस लोकाकाश के आगे अलोकाकाश है।

लोक-अलोक का वर्णन जैनधर्म में विशद रूप से पाया जाता है पर अन्य

दर्शन में लोक का अपने मतानुसार वर्णन पाये जाने पर भी अलोक का वर्णन नहीं पाया जाता है। आधुनिक वैज्ञान में जैनधर्म में जैसा स्पष्ट वर्णन पाया जाता है वैसा तो स्पष्ट वर्णन नहीं पाया जाता है फिर भी आइंस्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक द्रव्य प्रतिपक्षी होने के कारण विश्व का भी प्रतिपक्षी अलोकाश होता है जैनधर्म के अनुसार विश्व का घनफल 343 घनराजू है। जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से अनुमानतः असंख्यात घन आलोक वर्ष के बराबर है। विश्व के मुख्य तीन भेद हैं। 1. अधोलोक (नरकलोक) 2. मध्यलोक 3. ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग)। अधोलोक में सात नरक एवं नित्य निगोदिया हैं। मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। तथा सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे इस मध्यलोक में ही हैं। आधुनिक खगोलविज्ञान के अनुसार भी असंख्यात सूर्य, चन्द्र, निहारिकायें हैं यह सिद्ध हो गया है। इस संबंधी विस्तृत वर्णन मैंने मेरी “विश्व विज्ञान रहस्य” पुस्तक में किया है। वहाँ अवलोकनीय है। ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग एवं सिद्धशिला है। विश्व को संपूर्ण दिशा में वैष्णित करके वातवलय है। यह वातवलय भी विश्व के अंतर्गत है। नग्न चक्षु में जो आकाश नीला दिखाई देता है वह आकाश का वर्ण नहीं है क्योंकि आकाश शुद्ध अमूर्तिक द्रव्य है। पृथ्वी से जो आकाश नीला दिखाई देता है उसका वैज्ञानिक कारण पृथ्वी का वातावरण या वायुमण्डल है। पृथ्वी के पर्यावरण में धूलिकण, जलकण एवं विभिन्न वायु होती हैं जिसके कारण सूर्यकिरण इसमें प्रतिफलित होती है जिसके कारण आकाश नीला दिखाई देता है। इसे वर्ण विश्लेषण कहते हैं। पृथ्वी से कुछ दूर अन्तरिक्ष में जाने पर आकाश का वर्ण नीला नहीं दिखाई देता है। जैनधर्म के अनुसार उपरोक्त कारणों के साथ साथ प्रथम स्वर्ग का क्रजु विमान नीलमणि से निर्मित होने से उसकी प्रभा से आकाश नीला दिखाई देता है।

पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण संतुलन

“परस्परोपग्रहो जीवानाम्”

परस्परोपग्रहो जीवानाम् उपकारः भवति।

The mundane souls help the support each other. परस्पर सहायता में निर्मित होना यह जीवों का उपकार है। विश्व के प्रत्येक प्राणी परस्पर के उपकारक हैं। वे एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं और एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। समिष्ट की सुरक्षा समृद्धि से ही व्यष्टि की सुरक्षा समृद्धि है। इससे पर्यावरण की सुरक्षा समृद्धि भी होती है। इसे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से पारिस्थिति की तथा पर्यावरण संतुलन सुरक्षा कहते हैं।

चतुष्टय सिद्धान्त (चतुः आयाम सिद्धान्त)

प्रत्येक द्रव्य, गुण, पर्याय एवं घटनायें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से युक्त होती हैं। द्रव्य में जीव एवं अजीव द्रव्य, क्षेत्र में आकाश, काल में समय, भाव में परिणाम, क्रिया, गति, परिवर्तन आदि गर्भित हैं। आइंस्टीन आदि वैज्ञानिकों का चतुः आयाम सिद्धान्त भी इसके अनुरूप है।

वैश्वक पाँच नैतिक धर्म

व्रत Vow is to be free from 1. हिंसा Injury 2. अनृत Falsehood 3. स्तेय Thesefet 4. अब्रत्म unchasty 5. परिग्रह worldly attachment for worldly objects.

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रत्म और परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है। व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में सुख, शांति, समृद्धि के लिए उपर्युक्त पाँचों व्रत या नियमों की नितान्त अनिवार्यता है। अहिंसा से जीओ और जीने दो, पर्यावरण की सुरक्षा, व्यक्तिगत झगड़ा, कलह, युद्ध से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय एवं वैश्वक तनाव, युद्ध को रोकने के लिए अहिंसा अनिवार्य है। सत्य से व्यक्ति की प्रामाणिकता, सुव्यवस्था से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक प्रक्रिया सुचारू रूप से परिचालित होती है और शांति की स्थापना होती है। दूसरों के धन, मान-सम्मान, अधिकार, कर्तव्य, जमीन, राष्ट्र, प्रसिद्धि का अनैतिक रूप में उपयोग नहीं करना स्वअधिकार में नहीं लेना, क्षति नहीं पहुँचाना अचौर्य है। इसके साथ-साथ स्वकर्तव्य का परिपालन करना और कर्तव्यानुसार अधिकार प्राप्त करना भी अचौर्य है। मिलावट, धोखाधड़ी, घोटाला, दगबाजी, ठगी बेर्डमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, कर्तव्यचोरी, टैक्सचोरी, कालाबजारी आदि अनैतिक कार्य अचौर्य व्रत के कारण संभव ही नहीं है। मनसा, वचसा, कर्मणा कुशील, मैथुन, अश्लीलता, कामुकता का त्याग करना ब्रह्मचर्य है। इससे जनसंख्या वृद्धि, एड़सरोग, बलात्कार, हत्या, अश्लील गाना-बजाना- सिनेमा-नृत्य-पोस्टर- विज्ञापन-दृश्य-अंगप्रदर्शन-वेशभूषा आदि अनैतिक कार्यों पर नियन्त्रण हो जाता है। धन, सम्पत्ति, वैभव, सत्ता, नाम की इच्छा, कामना, लालसा नहीं रखना अपरिग्रह है। इससे धन-सम्पत्ति का केन्द्रीकरण, संचय न होकर समबंटन होता है। स्वेच्छा से इच्छाओं के ऊपर नियन्त्रण होने से और अतिरिक्त सम्पत्ति आदि का जरूरतमंदों के लिए सहयोग रूप से आवंटन करने से धनी-गरीब, मालिक-मजदूर, शोषक-शोषित आदि का भेदभाव नहीं होता। जिससे व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में आर्थिक के साथ-2 नैतिक आध्यात्मवाद की स्थापना होती है।

अध्याय-7

भारत का प्रथम चक्रवर्ती भरत

इस भू-भाग का प्राचीन नाम अजनाभि देश या आर्यवर्त था। जिनके नाम पर इस भूखण्ड का नाम भारतवर्ष हुआ, वह है स्वनामधन्य पुण्यश्लोका प्रचण्ड शक्तिशाली नीतिवान भरत। भरत इस युग के ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, धर्म, क्रान्तिकारी धर्म नेता, आध्यात्मिक वैज्ञानिक, अहिंसा के अग्रदृत, ऋषभ तीर्थकर के प्रधान एवं प्रमुख पुत्र थे। इस युग के राष्ट्रसंघ समाज-जीवन-यापन प्रणाली के आद्य सूत्रकार भगवान् ऋषभ थे। ऋषभदेव, राष्ट्र के संगठन उन्नयन एवं परिचालन करने के लिए मानव जाति के नेता (राजा) बने थे। अतः भारत के प्रथम राजा ऋषभदेव थे, परन्तु उनके उत्तराधिकारी ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुत्र भरत अपने पितृ राज्य को दिविविजय से विस्तार करके एक छत्राधिपति, सारभौम सम्राट्, चक्रवर्ती बने थे। उन्होंने सार्वभौम राष्ट्र का अत्यन्त दक्षता, न्यायनीति, धर्मानुसार संचालन, सम्बर्द्धन, परिमार्जन किया था। उनका प्रभाव यहाँ तक पड़ा कि भरत माने अजनाभ वर्ष माने भारत। जैसे भारत में स्वतंत्रता संग्राम के समय महात्मा गांधी माने हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान माने महात्मा गांधी माना जाता था। इसी प्रकार भरत एवं देश अभिन्न अंग बन गये थे। इसीलिए आगे जाकर भरत माने भारत, भारत माने भरत अविधान हुआ। कोई कोई ऐतिहासिक विद्वान् मानते हैं कि शकुन्तला एवं दुष्यन्त के शक्तिशाली पुत्र भरत के नाम पर भारत पड़ा। परन्तु मैंने (कनकनन्दी) जहाँ तक जैन, बौद्ध व पौराणिक वाङ्मय का अध्ययन किया उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत पड़ा। हिन्दु धर्म के वेद-व्यास प्रणीत भगवत् पुराण में ऋषभदेव के पुत्र भरत से ही भारत नाम हुआ, यह स्पष्ट वर्णन है। मैंने जहाँ तक हिन्दू महाभारत, हिन्दू रामायण महाकाव्यों का अवलोकन किया और उससे प्रतिपादित शकुन्तला के पुत्र भरत का चरित्र अध्ययन किया उसमें कहाँ पर भी शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर भारत पड़ा, ऐसा वर्णन नहीं है। भरत ऐसे महान् चक्रवर्ती हुए जिनका योगदान राजनीति, न्याय नीति, राष्ट्र निर्माण आदि में महत्वपूर्ण है।

भरत का जन्म

जिसका मण्डल देवीप्राणी तेज से परिपूर्ण है और जिसका उदय बहुत ही बड़ा है ऐसे सूर्य को जिस प्रकार पूर्व दिशा उत्पन्न करती है उसी प्रकार नौ महीने व्यतीत होने पर उस यशस्वती महादेवी ने देवीप्राणी तेज से परिपूर्ण और महापुण्यशाली पुत्र को उत्पन्न किया।

भरत का जन्मदिन

भगवान् ऋषभदेव के जन्म समय में जो शुभ दिन, शुभ लग्न, शुभ योग, शुभ चन्द्रमा और शुभ नक्षत्र आदि पड़े थे, वे ही शुभ दिन आदि उस समय भी पड़े थे अर्थात् उस समय चैत्र कृष्ण नवमी का दिन, मीन लग्न, ब्रह्मयोग, धनराशि का चन्द्रमा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र था। उसी दिन यशस्वती महादेवी ने सप्नाट के शुभ लक्षणों से शोभायमान ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न किया था।

भावी चक्रवर्ती की सूचना

आश्लिष्य पृथ्वी दोम्या य दसाबुदपद्यतः।

ततोऽस्य सार्वभौमत्वं जगुर्नैमित्तिकास्तदा॥142॥

वह पुत्र अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी का आलिंगन कर उत्पन्न हुआ था। इसीलिये निमित्त ज्ञानियों ने कहा था कि वह समस्त पृथ्वी का अधिपति—अर्थात् चक्रवर्ती होगा।

पुत्रजन्मोत्तत्व

जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर अपनी बेला सहित समुद्र हर्ष को प्राप्त होता है उसी प्रकार पुत्र का जन्म होने पर उसके दादा और दादी अर्थात् महारानी मरुदेवी और महाराज नाभिराज दोनों ही परम हर्ष को प्राप्त हुए।

उस समय राजमन्दिर में करोड़ों दण्डों से ताङित हुए आनन्द के बड़े-बड़े नगाड़े गरजते हुये मेघों के समान गम्भीर शब्द कर रहे थे। तुरही, दुन्दुभि, झल्लरी, शहनाई, सितार, शंख, काहल और ताल आदि अनेक बाजे उस समय मानो हर्ष से ही शब्द कर रहे थे, बज रहे थे। उस समय सुगंधित विकसित, भ्रमण करते हुये भौरों से सेवित और देवों के हाथ से छोड़ा हुआ फूलों का समूह आकाश में पड़ रहा था, बरस रहा था। जिस प्रकार समुद्र की वृद्धि से उसके किनारे की नदी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार राजा के घर उत्सव होने से वह समस्त अयोध्या नगरी उत्सव से हर्षित हो रही थी। उस समय भगवान् ऋषभदेव

रूपी हाथी समुद्र के जल के समान भारी दान की धारा (सुवर्ण आदि वस्तुओं के दान की परम्परा पक्ष में—मृदु जल की धारा) बरसा रहे थे इसीलिये वहाँ कोई भी दरिद्र नहीं था। इस प्रकार अन्तःपुर सहित समस्त नगर में परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ वह बालक रूपी चन्द्रमा भगवान् ऋषभदेव रूपी उदयाचल से उदय हुआ था।

भावी चक्री का भरत नामकरण—

समोद भरतः प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा।
तमाहृद भरतं भावि समस्त भरताधिपम्॥158॥

उस समय प्रेम से भरे हुये बन्धुओं के समूह ने बड़े भारी हर्ष समस्त भरत क्षेत्र के अधिपति होने वाले उस पुत्र को 'भरत' इस नाम से पुकारा था।

भरत से भारतवर्ष

तन्नामा भारतं वर्षमिति हासीज्जनास्पदम्।
हिमाद्रेरासमुद्रा क्षेत्रं चक्रमृतामिदम्॥159॥

इतिहास के जानने वालों का कहना है कि जहाँ अनेक आर्य पुरुष रहते हैं ऐसा इस हिमवत् पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त का चक्रवर्तियों का क्षेत्र उसी भरत पुत्र के नाम के कारण भारतवर्ष रूप से प्रसिद्ध हुआ है।

संस्कार से संस्कारित भरत—

अन्नं प्राशनं चौतोपनयना दीननुक्र मात्।
किया विधीन् विधानजः स्त्रैवास्य निसृष्टवान्॥164॥

विधि को जानने वाले भगवान् ऋषभदेवने अनुक्रम से अपने उस पुत्र के अन्नप्राशन (पहली बार अन्न खिलाना), चौल (मुण्डन), और उपनयन (यज्ञोपवित) आदि संस्कार स्वयं किये थे।

भरत के गुण

सैव वाणी कला सैव सा विद्या सैन च द्युतिः।
तदैव शीलं विज्ञानं सर्वमस्य तदैव तत्॥167॥

इस भरत की वाणी, कला, विद्या, द्युति, शील और विज्ञान आदि सब कुछ वही थे जो कि उनके पिता ऋषभदेव के थे।

सत्यं शौचं क्षमा त्यागः प्रज्ञौत्साहो दया दमः।

प्रशमौ विनयश्चेति गुणाः सत्यानुवड्णिणः॥214॥

सत्य, शौच, क्षमा, त्याग, प्रज्ञा, उत्साह, दया, दम, प्रशम और विनय के गुण संघ उसकी आत्मा के साथ-साथ रहते थे।

वपुः कान्तिश्च दीप्तिश्च लावण्यं प्रियवाक्यता।

कलाकुशलता चेति शरीरान्वयिनो गुणाः॥215॥

शरीर की कान्ति, दीप्ति, लावण्य, प्रिय वचन बोलना और कलाओं में कुशलतायें उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाले गुण थे।

वह भरत एक दिव्य मनुष्य था उसकी आकृति भी असाधारण थी, वह तेज का खजाना था और उसकी सब चेष्टाएँ आश्चर्य करने वाली थी, इसलिये वह लक्ष्मी के अतिशय ऊँचे पुंज के समान शोभायमान होता था।

वह भरत चक्ररूपी सूर्य को उदय करने वाले उदयाचल के समान सुशोभित होता था क्योंकि जिस प्रकार उदयाचल पर्वत सुवर्णशिलाओं के सान्द्र अवयवों से शोभायमान होता है उसी प्रकार वह भरत भी सुवर्ण के समान सुन्दर मजबूत शरीर से शोभायमान था जिस प्रकार उदयाचल ऊँचा होता है उसी प्रकार वह भरत भी ऊँचा (उदार) था। उदयाचल जिस प्रकार स्वभाव से ही गुरु-भारी होता है, उसी प्रकार वह भरत भी स्वभाव से ही गुरु श्रेष्ठ था। उदयाचल पर्वत ने जिस प्रकार अपने समीपवर्ती छोटे-छोटे पर्वतों से पृथ्वी तल पर आक्रमण किया था, उदयाचल जिस प्रकार पृथ्वी के विशाल भार धारण करने के लिये समर्थ है उसी प्रकार भरत भी पृथ्वी का विशाल भार धारण करने के लिए समर्थ है, इसी प्रकार उदयाचल अपने तटभाग पर निर्झरणों की सुन्दर कान्ति धारण करता है, उसी प्रकार भरत भी तट के साथ स्पर्धा करने वाले अपने वक्ष-स्थल पर हारों की सुन्दर कान्ति धारण करता था और उदयाचल पर्वत देवीयमान शिखरों से सुशोभित रहता है, उसी प्रकार भरत भी अपने प्रकाशमान मुकुट में सुशोभित रहता था।

भरत के शुभलक्षण

उसके बाहुदण्ड पृथ्वी को नापने के दण्ड के समान बहुत ही लम्बे थे और उन्हें कुलाचल समझकर उन पर रहने वाली लक्ष्मी परम धैर्य को विस्तृत करती थी।

जिस प्रकार अनेक नक्षत्रों से आकाश शोभायमान होता है उसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, कूर्म और मीन आदि शुभ लक्षणों से उसका हस्त-तल शोभायमान था।

उसके चरण कमलों में चक्र, छत्र, तलवार, दण्ड आदि चौदह रत्नों के चिन्ह बने हुए थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों ये चौदह रत्नों, लक्षणों के छल से भावी चक्रवर्ती की पहले से ही सेवा कर रहे हैं।

भरत के आभूषणादि

कंधे पर लटकते हुए यज्ञोपवति से वह भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा कि ऊपर बहती हुई गंगा नदी के प्रवाह से हिमालय सुशोभित रहता है।

उसके शरीर का ऊपरी भाग कड़े अङ्गूष्ठ, बाजूबन्द और हार आदि अपने-अपने आभूषणों से ऐसा देवीप्यमान हो रहा था मानो अपने अधोभाग की ओर हँस ही रहा हो।

वह भरत श्रेष्ठ करधनी से सुशोभित सफेद धोती से युक्त जघन भाग को धारण कर रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रधनुष से सहित शरद क्रतु के बादलों से युक्त नितम्ब भाग (मध्यभाग) को धारण करने वाला मेरु पर्वत ही हो।

भरत की शक्ति

केवल उसके चरणों का पराक्रम समस्त पृथ्वी मण्डल पर आक्रमण करने वाला था फिर भला उस अभिमानी भरत के सम्पूर्ण शरीर का पराक्रम कौन सहन कर सकता था।

उसके शरीर सम्बन्धी बल का वर्णन केवल इतने से ही हो जाता है कि वह चरम शरीरी था अर्थात् उसी शरीर से मोक्ष जाने वाला था और उसके आत्मा सम्बन्धी बल का वर्णन दिविग्यज्य आदि बाह्य चिन्हों से हो जाता है।

यदूबलं चक्रश्वत्केत्रवर्तिना नृसुधाशिनाम्।

ततोऽधिक गुणं तस्य वभुव भुजयोर्बलम्॥२१॥

चक्रवर्ती के क्षेत्र में रहने वाले समस्त मनुष्यों और देवों में जितना बल होता है उससे कई गुणा अधिक बल चक्रवर्ती की भुजाओं में था।

भरत का विद्याध्ययन

पुत्राणां च यथाभ्नायं विनया दानपूर्वकम्।

शास्त्राणी व्याजहौरैवमानुपूत्यां जगद्गुरुः॥११८॥

(पृ. 357)

जगद् गुरु भगवान् ऋषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रमसे आन्माय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये।

भरतायार्थं शास्त्रं च भरत च ससंग्रहम्।

अध्यायैरति विस्तीर्णोस्फुटीकृत्य जगौ गुरुः॥११९॥

भगवान् ने भरत पुत्र के लिये अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्ट कर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था।

भरत को साम्राज्य प्राप्त

जब ऋषभदेव ने वैराग्य सम्पन्न होकर गृहत्याग करने का निश्चय किया तब उन्होंने ज्येष्ठ, श्रेष्ठ पुत्र भरत को अपना राज्य भार समर्पण किया।

ततोऽभिषिद्य साम्राज्ये भरतं सूनुमग्रिम्।

भगवान् भारतं वर्ष तत्सनाथं व्यधादिम्॥७६॥ (पृ. 379)

भगवान् ऋषभदेव ने साम्राज्य पद पर अपने बड़े पुत्र भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को उनसे सनाथ किया।

युवराज पद पर बाहुबली को स्थापित किया। इस प्रकार उस समय यह पृथ्वी उक्त दोनों भाइयों से अधिष्ठित होने के कारण राजन्वती अर्थात् सुयोग्य राजा से सहित हुई थी। ऋषभदेव पुत्रों को राज्य देकर स्वयं साधु बन गये।

भरत की दिविवज्य

अथानन्तर समवसरण से आकर भरत ने पुत्र जन्म का उत्सव किया, चक्ररत्न की पूजा की और उसके बाद छह खण्डों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किया।

चतुरं रङ्गमहासेनो नृपचक्रेण सङ्गतः।

अग्रप्रस्थित चक्रेण युक्तो दिक्चक्रिणां नृणाम्॥२॥

उस समय चतुरङ्ग सेना उसके साथ थी, वे राजाओं के समूह से युक्त थे और नाना दिशों से आये हुए अपार जनसमूह के आगे-आगे चलने वाले चक्ररत्न से युक्त थे।

भरत की देवों पर विजय

वे गंगा नदी के किनारे-किनारे चल कर गंगासागर पर पहुँचे। वहाँ गंगा द्वार पर उन्होंने मन, वचन, काय की क्रिया को प्रशस्त कर तीन दिन का उपवास किया। जिसमें दो घोड़े जुते हुए थे ऐसे वेगशाली रथ पर सवार होकर उन्होंने द्वार खोला और समुद्र में घुटने पर्यन्त प्रवेश किया। उस समय लम्बी भुजाओं के धारक भरत अपने हाथ में वज्र काण्ड नामक धनुष लिये हुए थे तथा वैशाख

आसन से खड़े थे। वे दृष्टि को स्थिर करने, कड़ी मुट्ठी बाँधने और डोरी पर बाण स्थापित करने में अत्यन्त निपुण थे। उसी समय उन्होंने अपने नाम से चिह्नित अमोद्ध नाम का शीघ्रगामी बाण छोड़ा। वज्र के समान चमकता हुआ बाण शीघ्र ही बारह योजन जाकर मगध देव के भवन में गिरा और उसने भवन में प्रवेश करते ही समस्त आकाश को शब्दायमान कर दिया। बाण के गिरते ही मगध देव का भवन और हृदय दोनों ही एक साथ हिल उठे। वह बहुत क्षोभ को प्राप्त हुआ। परन्तु जब उसने चक्रवर्ती के नाम से चिह्नित बाण को देखा और चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका है यह जाना, तब वह अपने पुण्य को अल्प जान अपनी निन्दा करने लगा। तदनन्तर जिसका मान खण्डित हो गया था ऐसा मागध देव हाथों में रत्न लेकर भरत के पास आया। आकर उस बुद्धिमान देव ने पृथ्वी का सार-भूत हार, मुकुट रत्ननिर्मित दो कुण्डल, अच्छे-अच्छे रत्न, वस्त्र तथा तीर्थोदक की भेंट दी और कहा कि हे स्वामिन! बताइये मैं क्या करूँ? मुझे आज्ञा दीजिए। तदनन्तर भरत से विदा हो वह अपने स्थान पर गया और भरत जी भी वहाँ से चलकर दक्षिण दिशा में रहने वाले महाबलवान् भूत और व्यन्तर देवों के समूहों को वश में करते हुए समुद्र के वैजयन्त-द्वार पर पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने मगध देव के समान उस प्रदेश के स्वामी वरतनु देव को बुलाया और वरतनु देव ने आकर घृडामणि, सुन्दर कण्ठद्वार, कवच, वीरों के बाजूबन्द, कड़े और करधनी भेंट कर भरत को प्रणाम किया। तदनन्तर सेवक वृत्ति को स्वीकार करने वाला वरतनु भरत से विदा ले अपने स्थान पर चला गया। वहाँ चलकर भरत पश्चिमी दिशा के समस्त राजाओं को वश करते हुए वेदिका के किनारे-किनारे चल कर सिन्धु नदी के मनोहर द्वार पर पहुँचे। वहाँ इन्द्र के समान पराक्रम को धारण करने वाले चक्रवर्ती भरत ने गंगा द्वार के समान वहाँ के अधिपति प्रभास देव को नम्रीभूत कर अपने वश किया तथा उसने सन्तानक वृक्षों के पुष्पों की उत्तम माला, मौतियों की जाली, मुकुट और रत्नों से चित्र-विचित्र कटी सूत्र प्राप्त किया।

भरत का विजयार्थ पार होना

तदनन्तर भरत, चक्ररत्न के पीछे-पीछे चलकर विजयार्थ पर्वत की वेदिका के समीप आये। वहाँ उन्होंने उपवास कर पर्वत के अधिष्ठाता (विजयार्थ कुमार) देव का स्मरण किया। वह देव अपने अवधि ज्ञान से भरत के पास आया। उसने भरत को प्रणाम कर बड़ी ऋद्धियों से उनका अभिषेक किया तथा झारी, कलश

जल उत्तम सिंहासन, छत्र और दो चमर भेंट कर कहा कि मैं आपका सेवक हूँ- आपका सेवक हूँ। इस प्रकार निवेदन कर वह चला गया। राजा भरत वहाँ चक्ररत्न की पूजा कर तमिस गुहा के द्वार पर आये। वहाँ घबराया हुआ कृतमाल नामक देव उनके पास आया। और तिलक आदि चौदह दिव्य आभूषण देकर तथा प्रणाम कर 'मैं आपका हूँ' यह कहता हुआ चला गया। राज राजेश्वर भरत की आज्ञा से उनके अयोध्य नामक सेनापति ने सुआ के समान कन्ति वाले कुमुद मेलक नामक अश्वरत्न पर सवार हो तथा पीछे की ओर अपना मुख कर दण्ड रत्न से गुफा द्वार के किवाड़ों को ताड़ित किया और ताड़ित कर वह एकदम पीछे भाग गया। खुला हुआ गुफा द्वार जब छह माह में उष्म रहित हो गया तब चक्रवर्ती ने विजय पर्वत नामक हाथी पर सवार हो सेना के साथ उसमें प्रवेश किया। गुफा के बीच में उन्मन जला और निमग्न जला नाम की दो नदियाँ थीं, उनके तट पर भरत ने सेनाओं को छोड़ दिया उन्होंने विश्राम कराया। इस गुफा में निरन्तर अंधकार रहता था जिसे भरत ने काँकड़ी मणि की किरणों से दूर कर दिया था। भरत की सेना ने वहाँ आलस्य रहित होकर एक दिन-रात निवास किया। काम दृष्टि नामक गृह पलिरत्न और रत्नभ्रद मुख नामक स्थपतिरत्न इन दोनोंने उन नदियों पर मजबूत पुल बनाये। सेना उन पुलों के द्वारा शीघ्र ही नदियों को पार कर आगे बढ़ गई और पहले के तरह उत्तर द्वार को खोल कर उत्तर भारत में जा पहुँची।

भरत का उत्तर भारत के म्लेच्छों को जीतना

उत्तर भारत के हजारों म्लेच्छ राजा चक्रवर्ती की अपूर्व सेना को देखकर क्षुभित हो गये और शीघ्र ही सामने आकर अनायास युद्ध करने लगे। तदनन्तर क्रोध से भरे हुए अयोध्य सेनापति ने युद्ध में म्लेच्छ राजाओं के साथ युद्ध कर उन्हें शीघ्र ही खदेड़ कर अपना 'अयोध्य' नाम सार्थक किया। सेनापति से भयभीत हुए म्लेच्छ अपने कुल देवता दर्भशश्या पर शयन करने वाले एवं भयंकर मेघमुख नाम कुमारों की शरण गये। जिससे मेघ मुखदेव आकाश को व्याप्त कर युद्ध के लिये आ डटे। जय कुमार ने उनके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त कर दिया और स्वयं 'मेघ-स्वर' यह नाम प्राप्त किया। कुछ देर बाद मेघ मुख देव भयंकर मेघों से आकाश को व्याप्त कर मुट्ठी बराबर मोटी-मोटी धाराओं से सेना के मस्तक पर जल वर्षा करने लगे। तदनन्तर जिससे बिजली के साथ वज्र की भयंकर गर्जना हो रही थी। ऐसी जलवृष्टि देखकर चक्रवर्ती ने सेना के नीचे चर्म रत्न और ऊपर

छत्र रत्न फैला दिया। बारह योजन फैली हुई एवं जल के भीतर तैरती हुई वह सेना अण्डों के सामाने जान पड़ती थी। वह सेना रात-दिन तक इसी तरह भयभीत रही। तदनन्तर निधियों के स्वामी चक्रवर्ती ने कुपित होकर गणबद्ध देवों को आज्ञा दी और उन्होंने उन मेघ मुख देवों को परास्त कर खदेड़ दिया। तत्पश्चात् जिन्होंने वृष्टिका संकोच कर लिया था। ऐसे मेघ मुख देवों की प्रेरणा पाकर वे म्लेच्छ राजा उत्तमोत्तम कन्याएँ लेकर चक्रवर्ती की शरण में आये। चक्रवर्ती ने उन भयभीत तथा आज्ञा पाने की इच्छा करने वाले म्लेच्छ राजाओं को अभ्यदान दिया।

भरत का हिमवान् पर्वत जीतना

उसके बाद श्रम के रहित हो सिन्धु नदी की वेदिका के किनारे-किनारे गमन किया। बीच सिंधु कूट पर निवास करने वाली सिंधु देवी ने भरत का अभिषेक कर उन्हें पाद पीठ से सुशोभित दो उत्तम आसन भेंट किये। चक्रवर्ती सेना को हिमवान् पर्वत की तराई में ठहरा कर तथा स्वयं तीन दिन के उपवास का नियम लेकर दर्भशश्या पर आरूढ़ हुए। तदनन्तर जिन्होंने तीर्थ जल से स्नान किया था, उत्तम वेश-भूषा धारण की थी, जो धोड़ों के रथ पर सवार थे, जिनके आगे-आगे चक्ररत्न चल रहा था और जो रण में अत्यन्त कुशल थे, ऐसे भरत, जहाँ हिमवान् पर्वत का हिमवत् नामक छोटा कूट था, वहाँ आये और बाण हाथ में ले तथा वैशाख आसन से खड़े होकर बोले कि ‘‘हे इस देश में रहने वाले नागकुमार, सुवर्णकुमार आदि देवों तुम लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञा सुनो।’’ यह कहकर उन्होंने धनुष खींचकर बाण छोड़ा। वज्रके समान शब्द करता हुआ वह बाण बारह योजन दूर जाकर गिरा तथा हिमवत् कूट पर रहने वाले देव उसे देखकर भरत के पास आये। उन्होंने दिव्य औषधियों की माला तथा दिव्य हरि चन्दन देकर भरत की पूजा की। तदनन्तर आज्ञा की इच्छा करता हुआ वह भरत से विदा ले अपने स्थान पर चला गया।

भरत का अपनी प्रश्टस्ति लिखना (प्रथम शिला लेख)

आगत्य चक्र वर्ती च ततो वृषभ पर्वत।

तत्रालिखन्निं नाम काकण्या स परिस्फुटम्॥47॥

वृषभस्य सुतो भोड़हं चक्री भरत इत्यसौ।

प्रवाच्य विजयाद्वस्य वेदिकामगमत् प्रभुः॥48॥

(हरिवंश पुराण सर्ग 11)

चक्रवर्ती वहाँ से चलकर वृषभाचल पर्वत पर आये और वहाँ उन्होंने काकणी रत्न से साफ-साफ अपना यह नाम लिखा कि ‘‘मैं भगवान् वृषभदेव का पुत्र भरत चक्रवर्ती हूँ।’’ नाम लिखकर तथा बाँच कर वे विजयार्थ पर्वत की वेदिका के समीप आये।

दिविजय पूर्ण-

तदनन्तर वहाँ से चलकर अठारह हजार म्लेच्छ राजाओं को वश करते और उनसे उत्तमोत्तम रत्नों की भेंट स्वीकार करते हुए भरत विजयार्थ की दूसरी गुफा खण्ड प्रताप के समीप पहुँचे। वहाँ वे तीन दिन के उपवास का नियम लेकर ठहर गये। यहाँ नाट्यमाल नामक देव ने उन्हें नाना प्रकार के आभूषण और बिजली के समान चमकते हुए दो कुण्डल भेंट किये। जिस प्रकार पहले अयोध्या सेनापति ने दण्डरत्न के द्वारा सिन्धु नदी की गुफा का द्वार खोला था उसी प्रकार यहाँ भी उसने दण्डरत्न से गंगा नदी की गुफा का द्वार खोला और उस द्वार से प्रवेश कर सेना सहित बाहर निकल आये।

दिविवजय काल

विजित्यं भारतं वर्षं स षट्खण्डमखण्डितम्।

षष्ठ्य वर्षसहस्रैस्तु विनीतां प्रस्थितः कृती॥५६॥

इस तरह अतिशय कुशल भरत ने साठ हजार वर्षों में छह खण्डों से युक्त समस्त भरत क्षेत्र को जीतकर अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान किया।

सुदर्शन चक्र का अयोध्या में प्रवेश

समीप आने पर जब सुदर्शन चक्र ने अयोध्या में प्रवेश नहीं किया तब भरत ने सन्देहयुक्त होकर बुद्धिसागर पुरोहित से पूछा कि समस्त भारत क्षेत्र को वश कर लेने पर भी यह दिव्य चक्ररत्न अयोध्या में प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है? अब तो हमारे युद्ध के योग्य कोई नहीं है? पुरोहित ने बताया कि आपके भाईयों ने आपकी अधिनता स्वीकार नहीं की है।

यह सुनकर भरत ने शीघ्र ही उनके पास साम, दाम आदि नीति के साथ दूत भेजे।

भाईयों को वैराग्य

ततस्ते तन्निमित्ते न मानिनो लध्वबोधयः।

स्वराज्यान्यत्यजस्त्यां मन्यमाना महोत्सवम्॥६१॥

तदतन्तर इस निमित्त से जिन्हें बोधि की प्राप्ति हुई थी ऐसे भरत के अभिमानी भाइयों ने त्याग को ही महोत्सव मान अपने—अपने राज्य छोड़ दिये।

जो संसार से भयभीत थे, जिनकी मानरूपी शल्य छूट चुकी थी और जो अंतरंग में मोक्ष की इच्छा रखते थे ऐसे भरत के समस्त भाइयों ने भगवान् वृषभदेव के समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली।

भाइयों से त्यक्त देश (विशाल भारत के विभिन्न देश)

कुरुजाङ्गल, पञ्चाल, सूरसेन, पटच्चर, तुलिङ्ग, काशी, कौशल्य, मद्रकार, वृकार्थक, सोल्व, अवृष्ट, निर्गत, कुशाग्र, मत्य, कुणीयान्, कौसल और मोक्ष ये मध्यदेश थे।

वाल्मीकि, आत्रेय, काम्बोज, यवन, आभीर, मद्रक, क्वाथतीय, शूर, वाटवान, कैक्य, गान्धार, सिन्धु, सौवीर, भारद्वाज, दशरुक, प्राथ्याल और तीर्णकर्ण ये देश उत्तर की स्थित थे।

खङ्ग, अंगारक, पौण्ड्र, मल्ल, प्रवक, मस्तक, प्रद्योतिष, वङ्ग, मगध, मानवर्त्तिक, मलद और भार्गव, ये पूर्व देश पूर्व दिशा में स्थित थे। बाममुक्ता, वैदर्भ, माणव, सककापिर, मूलक, अश्मक, दाण्डीक, कलिङ्ग, आंसिक, कुन्तल, नवराष्ट्र, माहिषक, पुरुष और भोगवर्धक, ये दक्षिण दिशा के देश थे। माल्य, कल्लीवनोपान्त, दुर्ग, सुपरि, कर्बुक, काक्षि, नासारिक, अगर्त, सारस्वत, तापस, महिम, भरुकच्छ, सुराष्ट्र और नर्मद ये सब देश पश्चिम दिशा में स्थित थे। दशार्णक, किष्कन्ध, त्रिपुर, आवर्त, नैषध, नैपाल, उत्तमवर्ण, वैदिश, अन्तप, कौशल, पत्तन और विहिनात्र, ये देश विन्ध्याचल के ऊपर स्थित थे। भद्र, वत्स, विदेह, कुश, भङ्ग, सैतव और वज्रखण्डक ये देश मध्य देश के आश्रित थे।

“स्वाधीनता प्रेमी बाहुबली” (लोकतंत्र का आरंभ)

अथ बाहुबली चक्रे चक्रेशं प्रत्यवस्थितिम्।

सन्दधानो मनश्चक्रे चक्रेऽलातमये यथा॥७७॥

(पु. 203 हरि. पु. सर्ग)

अथानन्तर कुमार बाहुबली ने भरत चक्रवर्ती के प्रति अपनी प्रतिकूलता प्रकट की। उन्होंने उनके सुदर्शन चक्र को अलात-चक्र से सदृश तुच्छ समझा और मैं आपके आधीन नहीं हूँ यह कहकर दृत वापिस भेज दिया तथा वे शीघ्र ही अक्षौहिणी सेना साथ ले युद्ध के लिये पोदनपुर से निकल पड़े। वस्तुतः बाहुबली के मन में

भरत के प्रति भक्ति अनुराग व आदर भाव भी था, परन्तु वह भाव, ज्येष्ठ भरत के प्रति था न कि चक्रवर्ती भरत के प्रति। स्वयं ऋषभदेव ने जिस प्रकार भरत को राज्य के कुछ भाग बाँट कर दिये थे उसी प्रकार बाहुबली को भी। इसलिये नैतिक दृष्टि से जिस प्रकार भरत का अपने राज्य पर अधिकार था उसी प्रकार बाहुबली का भी अपने राज्य पर अधिकार था। बाहुबली एक स्वाधीनता प्रेमी राजा होने के कारण अपनी स्वाधीनता को खोकर पराधीन होकर भरत की आधीनता स्वीकार नहीं करना चाहते थे। यह नैतिकता एवं राजनैतिक दृष्टि ठीक ही है क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्रता में जीवित रहने के लिए नैतिक दृष्टि से प्राप्त अधिकार का उपभोग करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है। केवल दूसरों की हिंसा करना हिंसा नहीं है परन्तु दूसरों के अधिकार छीनता है तो उस समय में योग्य नैतिक-पूर्ण प्रतिरोध, करना भी दूसरों का कर्तव्य हो जाता है।

जिस प्रकार प्रत्येक जीव का जीवित रहना व स्वनैतिक अधिकार को उपभोग करना जन्मसिन्धु अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को भी जीने देना एवं दूसरों के अधिकार स्वीकार करना भी जन्मसिन्धु कर्तव्य है। एक दिन एक ने विद्यार्थी महात्मा गांधी से जिज्ञासा प्रकट की, महात्मा जी मेरी स्वतन्त्रता की सीमा कहाँ तक है? तो महात्मा जी बोले, ‘‘जहाँ से दूसरों की स्वतन्त्रता की सीमा प्रारम्भ नहीं होती है वहाँ तक। इससे ज्ञात होता है कि जैसे स्वयं स्वतन्त्रता से जीना चाहते हैं उसी प्रकार दूसरों को भी स्वतन्त्रता से जीने देना चाहिये। अमेरिका के महामना राष्ट्रपति अब्राहमलिंकन की भी मान्यता इसी प्रकार थी, वे कहते थे कि ‘‘मेरी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रकृति प्रदत्त स्वभाव अनुसार मन माफिक काम करने तथा अपनी मेहनत का फल पाने का अधिकार है जब तक कि उसका यह अधिकार दूसरों के अधिकार में हस्तक्षेप न करे।’’ इससे प्रतीत होता है कि बाहुबली उत्थृंखल, उदण्ड, भ्रातृद्रोही अहंकारी नहीं थे परन्तु विश्व के समक्ष स्वतन्त्रता के मूल्य नैतिक अधिकार, देश-प्रेम, आत्म गौरव को प्रस्तुत करने के लिये भाई के विरुद्ध नहीं किन्तु परस्ता लोलुपी भरत के विरुद्ध प्रति आक्रमण किए थे।

इस युग का आद्य महा-धर्म-युद्ध

इधर सेना रूपी सागर से दिशाओं को व्याप्त करते हुए चक्रवर्ती भरत भी आ पहुँचे जिससे वित्ता नदी के पश्चिम दिग्भाग में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई।

उभये मन्त्रिणो मन्त्रं मन्त्रयित्वा हुरीशयोः।
माभूज्जनपदक्षयो धर्मयुद्धमिहस्त्वति॥८०॥

तदनन्तर दोनों राजाओं के मन्त्रियों ने परस्पर सलाह कर कहा कि देशवासियों का क्षय न हो इसलिए दोनों ही राजाओं में धर्म युद्ध हो।

“इस युग का प्रथम भ्रातृ युद्ध” (विना सेना एवं अस्त्र)

भरत और बाहुबली ने मन्त्रियों की यह बात मानकर सर्वप्रथम दृष्टि युद्ध शुरू किया और आकाश में खड़े हुए देव और विद्याधरों ने दोनों को चिरकाल तक टिमकार रहित नेत्रों से खड़े रहते देखा और कोई किसी से हारा नहीं परन्तु अन्त में छोटे भाई ने बड़े भाई को हरा दिया क्योंकि बड़े भाई पाँच सौ धनुष ऊँचे थे इसलिए उनकी दृष्टि ऊपर की ओर थी और छोटे भाई उनसे पच्चीस धनुष ऊँचे थे, इसलिए उनकी दृष्टि नीचे की ओर थी।

दृष्टि युद्ध के बाद दोनों भाइयों का तालाब में भयंकर जल-युद्ध हुआ। उस समय दोनों ही भाई एक ढूसरे पर अपनी भुजाओं से लहरें उछाल-उछाल कर दुःसह आघात कर रहे थे। परन्तु इस युद्ध में भी बाहुबली ने बड़े भाई भरत को हरा दिया।

तदनन्तर दोनों का रङ्गभूमि में चिरकाल तक मल्लयुद्ध हुआ। उनका मल्ल युद्ध तालों की फटाटोप से युक्त था तथा नाना प्रकार के पैंतरा बदलने की चतुराई से पूर्ण था।

“दिविजयी की हतविजय”

अन्त में दयावान बाहुबली अपने भुजमन्त्र से भरत को पकड़कर तथा ऊपर की ओर उठाकर इस प्रकार खड़े हो गये मानो कोई देव रत्नों का पर्वत उठाकर खड़ा हो।

देखने वाले देवों के समूह विद्याधरों तथा भूमि गोचरी मनुष्यों ने उसी समय जोर से यह शब्द किया कि अहो! वीर्यम् आश्चर्यकारी शक्ति है, अहो धैर्यम्-आश्चर्यकारी धैर्य है, साधु-साधु ठीक है, ठीक है आदि।

“अमोघ चक्र हुआ मोघचक्र”

साधु संसाध्य मुक्तेन भरतेन रूपाः ततः।
अपमृत्यु स्मृतं चक्रं सहस्रां स्थितं करे॥८८॥

तदनन्तर अच्छी तरह जीतकर जब बाहुबली ने भरत को छोड़ा तब उन्होंने क्रोध के कारण अपमृत्यु करने वाले सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और स्मरण करते ही हजार आरों को धारण करने वाला सुदर्शन चक्र उनके हाथ में आकर खड़ा हो गया।

रक्षयं यक्षसहस्रेण सहस्रकिरणं प्रथम्।

प्रभास्य चक्रमुन्मुक्तं वधार्थं भ्रातरुन्मुखम्॥८९॥

एक हजार यक्ष जिसकी रक्षा कर रहे थे तथा जो सूर्य के समान देवीयमान प्रभा का धारक था। ऐसे सुदर्शन चक्र को उन्होंने ऊपर की ओर धुमाकर भाई को मारने के लिये छोड़ा।

चरमोत्तमदेहस्य तस्याशक्तं विनाशने।

देवताधिष्ठितं चक्रं त्रिः परित्यागतं पुनः॥९०॥

परन्तु वह देवाधिष्ठित चक्र चरमोत्तम शरीर के धारक बाहुबली, बड़े भाई को निर्दय देख हाथों से कान ढक्कर लक्ष्मी की इस प्रकार निन्दा करने लगे। जिस प्रकार कीचड़ स्वच्छ अनुकूल एवं मिले हुये जल को विपरीत-मलिन कर देती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी स्वच्छ अनुकूल और मिले हुए मनुष्यों के चित्त को मलिन कर देती है। अतः इसे धिक्कार हो।

युद्ध विजयी बने आत्मविजयी

इस प्रकार विचार कर तथा राज्य का परित्याग कर बाहुबली तप करने लगे। और कैलास पर्वत पर एक वर्ष का प्रतिमा योग लेकर निश्चल खड़े हो गये।

उनके चरण वामी के बिलों से निकले हुए मणिभूषित सर्पों से इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि पहले मणिभूषित आश्रित राजाओं से सुशोभित होते थे।

जिस प्रकार पहले कोमलाञ्जी वल्लभा उनके समस्त शरीर का आलिङ्गन करती थी उसी प्रकार कोमलाञ्जी माधवी लता उनके मुनि होने पर भी उन बाहुबली के समस्त शरीर का आलिङ्गन कर रही थी।

दो विद्याधर परियाँ उनके शरीर पर लिपटी हुई लता को दूर करती रहती थी जिससे श्याम मूर्ति के धारक एवं स्थिर खड़े हुए योगिराज बाहुबली मरकत मणि के पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे।

तदनन्तर भरत ने आकर जिन्हें नमस्कार किया था ऐसे बाहुबली मुनिराज कषायों का अन्त कर तथा केवल ज्ञान उत्पन्न कर भगवान् वृषभदेव के सभासद्

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवर्वता

हो गये— उनके समवसरण में पहुँच गये।

भरत बने चक्रवर्ती

चर्तुर्दशमहारत्नैर्निधिभिवभिर्नयुतः।

निःसपलं तवश्चक्री बुभोजवसुधांकृती॥1 0 3॥

तदनन्तर चौदह महारत्नों और नौ नियों से युक्त अतिशय बुद्धिमान् चक्रवर्ती भरत पृथ्वी का निष्कण्टक उपभोग करने लगे।

प्राचीन कालीन लोकतंत्र

बाहुबली एवं भरत के प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि बाहुबली प्रकारान्तर से लोकतंत्र के समर्थक थे और भरत राजतंत्र के समर्थक थे। इससे सिद्ध होता है प्राचीनकाल में राजतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र का अंकुरण हो रहा था। भगवान् महावीर जिस राज्य में जन्म लिए थे वह गणराज्य था। वहाँ का मुखिया चेटक था। राजतंत्र में राजा यदि अन्याया, अत्याचार, शोषण करता है तो प्रजा संगठित होकर उसे सत्ता से छ्युत कर देती थी तथा अधिक अन्यायी होने पर प्राणदण्ड भी देती थी। जैन प्राचीन इतिहास से सिद्ध होता है कि सुदास नामका राजा माँस लोलुपी होकर मनुष्य का माँस खाने लगा तो प्रजाने संगठित होकर सत्ता से छ्युत करके राज्य से निष्कासित कर दिया। क्योंकि राजा एवं राजनीति का मुख्य उद्देश्य प्रजा की रक्षा एवं समृद्धि करना है। इसीलिए तो लोकतंत्र की मूल आधारशिला प्रजा है।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने लोकतंत्र की परिभाषा भी यही कही है।

It is a government of the people, by the people and for the people. अर्थात् लोकतंत्र प्रजाओं का प्रजाओं के द्वारा है और प्रजाओं के लिए है।

अन्य अन्य राजनीति के चिन्तकों ने भी इसीप्रकार कहा है—

Democracy is government in which every one has a share (seely)

महात्मा गाँधी लोकतंत्र को प्रजातंत्र, रामराज्य, स्वराज्य आदि नामों से पुकारते थे। उनका कथन हैं, राम राजा, राम प्रजा, राम ही साहूकार अर्थात् राम ही राजा है, राम ही प्रजा है और राम ही साहूकार है।

स्वराज्य का अर्थ है— देश के आयात और निर्यात पर सेना और अदालतों पर जनता का पूरा नियन्त्रण। ऐसी स्थिति में एक बालिका भी घोर अंधकार में

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवर्वता

निर्भयता के साथ धूम सके। स्वराज्य में राज्यसत्ता, शराब अफीम इत्यादि (मादक पदार्थों) का व्यापार ना करें। महाभारत में भी गणतन्त्र (लोकतंत्र) का उदार वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

अर्थात् चैवाधिगम्यन्ते संघातबलपौरुषैः।

ब्रह्माश्च मैत्री कुर्वन्ति तेषु संघातवृत्तिषु॥(15)

(पृ. 4700)

जो सामूहिक बल और पुरुषार्थ से सम्पन्न है उहें अनायास ही संपूर्ण अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। संघबद्ध होकर जीवन निर्वाह करने वाले लोगों के साथ संघ से बाहर के लोग भी मैत्री स्थापित करते हैं।

ज्ञानवृद्धाः प्रशंसन्ति शुश्रूषन्तः परस्परम्।

विनिवृताभि संघानाः सुखमेधन्तिसर्वशः॥(16)

ज्ञानबुद्ध पुरुष गणराज्य के नागरिकों की प्रशंसा करते हैं। संघबद्ध लोगों के मन में आपस में एक-दूसरें को ठगने की दुर्भावना नहीं होती। वे सभी एक दूसरे की सेवा करते हुए सुखपूर्वक उन्नति करते हैं।

धर्मिष्यान् व्यवहारांश्च स्थापयन्तश्य शास्त्रतः।

यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥(17)

गणराज्य के श्रेष्ठ नागरिक शास्त्र के अनुसार धर्मानुकूल व्यवहारों की स्थापना करते हैं। वे यथोचित् दृष्टि से सभी को देखते हुए उन्नति की दिशा में आगे बढ़ते जाते हैं।

पुत्रान् भ्रातृन् निगृहन्तो विनयतश्च तान् सदा।

विनीतांश्च प्रगृहन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥(18)

गणराज्य के श्रेष्ठ पुरुष पुत्रों और भाईयों को भी यदि वे कुर्मार्ग पर चलें तो दण्ड देते हैं। सदा उन्हे उत्तम शिक्षा प्रदान करते हैं और शिक्षित हो जाने पर उन सबको बड़े आदर से अपनाते हैं। इसीलिए वे विशेष उन्नति करते हैं।

चारमन्त्रं विधानेषु कोशसंनिचयेषु च।

नित्ययुक्ता महाबाहो वर्धन्ते सर्वतो गणाः॥(19)

महाबाहु युधिष्ठिर! गणराज्य के नागरिक, गुप्तचर या दूत का काम करने, राज्य के हित के लिए गुप्त मंत्रणा करने, विधान बनाने तथा राज्य के लिए कोष

संग्रह करने आदि के लिए सदा उद्यत रहते हैं इसीलिए सब ओर से उनकी उन्नति होती है।

प्राज्ञाभृतान् महोत्साहान् कर्मसु स्थिरपौरुषान्।

मानयन्तः सदा युक्ता विवर्धन्ते गणा नृप॥(20)

नरेश्वर! संघराज्य के सदर्य सदा बुद्धिमान, शूरवीर, महान् उत्साही और सभी कार्यों में दृढ़ पुरुषार्थ का परिचय देने वाले लोगों का सदा सम्मान करते हुए राज्य की उन्नति के लिए उद्योगशील बने रहते हैं। इसीलिए वे शीघ्र आगे बढ़ जाते हैं।

द्रव्यवन्तश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्रपारगाः।

कृच्छास्वापत्सु सम्मूढान् गणाः संतारयन्ति ते॥(21)

गणराज्य के सभी नागरिक धनवान्, शूरवीर, अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता तथा शास्त्रों के पारंगत विद्वान् होते हैं। वे कठिन विपत्ति पड़कर मोहित हुए लोगों का उन्द्रार करते रहते हैं।

क्रोधो भेदो भयं दण्डः कर्षणं निग्रहो वधः।

नयत्यरिवशं सद्यो गणान् भरतसत्तम॥(22)

भरत श्रेष्ठ! संघराज्य के लोगों में यदि क्रोध, भेद (कृट) भय, दण्डप्रहार, दूसरों को दुर्बल बनाने, बंधनों में डालने या मार डालने की प्रवृत्ति पैदा हो जाये तो वह उन्हें तत्काल शत्रुओं के वश में डाल देती है।

तस्मान्मानयितव्यास्ते गणमुख्याः प्रधानतः।

लोकयात्रा समयता भूयसी तेषु पार्थिव॥(23)

राजन्! इसीलिए तुम्हे गणराज्य के जो प्रधान-प्रधान अधिकारी हैं, उन सबका सम्मान करना चाहिए; क्योंकि लोकयात्रा का महाभार उनके ऊपर अवलम्बित है।

मंत्रगुप्तिः प्रधानेषु चारश्चामित्रकर्षणम्।

न गणाः कृत्स्नशो मंत्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत॥(24)

शत्रुदमन! भारत! गण या संघ के सभी लोग गुप्त मंत्रणा सुनने के अधिकारी नहीं हैं। मंत्रणा को गुप्त रखने तथा गुप्तचरों की नियुक्ति का कार्य प्रधान-प्रधान व्यक्तियों के ही अधीन होता है।

गणमुख्यैस्तु सम्भूय कार्ये गणहितं मिथः।

पृथग्णस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा॥

अर्था प्रव्यवसीदन्ति तथानर्था भवन्ति च॥

गण के मुख्य 2 व्यक्तियों को परस्पर मिलकर समस्त गणराज्य के हित का साधन करना चाहिए अन्यथा यदि संघ में फूट होकर पृथक्-2 कई दलों का विस्तार हो जाये तो उसके सभी कार्य बिगड़ जाते हैं और बहुत से अनर्थ पैदा हो जाते हैं।

तेषामन्योन्यभिन्नानां स्वशक्तिमनुतिष्ठताम्।

निग्रहः पण्डितं कार्यं क्षिप्रमेव प्रधानतः॥(26)

परस्पर फूटकर पृथक्-2 अपनी शक्ति का प्रयोग करने वाले लोगों में जो मुख्य-2 नेता हो, उनका संघराज्य के विद्वान अधिकारियों को शीघ्र ही दमन करना चाहिए।

कुलेषु कलहाः जाताः कुलवृद्धैरुपेक्षिताः।

गौत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम्॥(27)

कुलों में जो कलह होते हैं, उनकी यदि कुल के वृद्ध पुरुषों ने उपेक्षा कर दी तो वे कलह गणों में फूट डालकर समस्त कुल का नाश कर डालते हैं।

आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यमसारं वाह्यतो भयम्।

आभ्यन्तरं भयं राजन् सद्यो मूलानि कृतन्ति॥(28)

भीतरी भय दूर करके संघ की रक्षा करनी चाहिए। यदि संघ में एकता बनी रहे तो बाहर का भय उसके लिए निःसार है (वह उसका कुछ भी बिगड़ नहीं सकता) राजन्! भीतर का भय तत्काल ही संघराज्य की जड़ काट डालता है। अकस्मात् पैदा हुए क्रोध और मोह से अथवा स्वाभाविक लोभ से भी जब संघ के लोग आपस में बातचीत करना बंद कर दें तब यह उनकी पराजय का लक्षण है।

जाति और कुल में सभी एक समान हो सकते हैं, परन्तु उद्योग, बुद्धि और रूप सम्पत्ति में सबका एकसा होना संभव नहीं है। शत्रुलोग गणराज्य के लोगों में भेदबुद्धि पैदा करके तथा उनमें से कुछ लोगों को धन देकर भी समूचे संघ में फूट डाल देते हैं अंतः संघबद्ध रहना ही गणराज्य के नागरिकों का महान् आश्रय है।

अध्याय-८

भरत जी घर में धर्मनुरागी

वे पर्व के दिन उपवास की प्रतिज्ञा लेकर चित्त को स्थिर कर सामायिक करते हुए जिनमन्दिर में ही रहते थे और उस समय ठीक मुनियों का आचरण धारण करते थे।

जिनेन्द्र देव का स्मरण करने में वे सावधान को प्राप्त ही रहे थे उनका चित्त स्थिर हो रहा था और आश्चर्य है कि शरीर के बन्धन शिथिल होने से उनके आभूषण भी निकल पड़े थे।

**तथापि बहुचिन्तस्य धर्मचिन्ताऽभवद् दृढा।
धर्मेहि चिन्तिते सर्वं चिन्त्यं स्यादनुचिन्तितम्॥114॥**

यद्यपि उन्हें बहुत पदार्थों की चिन्ता करनी पड़ती थी तथापि उनके धर्म की चिन्ता अत्यन्त दृढ़ थी सो ठीक ही है क्योंकि धर्म की चिन्ता करने पर चिन्ता करने योग्य समस्त पदार्थों का चिन्त्यन अपने आप हो जाता है।

भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तदभवमोक्षगामी, अनेक पूर्वभवों से धर्म से सुसंस्कृत होने के कारण वे संसार में अतुल भोग वैभव के बीच में रहते हुए भी उनकी दृष्टि धर्म की ओर विशेष रहती थी। क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने के कारण उन्होंने दृष्टि मोक्ष को प्राप्त कर ली थी। पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक होने के कारण अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यान कथायों के क्षयोपशम से आंशिक वीतरागी भी थे। परन्तु छठे-सप्तम गुणस्थानवर्ती आदि महामुनिश्वरों के समान वीतरागी नहीं थे। यदि उस प्रकार होते तो सबस्त्र अवस्था में महल में 96 हजार रानियों के बीच में रह ही नहीं सकते थे। श्रावक की अपेक्षा भरत को घर में वैरागी मानना यथार्थ होते हुए भी मुनि योग्य वीतरागी नहीं थे। जैसे— सामायिक में स्थित व्रती श्रावक को आचार्यों ने उपचार से महाव्रती की संज्ञा दी। उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी उपचार से वीतरागी थे। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद रलत्रय धारी को ही यथार्थ वीतरागी कहा है। कुछ भोगवादी भोग करते हुए भरत चक्रवर्ती का उदाहरण देकर स्वयं को वीतरागी सिद्ध करते हैं, इसमें उनकी वीतराग दृष्टि

नहीं परन्तु राग-दृष्टि है, और एक बात यह है कि भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि के साथ व्रती थे वे विशाल भूमाग के राज्यभार को बहन करते हुए भी गुरुओं की सेवा, मुनियों को आहारदान देना, जिनार्चना, मन्दिर निर्माण, सामायिक आदि सम्पूर्ण कार्य करते थे परन्तु आज के भोगवादी बिना पट् कर्तव्य पालन करते हुए स्वयं को वीतरागी सिद्ध करते हैं। भरत के नाम पर वीतरागता की आड़ में धर्म-कर्म रहित होकर केवल वीतराग की चर्चा करते हुए स्वयं को वीतरागी मानना वीतराग धर्म एवं भरत चक्रवर्ती के लिए लाज्जन लगाना है।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

तस्याखिलाः क्रियारम्भा धर्मचिन्तापुरस्पराः।

जाता जातमहोदर्कपुण्यपाकोत्थसंपदः॥115॥

बड़े भारी फल देने वाले पुण्य कर्म के उदय से जिन्हें अनेक सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं ऐसे भरत की समस्त क्रियाओं का प्रारम्भ धर्म के चिन्तनपूर्वक ही होता था अर्थात् महाराज भरत समस्त कार्यों के प्रारम्भ में धर्म का चिन्त्यन करते थे।

वे प्रातः काल आँख खोलकर जब समस्त दिशाओं को सबेरे की लालिमा से लाल-लाल देखते थे तब ऐसा मानते थे मानो ये दिशाएँ जिनेन्द्रदेव के चरण कमलों की लालिमा से ही लाल-लाल हो गयी हैं।

जिसने रात्रि का गाढ़ अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसे सूर्य को प्रातः काल के समय उदय होता हुआ देखकर वे ऐसा समझकर उठते थे मानो यह भगवान् के केवल ज्ञान का प्रतिबिम्ब ही हो।

प्रातः काल की वायु के चलने से खिले हुए कमलों के समूह को वे अपने हृदय में जिनेन्द्र भगवान् की दिव्य ध्वनि के समूह के समान शीतल समझते थे।

धर्मराज भरत

यथा राजा तथा प्रजा

धर्मशीले महीपाले यान्ति तच्छिलितां प्रजाः।

अताच्छील्यमतच्छीले यथा राजा तथा प्रजाः॥117॥

(आ. पु. दृष्टि प. 41 पु. 324)

यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा धर्मात्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा नहीं होती है। यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है।

तदा कालानुभावेन प्रायो धर्म प्रिया नराः।

साधीयः साधुवृत्तेऽस्मिन् स्वामिच्यासन् हिते रताः॥१९८॥

उस समय काल के प्रभाव से प्रायः सभी लोग धर्मप्रिय थे। सो ठीक ही है क्योंकि सदाचारी भरत के राजा रहते हुए सब लोग अपना हित करने में लगे हुए थे—

सुकालश्च सुराजा च समं सन्निहितं द्वयम्।

ततो धर्मप्रिय जाताः प्रजास्तदनुरोधतः॥१९९॥

उस समय अच्छा राजा और अच्छी प्रजा दोनों ही एक साथ मिल गये थे इसलिए राजा के अनुरोध से प्रजा धर्मप्रिय हो गई थी।

एषः धर्मप्रियः सप्राट धर्मस्थानभिनन्दति।

मन्त्वेति निखिलो लोकस्तदा धर्मे रतिं व्यधात्॥१००॥

यह सप्राट स्वयं धर्मप्रिय है और धर्मात्मा लोगों का सम्मान करता है यही मानकर उस समय लोग धर्म में प्रीति करने लगे थे।

स धर्मविजयी सप्राट सद्वृत्तः शुचिरुर्जितः।

प्रकृतिष्वनुरक्तासु व्याघाद् धर्मक्रियादरम्॥१०१॥

वह चक्रवर्ती धर्म विजयी था, सदाचारी था, पवित्र था और बलिष्ठ था इसलिए ही अपने पर प्रेम रखने वाली प्रजा में धार्मिक क्रियाओं का आदर करता था अर्थात् प्रजा को धार्मिक क्रियायें करने का उपदेश देता था।

भरतोऽभिरतो धर्मे वयं तदनुजीविनः।

इति तद्वृत्तमन्वीयु मौलिवद्वा महीक्षितः॥१०२॥

भरत धर्म में तत्पर है और हम लोग उसके सेवक हैं यही समझकर मुकुटबद्ध राजा उनके आचरण का अनुसरण करते थे।

सोऽयं साधित कामार्यशक्री चक्रानुभावतः।

चरितार्थद्वय तस्मिन् भजे धर्मेकतानृताम्॥१०३॥

चक्र के प्रभाव से अर्थ और काम दोनों ही जिनके स्वाधीन हो रहे हैं चक्रवर्ती भरत अर्थ और काम की सफलता होने पर केवल धर्म में एकाग्रता को प्राप्त हो रहे थे।

जो प्रजाओं की निस्वार्थ भाव से सेवा रक्षा करता है वह राजा है। मेरे मतानुसार

राजा वही है जो प्रजाओं का सर्वश्रेष्ठ सेवक हो। राजा को क्षत्रिय कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि जो दूसरों के क्षत (क्षति) से प्रजाओं की रक्षा करता है वह क्षत्रिय है। इससे सिद्ध होता है राजा, प्रजाओं का परम संरक्षक है। महाभारत में कहा भी है—“भवितव्यं सदा राजा गर्भिणी सह धर्मिणी”।

जैसे गर्भधारी माता गर्भस्थ सन्तान की सुरक्षा एवम् भलाई के लिए सुयोग्य आहार-विहार, आचार-विचार करती है उसी प्रकार राजा का धर्म प्रजाओं की रक्षा के लिये सदा सर्वदा रहना चाहिये। विश्व-राजनीति शास्त्र के वर्तमान काल के आद्य प्रणेता कौटिल्य (चाणक्य) ने कहा भी है—

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रिय हितम्॥

प्रजाओं का सुख ही राजा के लिए सुख स्वरूप है। प्रजाओं का हित ही राजा के लिये हित है। जो स्वयं (राजा) के लिए सुखकर, हितकर होता है वह चथार्थ राजा के लिये हितकर या सुखकर नहीं है। प्रजाओं के लिए जो हितकर व प्रिय है वही राजा के लिये, हितकर व प्रिय है अर्थात् राजा का सम्पूर्ण कर्तव्य प्रजाहित, प्रजासुख होता है।

प्राचीन काल में राजनीति वस्तुतः एक अभिन्न धर्मनीति थी। राजा व्यावहारिक धर्म राजनीति है। धर्म, सदाचार, नीति नियम से रहित राजनीति, रक्षकनीति न होकर भक्षकनीति होती है और राजा रक्षक न होकर भक्षक बन जाता है। इसलिए सन्त तुलसी दास ने रामचरितमानसे में कहा है—

“चाहिये धर्मशील नर बाहू”।

पृज्यपाद स्वामी ने शान्ति भक्ति में कहा भी है— “प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः” अर्थात् भूमिपाल (राजा, नेता) धार्मिक हो, बलवान् हो एवम् प्रभावशाली हो। राजा अपनी नैतिक शक्ति एवं सदाचार के माध्यम से जन गण के मनस्त्री सिंहासन में विराजमान हो जाता है। राजनीति मर्मज्ञ ने कहा भी है— “धर्मेण जयति लोकान्” राजा धर्म से लोक के ऊपर विजय प्राप्त करता है। “नीतिशास्त्रानुगो राजा” राजा नीतिशास्त्र के अनुसार आचार करने वाला होता है। तुलसीदास ने कहा भी है— “करण साधुमत, लोकमत, नृपनय, निगम निचोई।”

राजा को साधु के उपदेश (गत) प्रजाओं के मत (अभिप्राय) (आवश्यकतानुसार) राजनीति के आधार शास्त्रानुकूल शासन करें। राजा उच्छृंखल रूप से तानाशाह

होकर मनमाना नहीं करें। वे दूसरों के हित के लिये हिताकांक्षी लोगों से उपदेश, प्रेरणा, मार्गदर्शन प्राप्त करके कार्य करें यथा—

मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका।

प्रजा सचिव सम्मत सबही का॥

रामचन्द्र कहते हैं कि यह तो गुरु उपदेश दिये हैं और प्रजा, मन्त्री आदि की सहमति भी है। मैं उपर्युक्त सभी आधारों से राज्यशासन करता हूँ। भारतीय इतिहास में राम जिस धर्मनीति पर शासन कार्य किये वह शासन इतना महान था और उनका राज्य इतना उत्कृष्ट व सर्वोदय था कि अच्छे राज्य को रामराज्य की उपाधि दी जाती है। रामराज्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने कहा है—

दैहिक-दैविक, भैतिक तापा। रामराज नहिं काहू हि व्यापा।

सब दुःख वरजित प्रजा सुखारी। धरमशील सुन्दर नर नारी॥

वयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई॥

भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥

तुलसीदास ने रामचरितमानस में जिस रामराज्य का वर्णन किया है वह एक आदर्श राष्ट्र व राजा का वर्णन है। ऐसे महान राजाओं से सम्पूर्ण राष्ट्र प्रेरित होकर महान बन जाता है। पंडित जवाहरलाल नहेरु ने कहा भी है—

“महान नेताओं में कतिपय ऐसे गुण होते हैं जो सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रेरणा देते हैं और उन्हें कार्य करने को प्रेरित करते हैं।”

इसके विपरीत जो राजनीति है वह यथार्थ से शोषण नीति है। एवम् वह राजा राक्षस है। इस प्रकार की तुलसीदास ने दुष्ट राजाओं के बारे में वर्णन करते हुये कहा है—

नृप पापपरायण धर्म नाहीं। करिदण्डविडव प्रजानि तहीं॥

जासु राजप्रिय प्रजा दुःखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

सोचिअ नृपति जो नीत न जाना। जोहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

सचिव बैद गुरु तीनि जौ प्रिय बोलहि भय आस।

राज धर्म तन तीनि कर होई वेग ही नास॥

उपर्युक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि जो राजा न्यायनीति से रहित होकर राज्य शासन करता है उससे प्रजाओं को विभिन्न यातनायें सहन करनी पड़ती है, राष्ट्र आर्थिक, नैतिक दृष्टि से दुर्बल हो जाता है अन्ततोगत्वा राजा भी नष्ट—

भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये डेनियल अ, कौनेल ने कहा है— जो नैतिकता में अनुचित है, वह राजनीति में कभी उचित नहीं हो सकता। जान आर बुथनीट ने कहा भी है—

“सभी राजनीतिक संस्थायें अपने झूटों के परिणामस्वरूप ही अन्त में मिट जाती हैं।”

विश्व इतिहास साक्षी है कि जो बर्बर, प्रजाशोषक, प्रजापीड़क तानाशाही शासक बने हैं काल उसका अस्तित्व मिटाकर ही रहा जैसे—सत्ता लोलुपी दुर्योधन प्रजापीड़क कंस, जरासन्ध, अहंकारी रावण, तानाशाही नेपोलियन, हिटलर, औरंगजेब आदि।

प्राचीन लोकतंत्र

प्राचीन काल में कुछ राज्य में यदा—कदा, प्रजातन्त्र शासन (Democracy) का प्रचलन होते हुये भी अधिकतर राज्यतन्त्र शासन का प्राधान्य था। प्रजातन्त्र शासन का वर्णन जैन एवं बौद्ध, हिन्दूशास्त्र में पाया जाता है। इसका वर्णन मैने ‘प्राचीन एवं अर्वाचीन राजनीति विज्ञान’ में विस्तृत रूप से किया है। कुछ संक्षिप्त: वर्णन यहाँ भी करता हूँ। बौद्ध एवं जैन शास्त्र से सिद्ध होता है कि महावीर का जन्म एक गणतन्त्र राज्य में हुआ था। राजा चेटक के उस समय के गणराज्य का वर्णन निम्न प्रकार पाया जाता है।

विशो न राजानं वृणानाः। ऋग्वेद 10-124-81।

त्वां विशो वृणतां राज्याय। अथर्ववेद 3-4-2।

विशस्त्वा सर्वा वाङ्छान्तु। अथर्ववेद 6-87-1।

महते जानराज्याय। यजुर्वेद 9-40, 10-18।

सभा च मां समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने॥

(अर्थवेद 7-12-1)

जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त। विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त। स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुख्ये दत्त। (यजु. 10-4)

गणतन्त्रवाद के लिये आधुनिक, राजनीतिक, हस्तियों के जो अभिप्राय है वे निम्न प्रकार हैं—

It is a government of the people, by the people and for the people.
- Abraham Lincoln

Democracy is a form of government, in which the governing body is comparatively a large fraction of the entire nation.
- Dicey.

Democracy is a government, in which everyone has a share.

- Seeley.

उपर्युक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि प्रजातन्त्र प्रजाओं को प्रजाओं के द्वारा प्रजाओं के लिये होता है अर्थात् राजा ही प्रजा है, प्रजा ही राजा है। महात्मा गांधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी उसका आधार ‘राम राजा, राम प्रजा, राम ही साहूकार।’ परन्तु आज प्रजातन्त्र के नाम पर या जनतन्त्र के नाम पर तानशाही राजा से भी अधिक शोषण, उत्पीड़न चल रहा है। आज कुछ गुण्डातन्त्र लाठी के जोर या अर्थ के बल पर प्रजाओं से वोट जबरदस्ती लेकर नेता आदि बनकर प्रजाओं को उत्पीड़न करते हैं। कुछ नेता जातिवाद फैलाते हैं और कुछ परिवारवाद, कुछ सम्प्रदायवाद को फैला रहे हैं। इससे राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अशान्ति, कलह, युद्ध चलता है। अज्ञप्रजा कुछ धूर्त नेताओं के वाक्जाल में आकर मतदान दे देते हैं जिससे वह नेता शासक बनकर रक्षक न होकर भक्षक हो जाते हैं। इसलिये प्लेटो ने लोकतन्त्र शासन को मृर्ख शासन बताया था।

*There are nine foole in the world for one wise man.
Democracy, therefore, means the rule of fools.* - Carlyle.

बाइबिल में भी कहा है—

‘यदि नेत्रहीन व्यक्ति का नेतृत्व करने वाला भी नेत्रहीन ही हो तो दोनों कूप में गिर पड़ेंगे।’

प्राचीन काल में अधिकांशतः राजतन्त्र होते हुए भी कुछ प्रसिद्ध राजाओं के शासन इतने महान्, उदात्त, प्रजाहितकारी थे, जिससे उन्होंने के शासन आधुनिक जनतन्त्रवाद (Democracy), समाजवाद (Sociolism), साम्यवाद (Communism) आदि से भी अधिक सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय थे। प्राचीन साहित्य एवं इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजाराम, भरतचक्रवर्ती, क्रष्णभद्र, धर्मराज युधिष्ठिर, राजा हरिश्चन्द्र, रतिदेव, भरत (श्री रामके अनुज), विक्रमादित्य, अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य खारवेल आदि इतने उदारमना, धर्मप्राण, प्रजावत्सल राजा थे जिनका शासन आधुनिक साम्यवादादि से अधिक प्रजाहितकारी था, इसलिये तो उत्कृष्ट, सर्वोदय, सुखशान्तिपूर्ण राज्य को रामराज्य कहते हैं। रामराज्य माने श्री रामचन्द्र का शासन कालीन राज्य।

‘क्रष्णभद्रे भरत चक्रवर्ती भी इतने महान् थे जिससे सम्पूर्ण विशालतम् अखण्ड भरत (षट्खण्ड भारत) के राजा तथा प्रजा उन्होंने की छत्रछाया में शान्ति से निवास

करते थे। इतना ही नहीं जैसे श्रीराम के शासन के नाम पर ‘रामराज्य’ विद्युत हुआ उसी प्रकार भरत नाम पर भारतवर्ष का नामकरण हुआ।

आज भरत के भारतवर्ष में एवं रामचन्द्र के ‘रामराज्य’ में जो आधुनिक, स्वतन्त्र भारत सरकार तथा अन्यान्य देश की सरकार, प्रजातन्त्रादि के नाम पर सत्तालोलुपी भ्रष्टाचार, शोषण, आक्रमण, शीतयुद्ध, आतंकवाद, गृहयुद्ध, महायुद्ध का प्रचार-प्रसार कर रही है, वह केवल प्रजातन्त्र के नाम पर ही अमिट कलंक है परन्तु राजतन्त्र के नाम पर भी अक्षम्य दोष है।

वर्तमान में जो शासनतन्त्र में भ्रष्टाचार चल रहा है उसका मूल कारण शासक राजा (नेता, मन्त्री) आदि शासित प्रजाओं (नागरिकों) का अनैतिक, अधार्मिक, असदाचारी होना है। प्रजातन्त्र या राजतन्त्रादि का कोई महत्व नहीं है, महत्व है शासक एवं शासितों का धार्मिक, सदाचारी, प्रमाणिक, कर्तव्यनिष्ठ, देशप्रेम, त्याग भाव होना।

‘बारह वर्ष द्यादत्ति’

अदादद्वादशवर्षाणि दानं चासौ यथोप्सितम्।

तोकाय कृपया युक्तः परीक्षापरिवर्जितम्॥104॥

भरत दया से युक्त हो बिना किसी परीक्षा के बारह वर्ष तक लोगों के लिये मनचाहा दान देते रहे। (हरिवंश पु. स. 11 पु. 205)

ब्रात्मण वर्ण की आद्य स्थापना

जिनशासनवात्स्ल्यभवितभार वशीकृतः।

परिक्ष्य श्रावकान् पश्चाद् यवत्रीह्यः दुरादिभिः॥105॥

काकिण्या लक्षणं कृत्वा सुरत्नत्रयसूत्रकम्।

सुम्पूज्य स ददौ तेभ्यो भवितदानं कृते युगे॥106॥

तदनन्तर जिन शासन सम्बन्धी वात्स्ल्य और भवित के भार से वशीभूत होकर उन्होंने जौ तथा धान्य आदि के अड्डों से श्रावकों की परीक्षा की, कंकिणी, रत्न से निर्मित रत्नत्रयसूत्र यज्ञोपवित को उनका चिह्न बनाया और आदर सत्कार कर कृत युग में उन्हें भवित पूर्वक दान दिया।

ततस्ते ब्राह्मणः प्रोक्ता ब्रतिनो भरतादृताः।

वर्णत्रयेणपूर्वेण जाता वर्णचतुष्टयी॥107॥

आगे चलकर भरत के द्वारा आदर को प्राप्त हुए वे ब्रती ब्राह्मण कहे जाने लगे। इस तरह पहले कहे हुये तीन वर्णों के साथ मिलकर अब ब्राह्मण, धनिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हो गये।

आदर्श धर्मपालक चक्रवर्ती भरत

दान देना, पूजा करना, शील पालन करना और पर्व के दिन उपवास करना यह गृहस्थों का चार प्रकार का धर्म माना है।

मुनिओं को आहारदाता : भरत

ददौ दानमसौ सद्भ्यो मुनिभ्यो विहितादरम्।
समेतो नवभिः पुण्यैः गुणैः सप्तभिरच्चितः॥105॥

(आ. पु. भा. 2 पृ. 325)

नव प्रकार के पुण्य और सात गुणों से सहित भरत उत्तम मुनियों के लिये बड़े आदर के साथ दान देते थे।

दानीः भरत

सोऽदाद् विशुद्धमाहारं यथा योगं च भेषजम्।
प्राणिभ्योऽभयदानं च दानरुः यै तावती गतिः॥106॥

वे विशुद्ध आहार, योग्यतानुसार औषधि और समस्त प्राणियों के लिये अभय दान देते थे सो ठीक ही है क्योंकि दान की यही तीन गति हैं।

संसार में पूज्य पुरुषों की पूजा करने से पूज्यपना स्वयं प्राप्त होता है, ऐसा विचार करते हुए महाराज भरत, जिनेन्द्र देव में अपनी भक्ति बढ़ाते हुए उनकी पूजा करने में बहुत ही संतोष धारण करते थे।

धर्मायतन निर्माता : भरत

चैत्यं चैत्यालयादीनां निर्मापणपुरस्सरम्।
स चक्र परमामिज्यां कल्पवृक्षपृथुप्रथाम्॥108॥

उन्होंने अनेक जिन विम्ब और जिन मन्दिरों की रचना कराकर कल्पवृक्ष नाम का बहुत बड़ा यज्ञ (पूजन) किया था।

शील पालक : भरत

शीलानुपालने यत्नो मनस्यस्य विभोरभूत्।
शीलं हि रक्षितं यत्नादात्मानमनुरक्षति।॥109॥

उनके मन में शील की रक्षा करने का प्रयत्न सदा विद्यमान रहता था जो ठीक ही है क्योंकि प्रयत्न पूर्वक रक्षा किया हुआ शील आत्मा की रक्षा करता है।

ब्रतानुपालनं शीलवृत्तान्युक्तान्यगृहिणाम्।

स्थूल हिंसाविरत्यादिलक्षणानि च लक्षणैः॥110॥

ब्रतों का पालन करना शील कहलाता है और स्थूल हिंसा का त्याग करना (अहिंसाणुव्रत) आदि जो गृहस्थों के ब्रत हैं वे लक्षणों के साथ पहले कहे जा चुके हैं।

उन ब्रतों को भावनाओं सहित यथायोग्य रीति से पालन करते हुए प्रजापालक महाराज भरत गृहस्थों में मुख्य गिने जाते थे।

धर्मानुशासित अर्थ एवं काम “भरत की आदर्श दिन चर्या”

धार्मिकस्यास्य कमार्थचिन्ताऽभूदानुषङ्किकी।

तात्पर्यत्वभवद्वर्मेकृत्स्नश्रेयोऽनुबन्धिनी॥119॥

वे बहुत ही धर्मात्मा थे। उनके काम और अर्थ की चिन्ता गौण रहती थी तथा उनका मुख्य तात्पर्य सब प्रकार का कल्याण करने वाले धर्म में ही रहता था।

प्रातरूप्त्याय धर्मस्यैः कृतधर्मानुचिन्तनः।

ततोऽर्थकामसंपत्तिसहामात्यैर्यरूपयत्॥120॥

वे सबेरे उठकर पहले धर्मात्मा पुरुषों के साथ धर्म का चिन्तन करते थे और फिर मंत्रियों के साथ अर्थ तथा कामरूप सम्पदाओं का विचार करते थे।

तल्पादुत्थितमात्रोऽसौ संपूज्य गुरुदैवतम्।

कृतमङ्गलनेपथो धर्मासनमधिष्ठितः॥121॥

वे शव्या से उठते ही देव और गुरुओं की पूजा करते थे और फिर मांगलिक वेष धारण कर धर्मासन पर आरुङ्ग होते थे।

आदर्श शासक : भरत

प्रजानां सदसद्वृत्तचिन्तनैः क्षणमासितः।

तत आयुक्तान् स्वेषु नियोगेष्वन्वशाद् विभुः॥122॥

वहाँ प्रजा के सदाचार और असदाचार का विचार करते हुए वे क्षण-भर ठहरते थे, तदनन्तर अधिकारियों को अपने-अपने काम परनियुक्त करते थे अर्थात् अपना-अपना कार्य करने की आज्ञा देते थे।

इसके बाद सभा भवन के बीच में जाकर राज सिंहांसन पर विराजमान होते

तथा सेवा के लिए अवसर चाहते वाले राजाओं का सम्मान करते थे।

वे कितने ही राजाओं को दर्शन से, कितनों ही की मुस्कान से, कितनों को वार्तालाप से, कितनों को सम्मान से और कितनों ही को दान आदि से सन्तुष्ट करते थे।

वे वहाँ पर भेंट लेकर आये हुए बड़े-बड़े पुरुषों तथा दूतों को सम्मानित कर और उनका कार्य पूरा कर उन्हें विदा करते थे।

कलाविदों का सम्मान

कलाविदश्च नृत्यादिदर्शनैः समुपस्थितान्।

पारितोषिकदानेन महता समतर्पयत्॥126॥

नृत्य आदि दिखाने के लिये आये हुए कलाओं को जानने वाले पुरुषों को बड़े-बड़े पारितोषिक देकर सन्तुष्ट करते थे।

तदन्तर सभा विसर्जन करते और राजसिंहासन से उठकर कोमल क्रीड़ाओं के साथ-साथ अपनी इच्छानुसार बिहार करते थे।

तपश्चात् दोपहर का समय निकट आनेपर स्नान आदि करके भोजन करते और फिर अलंकार धारण करते थे।

उस समय परिवार की स्त्रियाँ स्वयं आकर चमर ढोलना, पान देना और पैर दबाना आदि के द्वारा सेवा करती थी।

ततो भुक्तोत्तरास्थाने स्थितः कृतिपर्यनृपः।

समं विदध्यमण्डल्या विद्यागोष्ठिरभावयत्॥130॥

तदन्तर भोजन के बाद बैठने योग्य भवन में कुछ राजाओं के साथ बैठकर चतुर लोगों की मण्डली के साथ-साथ विद्या की चर्चा करते थे।

तासामालापसंल्लापपरिहासकथादिभिः।

सुखासिकामसौ भेजे भोगद्वैश्च मुहूर्तकम्॥132॥

उनके संभाषण, परस्पर की बातचीत और हास्यपूर्ण कथा आदि भोगों के साधनों से वे वहाँ कुछ देर तक सुख से बैठते थे।

इसके बाद जब तिन का चौथाई भाग शेष रह जाता था तब मणियों से जड़ी हुई जर्मान पर टहलते हुए वे चारों ओर राजमहल की उत्तम शोभा देखते थे।

रात में भी चक्रवर्ती जो कार्य थे उन्हें करते हुए वे सुख से रात्रि व्यतीत करते थे।

कदाचिदुचितां वेलां नियोग इति के वत्तम्।

मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः कृतकार्योऽपि चक्रभृत्॥136॥

यद्यपि वे चक्रवर्ती कृतकृत्य हो चुके थे अर्थात् विजय आदि का समस्त कार्य पूर्ण कर चुके थे तथापि केवल नियोग समझकर कभी-कभी उचित समय पर मन्त्रियों के साथ सलाह करते थे।

राष्ट्र के हित चिन्तक : भरत

तन्नावायगता चिन्ता नास्यासीद् विजितक्षितेः।

तन्न चिन्तैव नन्यस्य स्वतन्त्रस्येह भारते॥137॥

जिन्होंने समस्त पृथ्वी जीत ली है और जो इस भरत क्षेत्र में स्वतन्त्र है ऐसे उन भरत को अपने तथा परराष्ट्रकी कुछ भी चिन्ता नहीं थी, यदि चिन्ता थी तो केवल तन्न अर्थात् स्वराष्ट्र की ही चिन्ता थी।

(आदि पु. एकत्वारिंशत् पर्व पृ. 327)

“सर्वविद्या भरित भरत”

उन्होंने अपना अज्ञान नष्ट करने के लिए ही छह गुणों का अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रु राहित पृथिवी का पालन करते थे तब उन्हें सन्धि-विग्रह आदि की चर्चा से क्या प्रयोजन था।

राजविद्याश्चतस्रोऽभूः कदाचिच्च कृतक्षणः।

व्याचख्यौ राजपुत्रेभ्यः ख्यातये स विचक्षणः॥139॥

अतिशय विद्वान् महाराज भरत केवल प्रसिद्धि के लिए ही कभी-कभी बड़े उत्साह के साथ राजपृतों के लिए आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड-नीति इन चार राजविद्याओं का व्याख्यान करते थे।

वे कभी-कभी निधियों और रलों का भी निरीक्षण करते थे क्योंकि निधियों और रलों में से कुछ तो इनके भण्डार में थे और कुछ उनकी सेना में थे।

धर्मचर्चारत : भरत

कदाचिद्धर्मशास्त्रेषु याः स्युर्विप्रतिपत्तयः।

निराचकारताः कृत्स्नाः ख्यापयन् विश्वविन्मतम्॥141॥

कभी-कभी वे सर्वज्ञदेव का मत प्रकट करते हुए धर्मशास्त्र में जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे।

सहस्रसिक्यः कवलो द्वात्रिंशत् तेऽपि चक्रिणः।
एकश्चासौ शुभद्रायाः एकोऽन्येषां तु तृप्तये॥125॥

एक हजार चावलों का एक कवल होता है, ऐसे बत्तीस कवल प्रमाण चक्रवर्ती का आहार था। सुभद्रा का आहार एक कवल था और एक अन्य समस्त लोगों की तृप्ति के लिए पर्याप्त था।

चक्रवर्ती के 361 (तीन सो इक्सठ) रसोइया होते हैं और एक रसोइया 360 दिन तक ढाई द्विप में रहने वाली दिव्य औषधि को अन्न पानादि में मिलाकर ग्रास बनाता है। फिर 32 ग्रासों में से केवल एक ग्रास निकालकर 48 कोस प्रमाण में रहने वाली समस्त सेना को खाने के लिए देता है और उसे खाकर पानी पीते ही जब सभी को अजीर्ण हो जाता है तब वह ग्रास चक्रवर्ती के खाने योग्य परिपक्व होता है। ऐसे 32 ग्रासों को चक्रवर्ती प्रतिदिन पचाने वाला होता है।

उन ग्रासों में से स्त्री रल, गजरल, अश्वरल केवल एक-एक ग्रास को पचा सकते हैं। अब चक्रवर्ती की इन्द्रियों की शक्ति को बतलाते हैं।

परिवार परिकरादि

सम्पूर्ण कटक सैन्य को धर्म कर्मनुष्ठान से चलाने वाला पुरोहित रल होता है। चक्रवर्ती के साड़े तीन करोड़ बंधुवर्ग और संख्यात सहस्र पुत्र-पुत्रियाँ, 361 शारीरिक वैद्य थे।

चित्रकार सहस्राणि नवतिर्नवभिः सह।

द्वात्रिंशत् ते सहस्राणि नृपा मुकुट बद्धकाः॥126॥

देशाश्चापि हि तावन्तो दयन्त्यपि सुरस्त्रियः।

अन्तः पुरसहस्राणि तस्य षण्वतिः प्रभोः॥127॥

चक्रवर्ती के 99 हजार चित्रकार थे, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे, उतने ही देश थे और देवाङ्गनाओं को भी जीतने वाली छियानवें हजार रानियाँ (स्त्रियाँ थीं।

भरत के पशुधन

हलकोटि तथा गावस्त्रिकोट्यः कामधेनवः।

कोट्यश्चाष्टादशाश्वानां निश्चेया वातरंहसम्॥128॥

लक्षाश्चतुरशीतिस्तु मंदसन्यरगामिनाम्।

हस्तिनां सुरथानां च प्रत्येक चक्रवर्तिनः ॥129॥

एक करोड़ हल थे, तीन करोड़ कामधेनु गायें थीं। वायु के समान वेगशाली अठारह करोड़ घोड़े थे, मत्त एवं धीरे-धीरे गमन करने वाले चौरासी लाख हाथी और उतने ही उत्तम रथ थे।

अर्ककीर्ति और विवर्धन आदि को लेकर पाँच सौ चरम शरीरी तथा आज्ञाकरी पुत्र थे।

दशाङ्क भोग

भोजनं भोजनं शश्या चमूवहिन मासनम्।

निधिरत्नं पुरं नाट्यं भोगस्तस्य दशाङ्ककाः॥131॥

(1) भाजन (2) भोजन (3) शश्या (4) सेना (5) वाहन (6) आसन (7) निधि (8) रल (9) नगर और (10) नाट्य ये दश प्रकार के भोज्य थे।

सेवक देव

सेवा में निपुण, प्रमाद रहित एवं परम हितकारी सोलह हजार गणबद्ध देव सदा उनकी सेवा करते थे।

भरत के वैशिष्ट्य

यद्यपि राजाधिराज चक्रवर्ती इस प्रकार के विभव से सहित थे तथापि उनकी बुद्धि शास्त्रों के अर्थ विचार में निरत रहती थी और वे दुर्गति रूपी ग्रह का सदा निग्रह करते रहते थे।

भुजाओं से शत्रुओं का मंथन करने वाले चक्रवर्ती ने यद्यपि बत्तीस हजार राजाओं को बिखेरकर उनका अभिमान नष्ट कर दिया था तथापि स्वयं अभिमान से रहित थे।

जिनका वक्षःस्थल श्रीवृक्ष के चिन्ह से सहित था, जो चौंसठ लक्षणों से युक्त थे, जो इन्द्र की लक्ष्मी को तिरस्कृत करने वाले थे और जो नित्य एवं अखिण्डत पौरुष को धारण करने वाले थे: ऐसे स्वयंभू पुत्र सोलहवें कुलकर भरत महाराज जब भरत क्षेत्र सम्बन्धी छह खण्डों की भूमि का नीति पूर्वक शासन करते थे तब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में यथेष्ट अनुराग रखने वाले लोक निर्विघ्न रूप से निरन्तर आनन्द का उपभोग करते थे।

जो अपनी लक्ष्मी के द्वारा बिना वचन बोले ही अन्य मनुष्यों के लिए पूर्व जन्म में किए धर्म का फल दिखाला रहे थे, ऐसे भरत महाराज किनके लिए धर्म उपदेशक नहीं थे।

इस प्रकार पूर्व जन्म में आचरण किए हुए धर्म के महात्म्य से जो स्वयं अतिशय महान थे, पौरुष से युक्त थे, सुख के भण्डार थे, लोगों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

थे। सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से रंजित मनोवृत्ति से युक्त थे और लक्ष्मीयुक्त इन्द्र के समान थे ऐसे चक्रवर्ती भरत सिंह की चेष्टा के समान सुदृढ़ मन को जिनमार्ग में लीन रखने लगे।

धर्मश्रोता: भरत

**चकार वन्दनां गत्वा चक्री भर्तुनारतम्।
न त्रिषष्ठि पुराणानि सुश्राव च सविस्तरम्॥१॥**

(हरिवंश पु. सर्ग. 12 पृ. न. 209)

चक्रवर्ती भरत समवशरण में जाकर निरन्तर भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार करते थे और त्रेसठ शलाका पुरुषों के पुराण विस्तार के साथ सुनते थे।

वन्दनमाला का प्रारम्भ

**चतुर्विंशति तीर्थेशवन्दनार्थं शिरः सृशम्।
अचीकरदसौ वेशमद्वारे वन्दन मालिकम्॥२॥**

उन्होंने चौबीस तीर्थकरों की वन्दना के लिए अपने महलों के द्वार पर सिर का स्पर्श करने वाली वन्दनमाला बन्धवाई थीं, जिनका निकलते समय सिर से स्पर्श होता था। धंटियों की आवाज सुनकर भरत को चौबीस तीर्थकरों का स्मरण हो आता था जिससे वह उन्हें परोक्ष रूप से नमस्कार करता था।

भारत के 923 पुत्रों की दीक्षा

किसी समय चक्रवर्ती के साथ विवर्धन कुमार आदि नौ सौ तेर्इस राजकुमार भगवान के समवशरण में प्रविष्ट हुए। उन्होंने पहले कभी तीर्थकर के दर्शन नहीं किए थे। अनादि मिथ्या द्विष्टि थे और अनादि काल में ही स्थावरकार्यों में जन्म-मरण कर क्लेश को प्राप्त हुए थे। भगवान् की लक्ष्मी देखकर वे सब परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और अन्तर्मूर्हूर्त में ही उन्होंने संयम प्राप्त कर लिया।

चक्रवर्ती ने उन सब कुमारों की तथा जिनेन्द्र देव के शासन की प्रशंसा की और अन्त में वे श्री जिनेन्द्र भगवान् तथा मुनि संघ को नमस्कार कर प्रसन्न होते अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए।

इस युग का प्रथम स्वयंवर

**शनैर्याति ततः काले साप्राञ्ये लोकपालिनः।
चतुर्वर्गोवितज्ञानाजलक्षालितचेतसः॥७॥**

प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता

ततः स्वयंवरारम्भे प्राप्ते भूचरखेचरे।
वृते मेघेश्वरे धीरेसुसुलोचनया तथा॥८॥
युद्धे बद्धेऽर्ककीर्तौ च मुक्ते च कृतपूजने।
अकम्पन सुताभर्ता पूजितश्चकवर्तिना॥९॥

तदन्तर धीरे-धीरे समय व्यतीत होने पर लोगों की रक्षा करने वाले एवं चतुर्वर्ग के वास्तविक ज्ञानरूपी जल से प्रक्षालित, चित्त के धारक महाराज भरत के साप्राञ्य में सर्वप्रथम स्वयम्वर प्रथा का प्रारम्भ हुआ। स्वयम्वर मण्डप में अनेक भूमिगोचरी तथा विद्याधर इकट्ठे हुए। बनारस के राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना ने हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र मेघेश्वर जयकुमार को वरा। अर्ककीर्ति और जयकुमार का युद्ध हुआ। जिसमें जयकुमार ने अर्ककीर्ति को बांध दिया। अकम्पन की प्रेरणा से उसे छोड़ दिया एवं उनका सत्कार किया और चक्रवर्ती ने सुलोचना के प्रति जयकुमार का सत्कार किया।

अध्याय-9

भरत द्वारा सर्वप्रथम कैलाश पर्वत पर जिन मंदिर निर्माण

भरतेश्वरनष्टापद गिरोयोल् लेसागि सभेद चैत्याबलियां।
तरत्ताक्षिगे वर्णिण्यसुतुं पुरुपरमेश्वरन् चरितेयं केलिसुतुं॥

— धर्मामृत 10 आश्वास 26

श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर बहतर चैत्यालय जैसे कैलाश पर्वत पर सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार उस धनश्री के मन में सम्पूर्ण चैत्यालय प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

जिने यज्ञं करिष्याम इत्यधिवसिताः किल।
जित्वा दिशो जिनानिष्ट्वा निर्वृत्ता भरतादयः॥

— प्रतिष्ठासारोद्धार-7

कैलाश पर्वत से आदीश्वर प्रभ-ऋषभदेव मोक्ष गये थे। वह एक तीर्थस्थल 177

बन गया था। भरत ने वहाँ अनेक स्वर्णमयी जिनगृहों का निर्माण करवाया। उनमें रत्नमयी प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाया।

उपरोक्त उन्धुरणों से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव के साधन स्थल, विहार स्थल एवं गमन स्थल पवित्र कैलाश पर्वत के ऊपर उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत के प्रथम एवं प्रधान चक्रवर्ती भरत ने बहुमूल्य रत्न निर्मित जिन चैत्य एवं चैत्यालय की स्थापना की थी। इससे सिद्ध होता है कि भरत चक्रवर्ती ने जिस प्रकार राज्य विस्तार किया था उसी प्रकार धर्म-विस्तार एवं प्रचार के लिए धर्मायतन का निर्माण करवाया था।

इससे सिद्ध होता है कि इस भारतवर्ष में सर्वप्रथम मन्दिर निर्माण एवं मूर्ति की स्थापना भरत चक्रवर्ती ने की थी। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थ अवस्था में जब वे चक्रवर्ती थे तब उन्होंने स्वजीवित काल में मन्दिर एवं मूर्ति निर्माण करवाया था। भारत के प्रथम चक्रवर्ती भरत एवं भारत के प्रथम धर्मचक्री ऋषभदेव समकालीन थे। आदिनाथ भगवान् का काल तृतीय भोग भूमि का अन्तिम चरण एवं कर्मभूमि (चतुर्थकाल) का प्रथम चरण है जो कि प्राग् वैदिक तथा प्राग् ऐतिहासिक काल है। प्रायः वह काल आज से असंख्यात् करोड़ अरब वर्ष पूर्व है। इससे सिद्ध होता है कि मन्दिर निर्माण, मन्दिर स्थापना एवं मूर्तिपूजा सर्वप्रथम जैनधर्म में प्रारम्भ हुई। अभी भी जो-जो प्राचीनतम् मूर्तियाँ हैं उनमें अधिकांश मूर्तियाँ जैन निर्ग्रन्थ दिगम्बर भगवान् की हैं। हड्डपा मोहनजोदड़ो के उत्खनन से उपलब्ध अनेक मूर्तियाँ जैन दिगम्बर तीर्थकर की हैं। अभी भी पृथ्वी में विशालकाय मनमोहक दिगम्बर मूर्ति दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के गोमटेश्वर की मूर्ति है। इस मूर्ति को पृथ्वी का आठवां आश्चर्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस मूर्ति की ऊँचाई ५ ४ फीट है। मध्यप्रदेश स्थित बड़वानी बावनगजा आदीश्वर की मूर्ति की ऊँचाई ४ ४ फीट है। एक अंग्रेज विद्वान् बताते थे कि भारत के प्रत्येक ग्यारह मील में दिगम्बर जैन मूर्ति उपलब्ध होती है। अतः मन्दिर निर्माण मूर्तिस्थापना, मूर्ति- पूजा, जैन धर्म का अवदान है। अभी भी काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक प्रत्येक क्षेत्र में अति मनोहर, कलापूर्ण, प्राचीन जैन मन्दिर एवं मूर्तियाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

पृथ्वीकान्त बने मुक्तिकान्त

आयु के अन्त समय में वे वृषभसेन आदि गणधरों के साथ कैलास पर्वत पर

आमृढ़ हो गये और शेष कर्मों का क्षयकर वहाँ से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, देवों ने उनकी स्तुति बन्दना की।

राजाओं की वंशावली

राजा अर्ककीर्ति के स्मितयश नामक पुत्र हुआ। अर्ककीर्ति उसे लक्ष्मी दे तप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुआ।

स्मितयश के बल, बल के सुबल, सुबल के महाबल, महाबल के अतिबल, अतिबल के अमृतबल, अमृतबल के सुभद्र, सुभद्र के सागर, सागर के भद्र, भद्र के रवितेज, रवितेज के शशी, शशी के प्रभूतेज, प्रभूतेज के तेजस्वी, तेजस्वी के तपन्, तपन् के प्रतापवान्, प्रतापवान् के अतिवीर्य, अतिवीर्य के सुवीर्य, सुवीर्य के उदित पराक्रम, उदितपराक्रम के महेन्द्रविक्रम, महेन्द्रविक्रम के सूर्य, सूर्य के इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्न के महेन्द्रजीत, महेन्द्रजीत के प्रभु, प्रभु के विभु, विभु के अविघ्वंश, अविघ्वंश के वीतभी, वीतभी के वृषभध्वज, वृषभध्वज के गरुडाङ्क और गरुडाङ्क के आदि अनेक राजा क्रम से सूर्यवंश में उत्पन्न हुए। ये सब राजा विशाल यश के धारक थे और पुत्रों के लिए राज्यभार सौंपकर तपकर मोक्ष को प्राप्त हुए।

भरत आदि को लेकर चौदह लाख इक्ष्वाकुवंशीय राजा लगातार मोक्ष गये। उसके बाद एक राजा सर्वार्थसिद्धि से अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुआ, फिर अस्सी राजा मोक्ष गए परन्तु उनके बीच में एक-एक राजा इन्द्र-पद को प्राप्त होता रहा।

सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ कितने ही धीर-वीर राजा अन्त में राज्य का भार छोड़कर और तप का भार धारण कर स्वर्ग गये तथा कितने ही मोक्ष को प्राप्त हुए।

भगवान् वृषभदेव के जो बाहुबलि पुत्र थे उनसे सोमयश नाम का पुत्र हुआ। वही सोमयश सोमवंश (चन्द्रवंश) का कर्ता हुआ। सोमयश के महाबल, महाबल के सुबल और सुबल के भुजबली पुत्र हुआ। इन्हें लेकर सोमवंश में उत्पन्न हुए अनेक राजा मोक्ष को प्राप्त हुए।

पञ्चाशत्कोटिलक्षाश्च सागाराणं प्रमाणतः।

तीर्थे वृषभनाथस्य तदा वहति सन्तते॥१॥

इक्ष्वाक् वृषभनाथस्य तदा वहति सन्तते॥१॥

उग्राद्या कौरवाद्याश्च मोक्षं स्वर्गं च भेजिरे॥१॥

इस प्रकार भगवान् वृषभदेव का तीर्थ पृथ्वी पर पचास लाख करोड़ सागर तक अनवरत चलता रहा। इस तीर्थकाल में अपनी दो शाखाओं सूर्यवंश और चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशीय तथा कुरुवंशीय आदि अनेक राजा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए।

विद्याधर राजाओं की वंशावली

विद्याधरों के स्वामी राजा नाभि के रलमाली, रलमाली के रलवज्र, रलवज्र के रलरथ, रलरथ के रलचिह्न, रलचिह्न के चन्द्ररथ, चन्द्ररथ के वज्रजंघ, वज्रजंघ के वज्रसेन, वज्रसेन के वज्रदंष्ट्र, वज्रदंष्ट्र के वज्रध्वज, वज्रध्वज के वज्रायुद्ध, वज्रायुद्ध के वज्र, वज्र के सुवज्र, सुवज्र के वज्रभृत, वज्रभृत के वज्राभ, वज्राभ के वज्रबाहु, वज्रबाहु के वज्राङ्क, वज्राङ्क के वज्रसुन्दर, वज्रसुन्दर के वज्रास्य, वज्रास्य के वज्रप्राणि, वज्रप्राणि के वज्रभानु, वज्रभानु के वज्रवान्, वज्रवान् के विद्युन्मुख, विद्युन्मुख के सुवक्त्र, सुवक्त्र के विद्युदंष्ट्र, विद्युदंष्ट्र के विद्युत्वान्, विद्युत्वान् के विद्युदाभ, विद्युदाभ के विद्युद्देव और विद्युद्देव के विद्युत पुत्र हुआ। इन्हें लेकर जो विद्याधर राजा हुए वे भी भगवान् आदिनाथ के तीर्थ में पुत्रों के लिये राज्य-वैभव सौंप तपश्चरण कर यथायोग्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए।

वंशोत्पत्ति-

इश्वाकुः प्रथमः प्रधानभुदगाददिव्यवंशस्ततस्तस्मादेव च,
सोमवंश इति यतस्त्वन्ये कुरुग्रादयः।
पश्चाद् श्रीवृषभाद्भूद्विषिणः श्रीवंश उच्चैस्तरा-
मित्यं ते नृपरवेचरान्वययुता वंशास्त्योक्ता मया॥३३॥

सर्वप्रथम इक्ष्वाकुवंश उत्पन्न हुआ फिर इक्ष्वाकुवंश से सूर्यवंश और चन्द्रवंश उत्पन्न हुए। उसी समय कुरुवंश तथा उग्रवंश आदि अन्य अनेक वंश प्रचलित हुए। पहले भोगभूमि में ऋषि नहीं थे परन्तु आगे चलकर भगवान् वृषभदेव से दीक्षा लेकर अनेक ऋषि उत्पन्न हुए और उनका उत्कृष्ट श्रीवंश प्रचलित हुआ।



अध्याय-10

विभिन्न जैन एवं वैदिक शास्त्रों में वर्णित भरत

तन्नामा भारतं वर्षमितीहासीज्जनास्पदम्।

हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्र भृतामिदम्॥

(पुरुदेवचम्पू- 6/32)

उसके नाम से (भरत के नाम से) यह देश भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ। ऐसा इतिहास है। हिमवान् कुलाचल से लेकर लवण समुद्र तक का यह क्षेत्र चक्रवर्तियों का क्षेत्र कहलाता है।

‘इहं सुरासुरेन्द्र विंदवंदिय चरणारविंदो उसभो नाम पढमो इत्या जगपिया महो आसी। तस्य पुत्तसयं। दुवे पहाणा भरहो बाहुबलीय। उसमसिरी पुत्तसयरस पुरसयं च दाऊण पव्वइयो। तत्थ भरहो भरहवास चूडामणि, तस्सेव नामेण इहं भारहतवासं ति पव्वुच्चति।’ (वसुदेवहिणी, प्र.ख. 186 पृ.)

यहाँ जगत्पिता ऋषभदेव प्रथम राजा हुए। सुर और असुर दोनों ही के इन्द्र उनके चरण कमलों की बन्दना करते थे। उनके (ऋषभदेव) के सौ पुत्र थे। उनमें दो प्रसिद्ध थे—भरत व बाहुबली। ऋषभदेव शतपुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर प्रवर्जित हो गये। भारतवर्ष का चूडामणि (शरोमुकुट) भरत हुआ। उसी के नाम से इस देश को भारतवर्ष ऐसा कहते हैं।

श्री वाग्देव्ये कुर्यति वाग्देवी द्वेष्टि संततं लक्ष्यै।

भरतमनुगम्य साम्प्रतनयोरात्यन्तिकं प्रेम॥

(वि. हेम. 1/2//690)

भरत के चारित्र ने लोगों के हृदयों में अलौकिक भावनाओं को जन्म दिया था। उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि भरत के चरित्र को सुनने या सुनाने मात्र से कामनाद्वयं स्वतः पूर्ण हो जाती हैं। वे भरत को साधारण जन नहीं मानते थे, अपितु अतिमानव तदनुरूप शक्ति सम्पन्न मानते थे। जन-जन का विश्वास किसी सुदृढ़ आधार पर टिका था। भागवत में एक स्थान पर लिखा है— हे राजन्! भगवद् भक्ति से युक्त, निर्मल गुण, कर्मशील, राजर्षि भरत का चरित्र कल्याणप्रद आयु का संवर्धक, धनाभिवर्द्धक, यशप्रदायी तथा स्वर्ग-अपवर्ग का कारण भूत

है। इसी ग्रन्थ में एक-दूसरे स्थान पर कथन है-

आर्षभस्येह राजर्णेमनसापि महात्मनः।
नानुवर्त्तमार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः॥
यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृदाज्यंहृदिस्पृशः।
अहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकतालसः॥

(भागवत 5/14/42/43)

हे राजन ! राजर्षि भरत के विषय में पण्डित जन कहते हैं कि— जैसे गरुड़ की बराबरी कोई मक्षिका नहीं कर सकती, उसी प्रकार महात्मा भरत के मार्ग का अनुसरण कोई अन्य राजा मन से भी नहीं कर सकता अर्थात् उन्होंने जिस तरह शासन किया, कोई नहीं अन्य कर सकता। उन उत्तम-श्लोक भरत ने दुस्त्यज स्त्री, पुत्र, मित्र और राज्य की लालसाओं को मलवत् त्याग दिया।

पुरुपरमेश्वरपुत्रं भरतेश्वर चक्रवर्तिवदिर्दत-

द्धरणि निवासिगहुं व्यतंरामरर्।
बन्दु काणबुदवनतमकुट्ट॥

(कविचक्रवर्ती पम्प आ. पु. 307)

पुरु परमेश्वर श्री आदि जिनेश्वर के पुत्र चक्रवर्ती व्यन्तरदेव, अमेरेन्द्र तथा पृथ्वी तल के समस्त मुकुटबन्ध राजाओं से वंदित थे।

पुरुपरमेश्वरपुत्रं चरमांगं चक्रवर्ति यं दोडे पेणल्।
दोरे पेणरार् भरतनोले ने करगिदुदा गर्वपर्वतं मागधना॥

(पम्प—आदि पुराण, 318)

पुरु परमेश्वर श्री आदि जिनेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत चरम शरीरी थे, जिनके प्रताप के समक्ष भरत खण्ड के सभी राजा-महाराजाओं का गर्व नष्ट होता था।

पुरुपरमेश्वर हिरियकुमारनु। नरलोक कोब्बने राय।
मरिदुकण्णट्टरेक्षण के मुक्तिय कांब। भरत चक्रिय हेल्लवने॥

(भरतेश वैभव, प्र. भा. भोगविजय 20)

पुरु परमेश्वर भगवान् आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत नरलोक के एकमात्र चक्रवर्ती सम्प्राट् थे। क्षणमात्र में दृष्टि बन्द करने से ही उन्हें मोक्ष प्राप्त हो गया था। उसका क्या वर्णन करूँ।

भरतेश्वरनष्टापद गिरियोल् लेसागि सभेद चैत्यावलियं।

तरलाक्षिगे वण्णिसुतुं पुरुपरमेश्वरन् चकितेयं केलिसुतुं॥

(धर्मामृत 10 आश्वास 26)

श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर बहतर चैत्यालय जैसे—कैलाश पर्वत पर सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार उस धन श्री के मन में सम्पूर्ण चैत्यालय प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

भरतखण्ड के प्राणी जेते। प्रजा भरत राजा की ते ते।

भारत नरेश ऋषभ की शाखा। तातें लोग पितामह भाखा॥

(वनारसी विलास, 38)

अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरम्भ व्यपदिशन्ति॥३॥

इस वर्ष को, जिसका नाम पहले अजनाभ वर्ष था, राजा भरत के समय से ही ‘भारतवर्ष’ कहते हैं।

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः
प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपातवत् ॥४॥

महाराज भरत बहुवृथा थे। वे अपने—अपने कर्मों में लगी हुई प्रजा का अपने बाप—दादों के समान स्वधर्म में स्थित रहते हुए अत्यन्त वात्सल्य भाव से पालन करने लगे।

संन्यास व्रत ग्रहण

इस प्रकार एक करोड़ वर्ष निकल जाने पर उन्होंने राज्यभोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागत सम्पत्ति को यथायोग्य पुत्रों में बाँट दो फिर अपने सर्वसम्पत्ति सम्पन्न राजमहल से निकलकर वे पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) में चले गये।

उस पुलहाश्रम के उपवन में एकान्त स्थान में अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकार के पत्र, पुष्प, तुलसीदल, जल और कन्द—मूल फलादि उपहारों से भगवान् की आराधना करने लगे। इससे उनका अन्तःकरण समस्त विषयाभिलाषाओं से निवृत होकर शांत हो गया और उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ।

इस प्रकार जब वे नियमपूर्वक भगवान् की परिचर्चा करने लगे, तब उससे प्रेम का वेग बढ़ता गया, जिससे उनका हृदय द्रवीभूत होकर शांत हो गया, आनन्द के प्रबल वेग से शरीर में रोमाञ्च होने लगा तथा उल्कण्ठा के कारण नेत्रों में

प्रेम के आँसू उमड़ आये जिससे उनकी हृषि रुक गई। अन्त में जब अपने प्रियतम के अरुण चरणारविन्दों के ध्यान से भक्तियोग का आविर्भाव हुआ, तब परमानन्द से सराबोर हृदय रूप गम्भीर सरोवर में बुद्धि के डूब जाने से उन्हें उस नियमपूर्वक की जाने वाली भगवत्पूजा का भी स्मरण न रहा।

(श्रीमद् भगवते माहपुराणे पारमहंस्यां पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्याय नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हिन्दी वराह पुराण अध्याय 73 पृष्ठ संख्या 181)।

नामेरुर्मजेव्यां पुत्रमजनयनृष्टभ नामानंतस्य भरतो।
पुत्रञ्च तावदग्रजः तस्य भरतस्य पिता ऋषभः।
हे माद्रेदक्षिणं वर्षं महद् भारतं नाम शशाश॥

(वराह पुराण अध्याय 74 पृ. 49)

अर्थ— नाभि के मरुदेवी के गर्भ से ऋषभ नाम का पुत्र हुआ तथा ऋषभदेव के भरत हुए, वे भरत अपने सब भाइयों में बड़े थे। भरत के पिता ऋषभ ने भरत को हिमाद्रि के दक्षिण का प्रदेश दिया था और भरत के द्वारा वह प्रदेश पालित होने से उनका नाम भारत प्रसिद्ध है।

नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षेत्रस्य पूर्वजम्॥५०॥
ऋषभाद्वरतो जडो वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोभिर्विच्यापि भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः॥५१॥
हि माहं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नामा विदुवृधाः॥५२॥

(वायु महापुराण पर्व अ. 33 पृ. 51)

अर्थ— नाभि के मरुदेवी नाम की भार्या से महान् क्रान्तिकारी राजों में श्रेष्ठ और क्षत्रियों में सबसे पहला ऋषभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

उन ऋषभदेव से भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि अपने सौ भाइयों में सबसे बड़ा था।

ऋषभदेव ने भरत को राज्य देकर दीक्षा धारण की भरत ने हिम नामक दक्षिण प्रदेश को सम्हाला था इसलिये इस प्रदेश का नाम “भारत” प्रसिद्ध है।

अध्याय-11

भरत चक्रवर्ती के अति विशिष्ट वैज्ञानिक उपकरण

विशिष्ट पुण्य प्रभावसे भरत चक्रवर्ती को सहज रूप से अनेक भोग-उपभोग सामग्रियों को देने वाली अनेक निधियाँ प्राप्त हुई थी। उसके माध्यम से चक्रवर्ती दिग्विजय (षट्खण्ड विजय) प्रजा की रक्षा, भरण-पोषण, शत्रु दमन, युद्ध सामग्री, भोजन सामग्री, भूषण सामग्री, अलंकार सामग्री, वस्त्र, खाद्य सामग्री आदि प्राप्त करता है।

14 महारत्न, विशिष्ट शक्ति सम्पन्न 9 निधि, दैविक शक्ति सम्पन्न देवों के द्वारा प्रदत्त एवं दैविक शक्ति द्वारा सुरक्षित होते हैं।

14 रत्न- 1. चक्ररत्न, 2. छत्ररत्न, 3. खड्गरत्न, 4. दण्डरत्न, 5. कांकणीरत्न, 6. मणिरत्न, 7. चर्मरत्न ये अचेतन (अजीव) रत्न होते हैं।

1. सेनापतिरत्न 2. गृहपतिरत्न 3. गजरत्न 4. अश्वरत्न 5. पुरोहित रत्न 6. शिलावट रत्न 7. स्त्री रत्न ये सचेतन (जीव) रत्न होते हैं।

उपरोक्त प्रत्येक रत्न एक हजार देवों द्वारा सुरक्षित होते हैं।

9 निधियाँ- 1. काल, 2. महाकाल 3. पाण्डुक, 4. मानव, 5. नैसर्य, 6. सर्वरत्न, 7. शंख, 8. पद्म, 9. पिंगल। ये नव निधियाँ निधिपति देवों द्वारा सुरक्षित लोकोपकार के लिए होते हैं।

नव निधियों के आकार प्रकार

शक्टाकृतयः सर्वे चतुरक्षाष्ट चक्रकाः।

नव योजन विस्तीर्णा द्वादशायाम समिताः॥

ते चाष्टा योजना गाधा बहुवक्षार कुक्षयः

नित्यं यक्ष सहस्रेण प्रत्येक रक्षितेक्षिताः॥

ये संपूर्ण निधियाँ गाढ़ी के आकार वाली होती हैं, इनके नीचे आठ-आठ चक्र होते हैं। नवनिधियों की चौड़ाई 9 योजन (72 मील) होती है। इनकी लम्बाई 12 योजन (96 मील) होती है। ऊँचाई 8 योजन (64 मील) होती है। प्रत्येक निधि की सुरक्षा एक-एक हजार देवों द्वारा होती है।

1. काल निधि (प्रिंटिंग प्रेस)

ज्योति निर्मित शास्त्राणि हेतुवाद कला गुणाः।

शब्द शास्त्र पुराणदयाः सर्वे काल निधौमत्ताः॥

इस निधि से ज्योतिष, निर्मित्य, न्याय, तर्क, संगीत, कला, व्याकरण, शब्दकोष, पुराणशास्त्र आदि प्राप्त होता है। जैसे कि वर्तमान युग में प्रिंटिंग प्रेस, टाइपिंग मशीन, कम्प्यूटर आदि लेखनादि कार्य करते हैं, इस प्रकार प्राचीन काल में यह काल निधि करता था। काल निधि का ही रूपान्तर करण या उत्तरदायित्व टेप मशीनादि हैं।

इंदियार्था मनोज्ञा ये वीणा वंशानकादयः।

प्रान्त्रसूते यथा कालं निधिरेषु विशेषतः॥

इस निधि से वीणा, बांसुरी, नगाड़े आदि जो जो इंद्रियों के मनोज्ञ विषय हैं वे भी समयानुसार विशेष रीति से उत्पन्न होते रहते हैं।

2. महाकाल निधि (कारखाना)

पंचलोहादयो लोहा नाना भेदाः प्रवर्तिताः।

शब्द वर्णे विनिर्णया, महाकालनिधौपुनः॥

महाकाल निधिपञ्च लोहादि धातुएँ देता है। जो अक्षरों का रहस्य जानता है ऐसे महागणधरों के द्वारा कहा गया है।

असि मध्यादिषट् साधन द्रव्यं संपदः।

येन प्रसूयंते महाकालो निधिः स वै॥

इससे कृषि -- उपकरण, युद्ध-उपकरण, मसि (लेखन) उपकरण, वाणिज्य उपकरण, शिल्प उपकरण, सेवा-उपकरण आदि वस्तुएँ इस महाकाल निधि से प्राप्त होती हैं। जैसे कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में इस्पात (लोहा) कारखाना, एल्यूमीनीयम कारखाना, पैन-पैन्सिल, मशीनगन, बम आदि कारखाने जो मानव समाज के लिए सेवा कर रहे हैं वही सेवा महाकाल निधि पूर्वकाल में करती थी।

3. पाण्डुक निधि (खाद्य उत्पादक कारखाना)

धान्यानो सकला भेदाः शालि व्रीधि वाद्यः।

कटुतिक्तादिभिर्द्रव्यैः प्रणीताः पाण्डुके निधौ॥

यह निधि संपूर्ण प्रकार के धान्य, शालि, चावल, गेहूँ, जौ, आदि संपूर्ण धान्य और कटु, तिक्त, चरपरा, खारा, खट्टा, मधुर आदिज खाद्य सामग्री देती थी।

4. मानवक निधि

कवचैः खेटकैः खड्डैः शैरैः शक्तिं शासनैः।

चक्राधैरायुधैर्दिव्यैः पूर्वो मानवको निधिः॥

कवच (अंग सुरक्षा पोशाक) खेटक, खड्ड (तलवार), बाण, शक्ति, धनुष, चक्र आदि विभिन्न अस्त्र-शस्त्र इस निधि से प्राप्त होते हैं।

माणवान्नीति शास्त्राणां शस्त्राणां च समुद्रभवः।

नीतिशास्त्र और अनेक प्रकार के शस्त्र माणवक निधि से उत्पन्न होते हैं। वर्तमान युग में जैसे- युद्ध उपकरण कारखाना से युद्ध सामग्री प्राप्त होती है उसी प्रकार प्राचीनकाल में इस निधि से शस्त्र के साथ-साथ नीतिशास्त्र प्राप्त होते थे।

5. नैसर्य निधि-

शयानासन वस्तुनां विधिधानां महानिधिः।

सर्पो ग्रहोपयोग्यानां भोजनानां च भाजनं॥

शैव्या, आसन, गद्दी, तकिया, पलंग आदि गृह उपकरण तथा विभिन्न प्रकार की भोग्य सामग्रीको देने वाले अनेक प्रकारके भोजन (पात्र) इस निधि से प्राप्त होते हैं।

शया सनातयादीनां नैः सर्पात्मभवो निधेः।

नैसर्य विधि से शय्यासन, गृह (घर) आदि बनते रहते हैं वर्तमान फर्नीचर बढ़ई आदि से जो काम होता है, वही काम नैसर्य निधि से होता था।

6. सर्वरल

इन्द्रनील महानील वज्र वैदूर्यं पूर्वकैः।

सर्वरल निधिः पूर्ण सरतैः सुहमाशिखेः॥

इन्द्रनील, महानील, वज्र, वैदूर्य, पद्मराग, मरकत इत्यादि सर्व रल नामक निधि से प्राप्त होते हैं। प्राप्तरल अत्यन्त प्रकाशमान होते हैं। आधुनिक युग में जिसप्रकार कच्चा खनिज धातुओं की शुन्दि करके शुद्ध धातु प्राप्त करते हैं या रासायनिक प्रक्रिया से विभिन्न रासायनिक संयोग से अनेक धातुएँ प्राप्त करते हैं।

हैं, इसीप्रकार प्राचीनकाल में सर्वरत्न से विभिन्न रत्न प्राप्त होते थे।

7. शंखनिधि (वायु यंत्र कारखाना)

भेरी शंखान केर्वीणा ज्ञल्लरी मुरजादिभिः।

आतो द्यैश्चोधसंपूर्णेः पूर्णः शंख निधि महान्॥

भेरी, शंख, नगाड़े, वीणा, झाँझ, झालरी, मृदंग आदि अनेक प्रकार के वायु यन्त्र देता है, यह निधि वायु यन्त्र से पूर्ण रहती है।

8. पद्मनिधिः (वस्त्र कारखाना)

पट्टचीण महानेत्रदुकू लवरकं बतैः।

वस्त्रैर्विचित्रवर्णाद्धियैः पूर्ण पद्मनिधिः सदा॥ 121

पाटम्बर चिन्ह वस्त्र (अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र)

महानेत्र दुकूल श्रेष्ठ कंबलादिक नाना प्रकार के विभिन्न रंग-बिरंगे ये समस्त प्रकार के वस्त्र इस निधि से प्राप्त होते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में कपड़ा कारखाना, स्पीनिंग मिल आदि से जो कार्य साधन होता है, वही कार्य पद्मनिधि से पूर्णकाल में सम्पादन होता था।

9. पिंगल निधि—

कटकैः कटि सूत्राद्यैः स्त्रीपुँसाभरणैः शूभैः।

स पिंगलनिधिः पूर्णो गजवाजिविभूषणैः॥ 122

कटुक (कड़े) कटिमेखला (कटिसूत्र) केयूर, हार, अंगद मुकुच (किरीट) आदि अनेक प्रकार के सुवर्णरत्न निर्मित हाथी, घोड़ा, स्त्री-पुरुषों के योग्य आभूषण पिंगल निधि देती थी।

निधियों के स्वामी एवं संरक्षक

कामवृष्टि वशास्तेऽमी नवापि निधयः सदा।

निष्पादयंति निःशेषं चक्र वर्तिमनीषितं॥ 123

ये नवनिधि कामवृष्टि नाम के गृहपति के तत्वाधान में सुरक्षित रहती हैं। सर्वदा चक्रवर्ती की मनवांछित वस्तुओं का उत्पादन करता है।

चौदह रत्न

इन नौ निधियों के सिवाय चौदह रत्न थे। जिनमें सात सजीव, सात निर्जीव थे। ये सब रत्न पृथ्वी की रक्षा और ऐश्वर्य के उपभोग करने के साधन थे।

चक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, मणि, चर्म, कांकिणी ये सात रात निर्जीव रत्नथे। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री.तक्ष (शिलावट) पुरोहित ये सात रत्न सजीव रत्न थे।

पवणज्जय (अश्व) विजयागिरि (गज), भद्रमुख (गृहपति), कामवृष्टि (स्तपनि) अयोन्दुय (सेनापति) सुभद्रा (स्त्री) बुद्धि समुद्र (पुरोहित) ये प्रत्येक सजीव रत्नहोते हैं। अश्व (घोड़ा) हस्ति और स्त्रीरत्न विजयार्द्ध पर्वत पर जन्म लेते हैं— शेष चार सजीव रत्न अपने— 2 नगर में जन्म लेते हैं। छत्र, असि (तलवार), दण्ड, चक्ररत्न आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। कांकिणी, चिन्तामणि, चर्मरत्न कोषागार में उत्पन्न होते हैं।

सूर्यप्रभ, भद्रमुख, प्रबुद्धवेग, सुदर्शन, चिन्ताजननी (चिन्तामणि चूड़ामणि) ये सभी वज्र के होते हैं। उपरोक्त रत्न कभी— 2 यथायोग्य स्थान में उत्पन्न होते हैं।

1. चक्ररत्न—

चक्र रत्नमभूजिष्णोर्दिव्यक्चक्राक्रमण क्षमं।

नामा सुदर्शनं दीप्तं यद्दुर्दर्शमरातिभिः॥

म.म.पर्व 37/169

जो समस्त दिशाओं में आक्रमण कर सकता था, अत्यन्त दैदीप्यमान था और भयंकर शत्रुपक्ष विन्ध्यवंश होने के कारण शत्रुपक्ष पीड़ित होकर उसके संताप को सह नहीं सकते थे। इस प्रकार महासुदर्शन नामका चक्ररत्न था।

अप्रमेय प्रभाजतं मुक्ताजाल परिष्कृतम्।

स्वयं प्रभास्वरंदिव्यं वत्रतुण्डं महादभुतम्॥

नानारत्नं परीताङ्गं दिव्यमालानलेपनम्।

अग्नि प्रकारा संकाश धारा मण्डल दीधति॥

वैद्युर्यांरसहस्रेण युक्तं दर्शन दुःसहम्।

सदा यक्ष सहस्रेण कृतरक्षं प्रयन्ततः॥

महासंरम्भं संबद्ध कृतान्ताननसंनिभम्।

चिन्तानन्तर मेतस्य चक्रं संनिहितं करे॥

सुदर्शन चक्र अपरिमित तेज पुञ्ज का धारक था। मोतियों की झालर से सजाया

8. सेनापति रत्न

चमूपतिरयोध्याद्यो नृरत्नमभवत्प्रभोः।
समेरुरिजयाद्यस्य रोदसी व्यानशे यशः॥174

चक्रवर्ती का अयोध्य नामक सेनापति रहता है, जो मनुष्यों में रत्न है, त्रेष्ठ है, अपने युद्ध में योद्धाओं का अग्रज होता है। शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ती का यश दिग-दिगन्तरामें फैलाता है। जिस प्रकार वर्तमान में चीफ कमान्डर (मुख्य सेनानायक) रहता है उसी प्रकार प्राचीनकाल में सेनापति रत्न रहता था।

9. पुरोहित रत्न

बुद्धिसागर नामाऽस्य पुरोधाः पुरुधीर भूतत्।
धर्म्या क्रिया यदायत्ता प्रतीकारोऽपि दैविके॥ 175

पुर अर्थात् ग्राम, ग्राम के हितैषी को भी पुरोहित कहते हैं। बुद्धिसागर पुरोहित रत्न था। इसकी बुद्धि अत्यन्त निपुण रहती है। वे संपूर्ण धार्मिक क्रियायें करने के लिए अत्यन्त निपुण रहते हैं। वे अत्यन्त राजनीतिज्ञ होते हैं।

10. गृहपति रत्न

सुधीर्गृह पतिर्नाम्ना कामवृष्टिरभीदष्टदः।
व्ययोपव्यय चिन्तायां नियुक्तोयो निधीशिन॥176

कामवृष्टि नामका गृहपति था जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था। इच्छानुसार देनेवाला था, निधियों के स्वामी भरत ने जिसे घर का सब जमा खर्च करने के काम नियुक्त किया था।

11. शिलावट रत्न

रत्नं स्थपतरप्यस्य वास्तुविद्यापदात्तधीः।
नामा भद्रमुखोऽनेक प्रासाद घटने पटुः॥177

भद्रमुख नामका शिलावट रत्न था, जिसकी बुद्धि मकान बनाने की विद्या के सब विषयों को जानती थी और जो अनेक मकानों को बनाने में चतुर था।

12. हाथी रत्न

शैलोदग्रो महानस्य यागहस्ती क्षरन्मदजः।
भद्रोः गिरिचरः शुभ्रो नामा विजय पर्वतः॥178

विजय पर्वत नामका सफेद हाथी था जो कि पर्वत के समान ऊँचा था। बहुत बड़ा था, पृज्य था, जिसके गण्डस्थल से मट की धारा बहती थी, जो भद्र जाति का था, जिसकी गर्जना बहुत श्रेष्ठ थी।

13. अश्व रत्न (घोड़ा)

पवनस्य जयन्वेयं हयोऽस्य पवनंजयः।
विजर्याद्वगुहोत्संगं लया यो व्यंलघयत्॥179

चक्रवर्ती के पवनंजय नामका घोड़ा था। जो कि स्वभाव से ही मधुर, हृदय को मनोहर और किसी दूसरे रसायन के समान आनंद देने वाला था।

14. स्त्री रत्न

प्रागुक्तवर्णनं चास्यस्त्री रत्नं अठनामकं
स्वभाव मधुरं हृदयं रसायन मिवा परं॥180

सुभद्रा नामक स्त्री रत्न था। जो कि स्वभाव से ही मधुर, हृदय को मनोहर और किसी दूसरे रसायन के समान आनंद देने वाला था।

कांकिणी रत्न का आकार प्रकार

एगभेगस्ता णं रलो चाउरंत चक्कवट्टिस्स अट्ठसोवभिए कागिणिरयणे छत्तले
दुवालसंसिए अट्ठकणिणए अहिगरणिसंठिए पण्णते ॥4 4 ॥

प्रत्येक चातुरंग चक्रवर्ती महाराज का कांकिणी नामक रत्न आठ सौवर्णिक आठ सुवर्ण परिणाम में षट् तल बारह अंशों, आठ कोणों तथा अधिकरणी अर्थात् लौहार की ऐरन के आकार वाला वर्णन किया गया है। प्रत्येक चक्रवर्ती नरदेव के पास कांकिणी रत्न होता है। उस रत्न का भार आठ सौवर्णिक होता है। उसके छःतल बारह कोटियाँ और आठ कोण होते हैं।

एक सौवर्णिक का भार परिणाम इस प्रकार समझना चाहिए— 16 सरसों का एक उड्ड का दानों के बराबर 12ति, पाँच गुमजों का एक कर्म भाषण और आठ कर्म भासकों के वजन का एक सौवर्णिक होता है। आठ सौवर्णिक परिणाम वजन का एक कांकिणी रत्न होता है। उक्त तौल का परिणाम भरत चक्रवर्ती नरदेवों के कांकिणीरत्न समान होते हैं। उसका संस्थान अर्थात् आकृति ऐरन के समान होती है और वह उत्सेहा अंगुल से चार अंगुल प्रमाण का हुआ करता है।

अध्याय-12

प्राचीनकालीन कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक वस्तुयें प्राचीन अस्त्र शस्त्र

1. धनुष्य, 2. बाण, 3. शक्ति, 4. भाला, 5. धुरी, 6. कण्य, 7. तलवार,
8. खेट आदि

1. धनुष्य- असमय में होने वाले प्रचण्ड वज्रपात के समान जिसकी प्रत्यंचा के आधात से समस्त संसार काँप जाता था। और जिसने देव, दानव सभी को जीत लिया था ऐसा वज्रकाण्ड नाम का धनुष्य उस चक्रवर्ती के पास था। जिस प्रकार आधुनिक युग में अस्त्र उत्प्रेक्षक बन्दूक, तोप, टैंक आदि यंत्र होते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में धनुष्य बाण उत्प्रेक्षक यंत्र धनुष्य था।

2. बाण- जो कभी व्यर्थ नहीं पड़ते ऐसे उसके अमोघ नाम के बड़े-2 बाण थे। इन बाणों के द्वारा ही चक्रवर्ती जिसमें पाना असाध्य हो ऐसे युद्धस्थल में प्रशंसा प्राप्त करता था। बाण प्राचीनकालीन उत्क्षेपक अस्त्र है। इस अस्त्र को धनुष्य पर चढ़ाकर लक्ष्य स्थल पर छोड़ते हैं। इसका विस्तृत वर्णन भारतीय प्राचीन अनेक शास्त्रों में है। अस्त्र-शस्त्र प्रयोग के लिए प्राचीनकाल में भारत में अनेक गुरुकुल थे। अस्त्र विद्या को धर्नुविद्या कहते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में बाण के विषय में महत्वपूर्ण वर्णन किया है।

3. शक्ति- उस बाण के वेग में, वायु की धार में, अग्नि और सूर्य को शरीर में, आकाश की तथा भारीपन में मेरु और मन्दराचल की प्रतिष्ठा की गई थी। श्री रघुनाथ जी जब उस उत्तम बाण का संधान करने लगे, तब संपूर्ण प्राणी धर्ता उठे और धरती डोलने लगी। इसप्रकार रावण का वध करके खून से रंगा हुआ वह शोभाशाली बाण अपना काम पूरा करने के बाद पुनः विनीत सेवक की भाँति श्रीरामचंद्र जी के तरकश में लौट आया॥

(वा.रामायण सर्ग 107/6-75-20)

पहले कुछ बाण ऐसे थे कि साधारण कार्य के लिए प्रयोग करने के योग्य थे। कुछ बाण बाँस, लकड़ी से निर्मित होते थे। कुछ बाण सोना, चाँदी आदि अनेक धातुओं से बनते थे और कुछ विशिष्ट बाण बहुमूल्य रत्न, वज्रादि से निर्मित होते

थे। कुछ विद्यामंत्र सिन्धु थे। कुछ देवोपुनीत अर्थात् दैविक शक्ति सम्पन्न थे। कुछ बाण प्रयोग बाद जलवृष्टि करते थे, तो कुछ बाण अग्निवृष्टि करते थे, कुछ बाण अंधकार फैलाते थे, तो कुछ बाण सूर्य के समान प्रकाशित होकर अंधकार दूर कर प्रकाश करते थे, कुछ बाण विषाक्त शक्ति से शत्रुओं को मूर्च्छित कर सकते थे व मार भी सकते थे।

कुछ बाणों के प्रयोग से शत्रु पक्ष के सैनकि बंदी हो जाते थे। जैसे— नागपाश बाण से नागशक्ति निकल कर शत्रुओं को बाँध डालती थी। कुछ गरुणपाश बाँध से उस बंधन को खोल देता था। उसके गरुड़पाश बाण कहते हैं। कुछ महाशक्तिशाली बाण पर्वत को ध्वंस करने में समर्थ थे व कुछ पर्वत को सुखाने में भी समर्थ थे।

शब्दभेदी बाण केवल जिस ओर से शब्द आ रहा है उस ओर प्रयोग करने से लक्ष्य स्थल में जाकर बाण अपना काम करता था। कुछ विशिष्ट बाण स्मरण करने मात्र से सिन्धु व्यक्ति के हाथ में आकर स्वयं उपस्थित हो जाते थे। विशिष्ट शक्ति संपन्न बाण कार्य सिन्धु करके ही वापिस प्रयोग या तूणीर में आकर विश्राम लेता था। दैविक शक्ति सम्पन्न बाण विशिष्ट पुण्य पुरुष निर्दोष पुरुष, तद्भव मोक्षगामी, चरमशरीरी, स्वकुटुम्ब के ऊपर क्षति नहीं पहुँचाते हैं।

4. भाला- जिसकी नौंक बहुत तेज थी जो मणियोंके बने हुए डण्ड के अग्रभाग पर सुशोभितक हो रहा था और जो सिंह के नाखूनों के साथ स्पर्धा करता था ऐसा उनका सिंहाटक नामक भाला था।

5. धुरी- जो अत्यन्त दैदीप्यमान थी, जिसकी रत्नों से जड़ी हुई मुठ बहुत ही चमक रही थी और जो विजयलक्ष्मी के दर्पण के समान जान पड़ती थी ऐसी लोहाहिनी नामक धुरी थी।

6. कण्य (अस्त्र विशेष)

कण्योऽस्य मनोवेगो जयश्री प्रणयावहः।

द्विषत्कुतक्षमा ध्रदलने योऽश्नीवितः॥(166)

मनोवेग नामका एक कण्य (अस्त्र) विशेष था जो कि विजय लक्ष्मी पर प्रेम करने वाला था और शत्रुओं के वंश रूपी कुलाचलों को खण्डित करने के लिए वज्र के समान था।

7. तलवार- भरत के पास सौनन्दन नामक श्रेष्ठ तलवार थी जिसकी कान्ति अत्यन्त दैदीप्यमान हो रही थी और जिसे हाथ में लेते ही यह समस्त जगत् झूले में बैठे हुए के समान काँप उठता था।

कुछ देवों के पुनीत एवं सामान्य खड़ग होते हैं। देव पुनीत खड़ग जैसे— चन्द्रहास आदि यह खड़ग अत्यन्त अनेक देवों से रक्षित सुगंधित है। दैदीयमान अप्रतिहत शक्ति से युक्त रहता है। कुछ खड़ग वक्राकार कुछ सरल रहते हैं।

8. खेट- उनके भूतों के मुखों से चिन्हित भूतमुख नामका खेट (अस्त्र विशेष था, जो कि युद्ध के प्रारम्भ में चमकता हुआ शत्रुओं के लिए मृत्यु मुख के समान जान पड़ता था।

पाश अस्त्र— कुन्ती कुमार मेरे द्वारा दिये हुए उन वरुणपाशों का रहस्य और उपसंहार सहित ग्रहण करो। इनके वेगों को कोई नहीं रोक सकता। वीर मैंने इन पाशों के द्वारा तारकामय संग्राम में सहस्रों महाकाय देवों को बाँध लिया था।

अन्तर्धान अस्त्र

**तदिदं प्रनिगृण्हीष्य अन्तर्धानप्रिय मम्।
ओजस्त्वेजो द्युतिकरं प्रस्वापनमरातिनृत्॥**

यह मेरा परमप्रिय अन्तर्धान नामक अस्त्र है इसे ग्रहण करो। यह ओज, तेज, कांति प्रदान करने वाला, शत्रु सेना को सुला देने वाला और समस्त वैरियों का विनाश करने वाला है।

शक्ति— राजा भरत के शत्रुओं को खण्डित करने वाली वज्रतुण्डा नामकी शक्ति थी, जो कि वज्र की बनी हुई थी और इंद्र को भी जीतने में प्रशंसनीय थी।

रथ— विजय लक्ष्मी के भार को धारण करने वाला अजितंजय नामका रथ था, जिस पर शत्रुओं को जीतने वाले अनेक दिव्य शस्त्र रखे रहते थे।

वर्तमान काल में जिस प्रकार गमनागमन के लिए कार, मोटर, रेलगाड़ी आदि का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार गमनागमन के लिए रथ का प्रयोग करते थे। कुछ रथ स्थल में गमन करते थे। कुछ जल, स्थल में गमन करते थे और कुछ रथ जल, स्थल, आकाश में गमन करते थे। कुछ रथ विशेष करके युद्ध के लिए प्रयोग में लाये जाते थे। जिस प्रकार वर्तमान समय में युद्ध में टैंक, बख्तर का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार प्राचीनकाल में युद्ध क्षेत्र में रथ का प्रयोग करते थे।

भेरियाँ— उस चक्रवर्ती की समुद्र के समान गंभीर आवाज वाली आनन्दिनी नामकी बारह भेरियाँ थीं। जो अपनी आवाज को बारह योजन दूर तक फैलाकर बजाती थीं।

बारह नगाड़े— इनके सिवाय बारह नगाड़े और ये जिनकी आवाज घर के मध्ये

ऊँची गर्दन कर बड़े आनंद के साथ सुना करते थे।

शंख— जिनकी आवाज अतिशय गंभीर है, जो शुभ और पुण्यरूपी समुद्र से उत्पन्न हुए हैं ऐसे गंभीरावर्त नाम के 24 शंख थे।

बाणों का विशेष वर्णन— वारुण अस्त्र छोड़ने से प्रकाश अंधकार में परिणमित हो जाता है। मेघ समूह के समान गर्जना करने वाला वरुण अस्त्र छोड़कर सुग्रीव की दिशाओं को प्रकाश से रहित कर दिया।

तामस बाण

कुशल मेघवाहन ने सुंदर तामस बाण भी चलाया जिससे भूमण्डल की समस्त सेना अंधकार से मुक्त हो गयी। उस समय इतना अंधकार हो जाता है कि हाथ भी नहीं दिखता और भूमि भी नहीं दिखती।

महातामस बाण और सूर्यास्त्र बाण— इंद्रजीत ने महातामस बाण छोड़ा जिससे महान् अंधकार हो गया। फिर लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र बाण छोड़ा जिससे महान् प्रकाश हो गया।

नागपाश बाण—

हे श्रेणिक! वे बाण बड़े विचित्र थे। जब वे धनुष पर चढ़ाये जाते थे, तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्का के समान मुख वाले हो जाते थे, और शरीर पर जाकर नागरूप हो जाते थे। यथार्थ में ये सब अस्त्र देवोपुनीत थे तथा मनचाहे रूप को धारण करने वाले थे।

जब भूमण्डल उस तामसबाण से अंधा हो रहा था, तब मेघवाहन ने उसे विषरूप धूम का समूह छोड़ने वाले नागबाणों से वेष्टित कर दिया। पहले भी ऐसे बाण थे जिस प्रकार वर्तमान में अशुद्ध गैस छोड़ी जाती है, उसी प्रकार बाण छोड़े जाते थे जिससे उससे विषरूप धूम निकलती थी और फिर वह नागरूप में परिणमित होकर शत्रु को पकड़ लेता था और बाँध लेता था।

गरुड़ अस्त्र बाण— इंद्रजीत ने नागबाणों के द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मण को वेष्टित करना प्रारम्भ किया। जब लक्ष्मण ने गरुड़ास्त्र के द्वारा उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी पूर्वोपार्जित पापों के समूह को दूर कर देता है।

सचक्र ग्रणी चैत्र सोल्कालातावपोथिका।

शत्रु के चलाये हुए गोले और अलात् (प्रज्ञवलित लौहमय अस्त्र) को भी विफल करके नीचे गिरा देने वाली शक्तियाँ सुसज्जित थीं।

जिस प्रकार वर्तमान काल में प्रक्षेपण अग्नि अस्त्र यथा—गोला, बारुद, एटमबम, हाइड्रोजन बम, न्यूक्लियर बम आदि अस्त्रों का आविष्कार हुआ है। उसी प्रकार प्राचीनकाल में इन अस्त्रों का प्रयोग ज्ञान, निर्माण ज्ञान व उनका प्रचार-प्रसार एवं शिक्षा पन्द्रहि भी थी। वर्तमान में जैसे-विषाक्त गैस, अश्रुगैस का प्रयोग होता है उसी प्रकार प्राचीनकाल में भी इन अस्त्रों का प्रयोग होता था।

रथ वाहक

जाम्बूनदसुताद्याश्रसिहें भाश्वः युतैः रथैः।

(पद्म पु. पर्व 60)

ये सब सिंह, हाथी और घोड़ों से जुते हुए रथों पर सवार हो बड़ी कठिनाई से रावण की सेना को रोकने के लिए उघृत हुए।

हनुमान का स्वयं बंदर बनना

जब हनुमान सीता शोध के लिए लंका गये थे, तब स्वयं को गुप्त रखने के लिए अपना रूप विद्या के माध्यम से परिवर्तित किया था।

आद्यैर्दुःखेन तदृुःखाद् विनीता प्राविशत्पुरम्।

शिशिपास्थस्ततोऽभ्येत्य दूतः प्लवग विद्यया॥ (363)

परावृत्या कपेर्मूत्यस्विवं निद्रात्यभिद्रुग्ना।

विद्याय रक्षकान्त् देव्याः पुरस्तात्समव रित्थता॥ (364) उ.पु.

शोक को प्राप्त हुई मन्दोदरी ने सीता के दुःख से विनम्र होकर आप्त जनों के साथ-साथ नगर में बड़े दुःख से प्रवेश किया। तदन्तर उसी शिशिपा वृक्ष पर बैठे हुए दूत हनुमान में प्लवग नामक विद्या के द्वारा अपना बन्दर जैसा रूप बना लिया और वन की रक्षा करने वाले पुरुषों को निद्रा से युक्त कर वह स्वयं सीता देवी के आगे जा खड़ा हुआ।

हनुमान ने वानर विद्या से वानर सेना तैयार की

सहायाश्चादिशत्तस्य विदेशान् शौय शालिनः।

सोऽपि सन्तुष्ट्य सधो वानर विद्यया॥(508)

प्रादुर्भावति दुःप्रेक्ष्यनानावतर सेनया।

द्रुत वाराशि मुल्लंघय विक्रमाद्वन पालकान्॥ (509)

उ.पु. पर्व 68

रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर हनुमान बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने वानर विद्या के द्वारा शीघ्र ही अनेकों भयंकर वानरों की सेना बनाई और उसे साथ ले, शीघ्र ही समुद्र का उल्लंघन किया।

पर्णलध्वी विद्या (प्राचीन पैटाशूट)

राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ में पुत्र आया था। उसको पूर्व जन्म के द्वेष के कारण असुर कुमार देव ने जन्म होते ही उस पुत्र का अपहरण कर लिया और फिर उसको ले जाते समय उसका रूप देखने से उसके हृदय में दया उत्पन्न हो गयी तो उसने ऊपर से ही विमान में पर्णलध्वी विद्या की सहायता से उसे नीचे छोड़ दिया। जिससे उसे नीचे आते समय किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं हुआ।

पर्णलध्वी ततो विद्यां संक्रमयं शिशौ सुरः।

सुख देशे विमुच्यैन गतो धाय मनीषि तम्॥(129)

तदन्तर वह देव उस बालक में पर्णलध्वी विद्या का प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थान में छोड़कर इच्छित स्थान पर चला गया।

प्रज्ञप्ति विद्या (विमान निर्माण विद्या)-

नायकाम्यां ततः सुग्रीवाणुमन्तौ स्वसमाधिता।

दत्वा गरुड़सिंहादि वाहन्यौ वंध मोचनीम्॥(521)

हननावरणीं विद्याश्चतस्रोऽस्य पृथक् पृथक्।

प्रज्ञप्ति विद्या विकृत विमानेन महाबलम्॥(522)

तद्वापुर वर्हिभागे तान् वैश्यतः स्य तौ।

नभश्चर कुमारेषु तदा रामज्ञया गिरिम्॥(523)

68 सर्ग महा पु.उ.पु.

तदन्तर सुग्रीव और हनुमान ने अपने द्वारा सिद्ध की हुई गरुडवाहिनी, सिंहवाहिनी, बंधमोचनी और हननावरणी नामकी चार विद्यायें अलग-2 रामचंद्र और लक्ष्मण को दीं। इसके बाद दोनों भाईयों ने प्रज्ञप्ति नाम की विद्या से बनाये हुए अनेकों विमानों के द्वारा अपनी उस बड़ी सेना को लंकानगरी के बाहर बड़े मैदान में ले जाकर खड़ी कर दी। उस समय कितने ही विद्याधर कुमार रामचंद्र की आज्ञा से आदित्यपाद नामक पर्वत पर जाकर उपद्रव करने लगे।

महाज्वाला विद्या (आरनेयास्त्र)

तानभज्जन् समुद्धत्य प्रहुत्य वन पादपैः।

ततः स्फुरन महाज्वाला विद्यायाऽसौवहिः पुरम्॥(514)

निरधाक्षी दधिक्षिप्य रक्षरक्षो बलं बाली।

एवं रावण दुर्वार प्रताप प्रोद्यत द्रुमम्॥(513)

प्रोन्मूल्य वानरानीक नायको राममाययौ।

सन्नाह्यां राघवः स्थित्वा बलं संग्राम सम्मुखम्॥(515)

बलवान् हनुमान ने नगर के बाहर स्थित राक्षसों की पूरी सेना को अपनी दैदीष्यमान महाज्वालाओं नामकी विद्या से वहाँ का वही भस्म कर दिया। इस प्रकार वानर सेना के सेनापति हनुमान रावण ने दुर्वार प्रताप रूपी ऊँचे वृक्ष को उखाङ्कर रामचंद्र के समीप वापिस आ गया। इधर रामचंद्र तब तक सेना को तैयार करके युद्ध के सम्मुख खड़े हो गये।

रूप विद्या (रूप परिवर्तन)

सूर्पनखाने वन में घृमते हुए राम, लक्ष्मण पर मोहित होने पर रूप बदल कर विद्या से कन्या का रूप धारण किया।

इति संचिन्त्य संसाधुकन्याकल्पं समाश्रिता।

हृदेयानातुरात्यन्तं भावगहृवर वर्तिना॥(93)

पद्मपुराण भा. 2 पर्व 43

ऐसा विचार कर वह कन्या भाव को प्राप्त हुई। वह उस समय भावरूपी गुफा वर्तमान हृदय से अत्यन्त आतुर हो रही थी।

अवलोकनी विद्या (दूर से जानना)

रावण ने जब सीता के रूप से मोहित होकर सीताहरण का विचार किया, तब राम, लक्ष्मण एवं सीता के बारे में जानने के लिए अवलोकिनी विद्या का सहारा लिया।

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययो पायमञ्जसा।

विवेद हरणे तस्यास्तेषां नाम कुलादियात्॥(72) प.पु.

इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्या के द्वारा सीता को हरण करने का वास्तविक उपाय जान लिया। राम, लक्ष्मण, सीता के नाम कुल आदि सबका

उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया।

बला अतिबला विद्या (प्राचीन सुपर कम्प्यूटर)

विश्वामित्र के प्रस्ताव के अनुसार राजा दशरथ ने राम लक्ष्मण को राक्षसी शक्ति को नष्ट करने के लिए विश्वामित्र के साथ मुनि आश्रम के लिए भेज दिया। राम, लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ प्रयाण करते समय अयोध्या से 1-1/2 योजन दूर जाकर सरयू के दक्षिणतट पर पहुँचे तब शिवामित्र ने बला, अतिबला नामक दो विद्याओं को राम, लक्ष्मण को प्रदान करने के लिए सरयू में स्नान करके आने के लिए आज्ञा दी। स्नान एवं आचमन के अनन्तर ऋषि विश्वामित्र ने दोनों विद्या देकर शक्ति के बारे में निम्न प्रकार वर्णन किया। ‘बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध इस मंत्र समुदाय को ग्रहण करो। इसके प्रभाव से तुम्हें कभी श्रम (थकान) का अनुभव नहीं होगा। ज्वर (रोग, चिंता, कष्ट) नहीं होगा। तुम्हारे रूप में किसी प्रकार का उलट फेर, विकार नहीं होने पायेगा। सोते समय अथवा असावधानी की अवस्था में भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतल पर बाहुबल में तुम्हारी समानता करने वाला कोई नहीं होगा। तात! रघुकुलनन्दन राम! बला और अतिबला का अभ्यास करने से तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायेगा।

न सौभाग्ये न दक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये।

नेत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानय॥(16)

अनय! सौभाग्य चातुर्य, ज्ञान और बुद्धि संबंधी निश्चय में तथा किसी के प्रश्न का उत्तर देने में भी कोई तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा।

एतद विद्याद्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्त्वा।

बलाचातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ॥(17)

इस दोनों विद्याओं के प्राप्त हो जाने पर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा: क्योंकि ये बला और अतिबला नाम की विद्यायें सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं। बला और अतिबला का अभ्यास करने से तुम्हें भूख प्यास का भी कष्ट नहीं होगा। अतः रघुकुल को आनंदित करने वाले राम! तुम संपूर्ण जगत् की रक्षा के लिए इन दोनों विद्याओं को ग्रहण करो। इन दोनों विद्याओं का अध्ययन कर लेने पर इस भूतल पर तुम्हारे यश का विस्तार होगा। ये दोनों विद्यायें ब्रह्माजी की तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं। रघुकुलनन्दन! मैंने दोनों को तुम्हें देने का विचार किया

है। राजकुमार तुम्हीं इनके योग्य पात्र हो। यद्यपि तुम में इस विद्या को प्राप्त करने के योग्य बहुत से गुण हैं अथवा सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है तथापि मैंने तपोबल से इसका अर्जन किया है। अतः मेरी तपस्या से परिपूर्ण होकर ये तुम्हारे लिए बहुरूपिणी होंगी। अनेक प्रकार के फल प्रदान करेगी।' तब श्रीराम आचमन करके पवित्र हो गये। उनका मुख प्रसन्नता से खिल उठा उन्होंने उन शुद्ध अन्तःकरण वाले महर्षि से वे दोनों विद्यायें ग्रहण कीं। विद्या से सम्पन्न होकर भयंकर पराक्रमी श्रीराम सहस्रों किरणों से युक्त शरत्कालीन भगवान् सूर्य के समान शोभा पाने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम ने विश्वामित्र की सारी गुरुजनोंचेत् सारी सेवायें करके हर्ष का अनुभव किया। फिर वे तीनों सरयू के तट पर रात को सुखपूर्वक रहने लगे। विद्या ग्रहण करने के लिए शुचिता पवित्रता की आवश्यकता होती है। राम लक्ष्मण ने स्नान करके शुचिभूत होकर बला और अतिबला विद्या को ग्रहण किया जिसके प्रभाव अचिन्त्य थे। उस विद्या के प्रभाव से ज्वर, श्रम, विकार उत्पन्न नहीं होते हैं। इस विद्या के माध्यम से शारीरिक बल के साथ-2 मानसिक वाचनिक शक्ति में भी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसीलिए इस विद्या को प्राप्त करने वाला संसार में प्रत्येक क्षेत्र में अजेय हो जाता है। इस विद्या के प्रभाव से भूख प्यास भी नहीं लगती है। इसप्रकार इस विद्या की अलौकिक चमत्कारपूर्ण शक्ति है। आधुनिक सुपर कम्प्यूटर से भी अधिक क्षमता सम्पन्न ये विद्यायें थीं।

पुष्पक विमान (वायुयान)

वैत्रवण का जो पुष्पक विमान था उसे रावण के भृत्यजन रावण के समीप ले गये। वह पुष्पक विमान सुंदर था, वैत्रवण उसका स्वामी था। उसके शिखर में नानाप्रकार के रल जड़े हुए थे। झरोखें उसके नेत्र थे। उसमें जो मोतियों की झालर लगी थी उससे निर्मल कांति का समृह निकल रहा था। वह उससे ऐसा जान पड़ता था मानो स्वामी का वियोग हो जाने के कारण निरन्तर आँसू ही छोड़ता रहता था। उसका अग्रभाग पद्मराग मणियों से बना था, इसीलिए उसे धारण करता हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो शोक के कारण उसके हृदय को बहुत कुछ पीटा था। इसीलिए वह अत्यन्त लालिमा को धारण किये था। कही-2 इंद्रनील मणियों की प्रभा उस पर आवरण कर रही थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शोक के कारण ही वह अत्यन्त श्यामलता को प्राप्त हुआ हो। चैत्यालय, वन,

मकानों के अग्रभाग, वाटिका तथा महल आदि से सहित होने के कारण वह किसी नगर के समान जान पड़ता था। नाना शास्त्रों ने उस विमान को चोटे पहुँचाई थी। वह बहुत ही ऊँचा था, देवभवन के समान जान पड़ता था और आकाश तल मानो उसका आभूषण ही था। शासन ने शत्रु की परायज का चिन्ह समझ पुष्पक विमानको अपने पास रखने की इच्छा की थी अन्यथा उसके पास विद्या निर्मित कौन सा वाहन नहीं था? वह विमान पर आरूढ़ होकर मंत्रियों, वाहनों, नागरिकजनों पुत्रों, माता-पिता तथा बंधुजनों के साथ चला।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक युग में जिस प्रकार आकाशमार्ग से गमन करने के लिए विभिन्न प्रकार के हेलीकॉप्टर, एरोस्लेन, रॉकेट आदि वायुयान हैं उसी प्रचार प्राचीन काल में विविध प्रकार के शक्तिशाली अत्यन्त द्रुतगामी, विराट-वृहत एवं क्षुद्र वायुयान थे। एक-2 वायुयान में सैकड़ों सैनिक, हाथी, घोड़े, उनके अस्त्र-शस्त्र वहन करके द्रुतगति से देशान्तर गमन करने में समर्थ थे। वायुयान में अनेक महल, बगीचा, जलाशय आदि होते थे। रामायणानुसार गमनागमन के लिए विशेषतः वायुयानों का प्रयोग होता था। कुछ वायुयानों (पुष्पक विमान) में अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित करके युद्ध के लिए आकाश मार्ग से गमन करके तथा आकाश में रहकर वे पुष्पक विमान से युद्ध करते थे।

विशिष्ट अवस्था में पुष्पक विमान का स्थगित हो जाना-

एकदा रावण पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर आकाश मार्ग से हिमालय पर्वत का उल्लंघन कर रहा था, हठात् उसका वायुयान कुछ शक्ति से आकर्षित होकर आकाश में ही स्थगित हो गया। जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरु के तट को पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मन के समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया। जब पुष्पक विमान की गति रुक गयी और धंटा आदि से उत्पन्न होने वाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानों तेजहीन होकर लज्जा के कारण उसने मौन ही ले रखा था। विमान को रुका देख दशानन ने क्रोध में दमकते हुए कहा कि— अरे! यहाँ कौन है? कौन है? तब सर्व वृतान्त को जानने वाले मारीचि ने कहा कि हे देव! यहाँ कैलाश पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमायोग में विराजमान है।

ये सूर्य के सम्मुख विद्यमान हैं, और अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं। समान शिलातल पर ये रलों के स्तम्भ के समान

अवस्थित हैं। घोर तपश्चरण को धारण करने वाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं। और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक इस विमान को शीघ्र ही लौटा लेता है।

जिस प्रकार वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक युग में शत्रु जहाज को यान्त्रिक शक्ति के माध्यम से निरुद्ध या नष्ट-भ्रष्ट करते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में कुछ मंत्र विद्या, आध्यात्मिक संत विराजमान थे। उनके ऊपर स्थित आकाश प्रदेश में कोई वायुयान गमन करता है तो उनकी शक्ति से आकर्षित होकर आकाश में स्थिर हो जाता है। यदि वायुयान को वापिस नहीं करता या मुनि के पास आकर बंदना, प्रार्थना आदि नहीं करता है तो वह वायुयान आगे नहीं बढ़ सकता है। बलात्कार आगे बढ़ाने की कोशिश करने पर संभवतः वह वायुयान क्षत-विक्षत, नष्ट भी हो सकता है। इसी प्रकार कोई शत्रु यदि नीचे विराजमान है तो भी पुष्पक विमान आगे नहीं बढ़ेगा। पुष्पकयान का मालिक नीचे आकर यदि शत्रु के क्षमायाचना या समझौता करता है, तब वह वायुयान आगे बढ़ सकता है। इसी प्रकार अकृतिम जिन मंदिर, जिन चैत्यालयों को जानना चाहिए।

इच्छा चालित विमान

तपः समाधान पराक्रमवर्जित मनः समाधान विचार चारिण्यम् अनेक संस्थान विशेष निर्मित, ततस्ततस्तुल्य विशेष निर्मितम् रावणने जो निराहार रहकर तप किया था और भगवान के चिन्तन में चित्त को एकाग्र किया था, इससे मिलें हुए पराक्रम के द्वारा उसने उस विमान पर अधिकार प्राप्त किया था। मन में जहाँ भी जाने का संकल्प उठता, वही वह विमान पहुँच जाता था। अनेक प्रकार की विशिष्ट कलाओं के द्वारा उस विमान की रचना हुई थी तथा जहाँ तहाँ से प्राप्त की गई दिव्य विमान निर्माणोचित विशेषताओं से उसका निर्माण हुआ था।

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं दुरासदं मारुततुल्य गामिनम्।

महात्मनां पुण्यकृतां महर्घिना, यशस्विनामस्य मुदावालयम्॥८

वह स्वामी के मन का अनुसरण करते हुए बड़ी शीघ्रता से चलने वाला, दूसरों के लिए दुर्लभ, और वायु के समान वेगपूर्वक आगे बढ़ने वाला था। तथा श्रेष्ठ आनंद (महान् सुख) के भागी, बढ़े-चढ़े तपवाले, पुण्यकारी महात्माओं का वह आश्रय था।

विशेषमालम्ब्य विशेष संस्थितं, विचित्रं कूटं बहुकूटमंडितं।
मनोऽभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं, विचित्रं कूटं शिखरं गिरेयथा॥

वह विमान गति विशेष का आश्रय ले व्योमरूप देश-विशेष में स्थित था। आश्चर्यजनक विशेष वस्तुओं का समुदाय उसमें एकत्र किया गया था। बहुत सी शालाओं के कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल और मन को आनन्द प्रदान करने वाला था। विचित्र छोटे-2 शिखरों से युक्त किसी पर्वत के प्रधान शिखर की जैसी शोभा रहती है, उसी प्रकार अद्भुत शिखर वाले उस पुष्पक विमान की शोभा हो रही ती।

वहन्ति यत् कुण्डल शोभितानना, महासना व्योमचरा निशाचराः।

विकृत विध्वस्तविशाललोचना महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥११७

वसन्त पुष्पोत्कर चारुदर्शनं वसन्त मासादपि चारुदर्शनम्।

स पुष्पकं तत्र विमानमुक्तमं ददर्श तद् वानर वीर सत्तमः॥

जिनके मुखमण्डल कुण्डलों से सुशोभित और नेत्र धूमते आ धूरते रहने वाले, निमेषरहित तथा बड़े-2 थे वे अपरिमित भोजन करने वाले, महान् वेगशाली, आकाश में विचरने वाले, तथा रात में भी दिन के समान चलने वाले, सहस्रों भूतगण जिसका भार वहन करते थे जो वसन्त कलिका पुष्प पुंजके समान रमणीय दिखाई देता था और वसन्त मास से भी अधिक सुहावना दृष्टिगोचर होता था, उस उत्तम पुष्पक विमान को वानर शिरोमणि हनुमान ने वहाँ देखा।

हनुमान का रावण के श्रेष्ठ भवन, पुष्पक विमान तथा रावण के रहने की सुंदर हवेली को देखकर उसके अंदर सोयी हुयी सहस्रों स्त्रियों का अवलोकन करना

पुष्पक विमान की लम्बाई चौड़ाई

तस्य हर्ष्यस्यमध्यस्थवेशम्; चान्यत् सुनिर्मितम्।

बहुनिर्यू संयुक्तम् ददर्श पवनांत्मजः॥(10)

उस एक योजन लम्बे (12 की.मी.) और आधे योजन (6. की.मी.) चोड़े महल के मध्यभाग में एक दूसरा भवन (पुष्पक विमान) था, जिसका निर्माण बड़े सुंदर ढंग से किया गया था। वह भवन बहुसंख्यक मतवाले हाथियों से युक्त था। पवन कुमार हनुमानजी ने फिर उसे देखा।

पुष्पक विमान के निर्माता

ब्राह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं, दिवि यद् विश्व कर्मणा।

विमानं पुष्पकं नाम, सर्वं रत्नं विभूषितम्॥(11)

वह सब प्रकार के रत्नों से विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोक में विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी के लिए बनाया था।

पेरेण तपसा लेभे, यत् कुबेरः पिता महात्।

कुबेरमोजसा जित्वा, लेभे तद् राक्षसेश्वरः॥(12)

कुबेर ने बड़ी भारी तपस्या करके उसे ब्रह्माजी से प्राप्त किया और फिर कुबेर को बलपूर्वक परास्त करके राक्षसराज रावण ने उसे अपने हाथ में ले लिया।

उसमें भेड़ियों की मूर्तियों से युक्त सोने चाँदी के सुंदर खम्भे बनाये गये थे, जिनके कारण वह भवन अद्भुत कांति से उदीप्त हो रहा था। उसमें सुमेरु और मंदराचल के समान ऊँचे अनेकानेक गुप्त गृह और मंगल भवन बने थे, जो अपनी ऊँचाई से आकाश में रेखा सी खींचते हुए जान पड़ते थे। उनके द्वारा वह विमान चारों ओर से सुशोभित होता था। उसका प्रकाश अग्नि और सूर्य के समान था। विश्वकर्मा ने बड़ी कारीगरी से उसका निर्माण किया था। उसमें सोने की सीढ़ियाँ और अत्यन्त मनोहर उत्तम वेदियाँ बनाई गयी थीं। सोने और स्फटिक के झरोखे थे और खिड़कियाँ लगायी गयी थीं। इन्द्रनील और महानील मणियों की श्रेष्ठतम वेदियाँ रची गयी थीं। उसकी फर्श विच्चित्र मूँगे, बहुमूल्य मणियों तथा अनुपम गोल मोल मौतियों से जड़ी गयी थी, जिससे उस विमान की बड़ी शोभा हो रही थी। सुवर्ण के समान लाल रंग से सुगन्ध युक्त चंदन से संयुक्त होने के कारण वह बाल सूर्य के समान जान पड़ता था।

काऊटागारैर्वरकारैः विविधैः समलंकृतम्।

विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः॥

तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्षयान्नसम्भवम्।

दिव्यसमूच्छितं जिघ्रन् रुपवन्तमिवानिलम्॥(19)

महाकपि हनुमान जी उस दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़ गये। जो नाना प्रकार के सुंदर कूटागारों (अट्टालिकाओं) से अलंकृत था। जहाँ बैठकर सब ओर से फैली हुई नाना प्रकार के पेय, भक्ष्य और अन्न की दिव्य गंध सूँघने लगे। वह

गन्ध मूर्तिमान पवन सी प्रतीत होती थी।

कामचांटि विहृग्राम यन्त्रः पंखयुक्त जहाज

लघु दारुमयं महाविहंगमं सुशिलष्ट तन्तु विधाय तस्य।

उदरे रस यन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमदोस्य चाग्निपूर्णम्॥

तत्रारुढ़ पुरुषस्य पक्ष द्वन्द्वोच्चात् प्रोजिङ्गतेनानिलेन।

सुप्तस्यास्मित्यादस्यास्य शक्त्या चित्रन्कुर्वन्नम्बरे यातिदूरम्॥

पारे के यंत्र से युक्त कृतिम हाथी चिंधाड़ता चलता-फिरता मालूम पड़ता है। तोते आदि पक्षी ताल पर नाचकर और गाकर देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देते हैं। हल्की लकड़ी का बड़ा सा पक्षी बनाकर उसके शरीर के जोड़ों को मजबूती से बंद करके उसके पेट में पारे का यंत्र लगा दें तथा नीचे बिजली का संबंध करें, इस पक्षियान पर बैठा मनुष्य पारे की शक्ति द्वारा परों को हिलने से वायुभेदन होने के कारण आकाश में दूर तक जा सकता है।

विमान यंत्र : (पारा एव विद्युत चालित वायुयान)

इत्यमेव सुरमन्दिर तुल्यं संचलत्यलघुदारु विमानम्।

आदथीत विधिना चातुरोन्तस्तस्य पारदभूतान्द्रद कुम्भान्॥

अयः कपालाहित मन्द वस्त्रोः प्रतप्त तत्कुम्भ भुवा गुणेन।

व्योम्नि ज्ञगित्याभरणत्वमेति संतप्त गर्ज द्रसराजशक्त्या॥

इसीप्रकार हल्की लकड़ी का देव मंदिर के आकार का बड़ा विमान भी आकाश में उड़ सकता है। चतुर कलाकारों को चाहिए कि वह पारे से भरी चार मजबूत टंकियों की स्थापना करें। उसके नीचे बिजली का संबंध करें। इससे बिजली की गर्भी से पारे में क्रिया उत्पन्न हागी, उसकी शक्ति से वह विशाल वायुयान होगा। उसकी शक्ति से वह विशाल वायुयान ‘झग’ शब्द करता हुआ आकाश में उड़ने लगेगा।

आकाशगामी प्रतियोगिता

प्राचीनकाल में मंत्रिविद्या व वायुयान के माध्यम से मनुष्य तथा विशेषकर विद्याधर लोग आकाश गमन में बहुत ही दक्ष थे। समय-2 पर आकाश गमन की प्रतियोगितायें भी होती थीं और जो लक्ष्य स्थल पर सर्वप्रथम पहुँचता था वही प्रतियोगिता में जययुक्त (विजयी) होता था। कुछ राजकुमारियाँ वर वरण करनेके

लिए आकाशगमन प्रतियोगिता को प्रतिज्ञा रूप में घोषित करती थी। जो योग्य पुरुष इस प्रतियोगिता में विजयी होता था उसे कन्या वर रूप में स्वीकार करती थी। एक उदाहरण में जो प्रतियोगिता का वर्णन है उस प्रतियोगिता की दूरी बहुत अधिक है। विजयार्थ से प्रायः सुमेरु पर्वत की दूरी 49474 योजन है तथा सुमेरुके नीचे का व्यास 10,000 योजन है दोनों मिलाकर 59474 योजन है। महायोजन 4000 मील है अर्थात् कुल दूरी 237896000 मील होगी अर्थात् तेईस करोड़ अठन्तर लाख छियानवे हजार मील। प्रतियोगिता के लिए प्रतियोगी इतनी ही दूर जायेगा और इतनी ही दूर वापिस आयेगा। इसीलिए प्रायः 47,57,92000 मील गमन करना होगा। इस दूरी को बहुत ही कम समय में प्रतियोगी पार करके लक्ष्य स्थल तक पहुँचता है जिसे वर्तमान अति द्रुतगामी राकेट के माध्यम से अतिक्रमण करने में असमर्थ होगा। इस उदाहरण से विज्ञ पाठक प्राचीनकालीन द्रुतगामी वायुयान, विद्या, मंत्र के बारे में यत्किंचित् सिंहावलोकन कर सकते हैं।

एक राजकन्या ने प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे गतियुद्ध में जीतेगा, मैं उसी के गले में माला डालूँगी। यह सुनकर राजा ने उसदिन सबको यथायोग्य कहकर विदा किया।

दूसरे दिन राजा ने युद्ध की घोषणा कराकर कहा कि ‘एक माला सिंधकूट चैत्याय के द्वारा से नीचे छोड़ी जायेगी’ जो कोई विद्याधर माला छोड़ने के बाद महासुमेरु पर्वत की तीन प्रतिक्षणायें देकर प्रभावती से पहले उसे जमीन पर गिरने से पहले ही ले लेगा, वही इसका पति होगा। यह सुनकर बहुत से विद्याधरों ने प्रयत्न किया लेकिन पूर्वोक्त प्रकार से माला नहीं ला सके। इसीलिए प्रभावती से हारकर लज्जित होकर चले गये। सो ठीक ही है मृत्यु भी स्वाभिमानी लोगों के मानभंग की बराबरी नहीं कर सकती।

तदन्तर गतियुद्ध में चतुर हिरण्य वर्मा आया और उससे हारकर प्रभावती ने वह माला उसके गले में डाल दी।

इस उदाहरण में आकाशगामिनी महाशक्ति का स्पष्ट सूक्ष्म गणितिक वर्णन है। सुमेरु का व्यास 10 हजार योजन है तथा महायोजन 2000 कोस या 4000 मील के बराबर होता है। इसीलिए सुमेरु का व्यास 4×10^7 मील होता है। परिधि व्यास से कुछ अधिक तीन गुणा अर्थात् $2 r = D$ होता है

इसीलिए सुमेरु की परिधि $4 \times 10^7 \times 22/7 = 88/7 \times 10^7 = 125714285$ 5/7 मील और परिधि की तीन बार परिक्रमा अर्थात् इस परिधि का तीन गुणा अधिक दूरी। सुमेरु की ऊँचाई 99,000 महायोजन है जो 396000,00 मील होती है। वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि आकार कम एक घनत्व अधिक होने पर वस्तु तीव्र गति से नीचे गिरती है। रल एक भारी वस्तु है। इसीलिए रल ऊपर से नीचे तीव्र गति से गिरता है। इस प्रतियोगिता में निश्चित है कि एक रलहार सुमेरु के ऊपर स्थित सिंधकूट चैत्यालय से गिराने के बाद जो पूर्वोक्त सुमेरु की तीन बार प्रतिक्षणा करके हार गिरने के पहले हार को पकड़ता है वही प्रतियोगिता में विजयी होगा।

पाठकगण उपरोक्त गणित से सहज ही पता लगा सकते हैं कि विजयी की गति कितनी तीव्रतम होगी। उपरोक्त विषय को कपोलकल्पित या अतिशयोक्ति मानना उचित न होगा। उपरोक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में विज्ञान अत्यन्त उन्नतिशील था जिसके सौभाग्य से प्राचीनकालीन विद्याधर तथा विद्याधरी इस प्रकार के चमत्कारी कार्य करने में समर्थ रहते थे। जिस समय राइटब्रदर्स ने यंत्र के माध्यम से ऐसे यंत्र का आविष्कार किया कि जिससे मनुष्य भी आकाश में पक्षी की तरह तीव्रगति से उड़ सकता है। तब तत्कालीन अनेक मनुष्यों ने भद्रा परिहास करके उनको पागल जैसा समझा, क्योंकि उन लोगों को आकाशगामी विद्या, यंत्र, तंत्र, मंत्र आदि का परिज्ञान नहीं था, परन्तु आज मनुष्य आकाश में पक्षी की तरह उड़ रहे हैं तथा भूपृष्ठ को छोड़कर अन्य ग्रहों पर भी गमन करते हैं। यह सुनकर तथा देखकर किसी को भी अविश्वास, आश्चर्य एवं असंभव सा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि आज आकाश में गमन करने योग्य साधनों को स्वयं देख रहा है, अनुभव कर रहा है तथा प्रयोग में ला रहा है। इसीप्रकार प्राचीन मानव अपने यंत्र, तंत्र, मंत्र, विद्या आदि शक्तियों के माध्यम से कार्य साधना करते थे। इसीलिए उनके लिए उपरोक्त विषय अविश्वसनीय न होकर विश्वसनीय था।

आकाशमार्ग की शत्रु सेना स्तम्भित करने वाला किला यन्त्र

सीता अपहरण के उपरांत सीता की खोज के लिए रामचंद्र हनुमान को भेजते हैं, हनुमान सेना सहित पुष्कविमान (वायुयान) में आकाश मार्ग से लंका की ओर प्रयाण करते हैं। जब सेना सहित हनुमान लंका के त्रिकूटाचल पर पहुँचते

हैं तब हनुमान की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुष के समान हो जाती है। यह देखकर हनुमान इसका कारण पता लगाते हैं। उनके निर्देश के अनुसार पृथु मुनि मंत्री ने कहा— हे हनुमान! यहाँ से शीघ्र लौट जाओ क्योंकि यह आगे क्रूर यंत्रों से युक्त मायावी कोट जान पड़ता है। तत्पश्चात् हनुमान स्वयं खोज करके उस मायावी कोट को देखते हैं जो कि दुष्प्रवेश था।

अनेकाकार वक्त्राद्यं भीममाशलिकात्कम्।

त्रिदशैरपि दुष्ठोक्य सर्वभक्ष्यं प्रभासुरम्॥(9)

अनेक आकारके मुखों से सहित था। भयंकर पुतलियों से युक्त था। सबको भक्षण करने वाला था, दैदीप्यमान था, देवों के द्वारा भी दुर्भाग्य था।

सङ्कटोत्कटतीक्ष्णाग्रक्रचावलीवेष्ठितम्।

रुधिरोद्गारिजिहाग्रसहस्रविलसत्तम्॥(10)

जिसका अग्रभाग संकट से उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण था। ऐसी करोतां से वह कोट वेष्ठित था। उसके तट रुधिर कों उगलने वाली हजारों जिह्वाओं के अग्रभाग से सुशोभित थे।

स्फुरद्भुजङ्गविस्फारिफण शुत्कार शब्दितम्।

विषधूमान्धकारान्त ज्वलदङ्गरदुःसहम्॥(11)

चंचल सर्पों के तने हुए फणों की शुत्कार से शब्दायमान था। तथा जिनसे विषैला धूमरूपी अंधकार उठ रहा था। ऐसे जलते हुए अंगारों से दुःसह था।

यस्तं सर्पति मूढ़ात्मा शौर्यमान समुद्रतः।

निःक्रामति न भूयोऽसोमण्डुकोऽहिमुखादिव॥(12)

शूरवीरता के अहंकार से उन्दृत जो मनुष्य उस कोट के पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता, जिस प्रकार कि साँप के मुख से मेंढक।

लङ्घांशालं परिक्षेपं सूर्यमार्ग समुन्नतम्।

दुर्लक्ष्यं दुर्निरीक्ष्यं च सर्वदिक्षु सुयोजितम्॥(13)

इस लंका के कोट का धेरा सूर्य के मार्ग तक ऊँचा है। दुर्लक्ष्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओं में फैला है, प्रलयकालीन मेघ गर्जना से भी भयंकर है।

राइट बंधुओं ने नहीं किया था वायुयान का आविष्कार

(पेलिंगटन) पहला हवाई जहाज किसने बनाया था? यह प्रश्न उठते ही हमें

केवल एक ही उत्तर तुरंत याद आता है राइट ब्रदर्स, लेकिन यह सच है कि राइट ब्रदर्स से पहले भी हवाई जहाज सफलता पूर्वक आसमान में उड़ान भर चुका था और इसके निर्माता थे न्यूजीलैंड के एक किसान रिचर्ड पियर्स।

बिलवर तथा आरविले राइट बंधुओं ने 1901 से ही हवाई जहाज बनाने का काम शुरू कर दिया था। 1903 में उन्होंने ऐसा इंजन बना लिया था, जिसके द्वारा हवाई जहाज को उड़ाया जा सकता था। 13 दिसम्बर 1903 का दिन वह भाग्यशाली दिन था जब राइट बंधुओं के द्वारा बनाये हवाई जहाज ने सफलता पूर्वक उड़ान भरी, लेकिन वह जल्द ही नीचे गिर गया। 17 दिसम्बर 1903 को जिस यान ने उड़ान भरी, वह कुछ समय तक आसमान में ठहर सका इसके बाद आरविले ने पहला पावर फ्लाइट बनाया। यह फ्लाइट 12 सैकेंड तक आसमान में रहा। बिलवर द्वारा बनाया गया दूसरा फ्लाइट पहले की तुलना में एक सैकेंड कम समय तक आसमान में रहा। आरविले द्वारा बनाया गया तीसरा यान 200 फुट की ऊँचाई पर 15 सैकेंड तक आसमान में रहा। बिलवरी द्वारा बनाया गया चौथा फ्लाइट 852 फुट की ऊँचाई पर 59 सैकेंड तक उड़ता रहा।

तेज हवा के झोंको के कारण यह यान अनियन्त्रित हो गया इसके पंख टूट गये और इसकी मोटर को भी नुकसान पहुँच। 1903 के बाद राइट बंधुओं द्वारा कोई भी यान नहीं बनाया गया। जब राइट बंधु अपना यह कारनामा दिखा रहे थे तब इसको देख रहे मिस्टर डेनियल ने इसके कुछ फोटोग्राफ्स लिए, लेकिन किसी पत्रकार द्वारा इसे कवर नहीं किया गया। 1904 में जब उन्होंने एक यान बनाया और प्रेस को भी आमन्त्रित किया, तब मौसम के खराब होने के कारण वह उड़ान नहीं भर सका और यह कसक उन्हें जीवन भर बनी रही। यह जानने से पहले ही इनकी मृत्यु हो गयी कि विश्व ने उनके काम को अनुमोदित कर दिया है। इससे पहले न्यूजीलैंड के एक किसान रिचर्ड पियर्स ने अपने द्वारा बनाई फ्लाइंग मशीन और इंजन के द्वारा 31 मार्च 1902 में सफलता पूर्वक उड़ान भरी। उसके बाद राइट ब्रदर्स द्वारा पहली उड़ान भरने से कुछ महीने पहले 10 जुलाई 1903 को 12 फुट ऊँची उड़ान भरी। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार उसने जो यान उपयोग किया था, वह लगभग 50 फुट लम्बा था।

पियर्स की इन उपलब्धियों का पता जांचकर्ताओं को लगभग 50 साल बाद

पता चला। जब उन्होंने उसके गैरेज में आधा बना एक यान पाया। यह तीसरा यान था, जिसे वह उड़ाने की तैयारी में था। इसमें बहुत अधिक सुधार करके बिल्कुल नये रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस तीसरे यान को उड़ान देने से पहले ही पियर्स की मृत्यु हो गयी। पियर्स से पहले भी उड़ान भरने के प्रमाण मिले हैं राइट बंधुओं द्वारा पहली उड़ान भरने के लागभग ढाई साल पहले चिड़ियों के समान छोटे यान ने 14 अगस्त 1901 को ब्रिजपोर्ट के पास में उड़ान भरी (दैनिक भास्कर)

प्राचीन कालीन अन्तर्रीक्ष यात्रा

इन्द्राणी जन्म प्रकोष्ठ में पहुँचकर सद्य जात बाल तीर्थकर को देखकर अत्यन्त आल्हादित होकर जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर जगदम्बा जिन माता की स्तुति करती है। मायामयी नींद से माता को युक्त कर उसके आगे मायामयी दूसरा बालक रखकर तीर्थकर को उठाकर बाहर लाकर इन्द्र को देती है। वहाँ इन्द्रादिक देव तथा विद्याधर लोग अपने—अपने वायुयान में बैठकर 99 हजार योजन ऊँचे सुमेरु शिखर की ओर प्रयाण करते हैं। जून्माभिषेक देखने के लिए कुछ चारण ऋद्धि-धारी मुनि महाराज भी सुमेरु शिखर की ओर प्रयाण करते हैं। मेरु पर्वत पर्यन्त नील मणियों से बनायी हुई सीढ़ियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो आकाश ही भवित से सीढ़ी रूप पर्याय को प्राप्त हुआ हो।

ज्योतिः पटलमुल्लंडध्य प्रययुः सुर नायकाः।

अधस्ताकितां वीथिं मन्यमानाः कुमुदतीम्॥(65)॥

आ.पु. अ. 13

क्रम—क्रम से वे इन्द्र ज्योतिष—पटल को उल्लंघन कर ऊपर की ओर जाने लगे। उस समय वे नीचे ताराओं सहित आकाश को ऐसा मानते थे मानो कुमुदिनियों सहित सरोवर ही हो।

ततः प्रापुः सुराधीशा गिरिराजं तुमुच्छितम्।

योजनानां सहस्राणि नवतिं च नवैव च॥

तत्पश्चात वे इन्द्र निन्यानवे (99) हजार योजन ऊँचे उस सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे।

मुकुट श्रीरिवाभाति चूलिका यस्य मूर्द्धनि।

चूडारत्नश्रियं धत्ते यस्यामृतु विमानकम्॥

जिसके मस्तक पर स्थित चूलिका मुकुट के समान सुशोभित होती है और जिसके ऊपर सौधर्म स्वर्ग का ऋतुविमान चूडामणि की शोभा धारण करता है।

भू पृष्ठ से 790 योजन अर्थात् 31,60,000 मील ऊपर जाकर ज्योतिष्ठ विमानों का प्रारम्भ होता है। 790 से लेकर 90 यो. तक अर्थात् 190 यो. के मध्य से सम्पूर्ण ज्योतिष विमानों का अवस्थान है। ये सम्पूर्ण विमानों को लांघकर 98900 यो. अर्थात् 39,24,00,000 मील ऊपर गमन करके विश्व का सर्वोच्च पर्वत सुमेरु शिखर पर पहुँचते हैं जिसकी ऊँचाई भू पृष्ठ से 9900 यो. अर्थात् 39,60,00,000 मील है। इससे सिन्धु होता है कि प्राचीन काल में मनुष्यों के पास अत्यन्त तीव्रगतिशील विमान था जिससे मनुष्य सुदूर आकाश यात्री होने में समर्थ था।

वैज्ञानिकों ने भी खोजा स्वर्ग

वाशिंगटन। किसी भी व्यक्ति के निधन के बाद अन्तिम क्रियायें करके उसके परिजन मानते हैं कि मृतक की आत्मा स्वर्ग पहुँच चुकी होगी। पर क्या वास्तव में ऐसा होता है? कम से कम फ्रांस के प्रसिद्ध खगोल भौतिकविद् एन्तोइने लेतेलियर तो ऐसा नहीं मानते। लेतेलियर ने स्वर्ग के अस्तित्व को तो स्वीकार किया है परन्तु साथ ही कहा है कि स्वर्ग की पृथ्वी से दूरी तीन अरब प्रकाश वर्ष है और आज तक कोई आत्मा वहाँ तक नहीं पहुँच सकी है। लेतेलियर के अनुसार धरती के अब तक के दर्ज इतिहास में जितने भी लोगों की मृत्यु हुई है उनमें से एक की भी आत्मा स्वर्ग नहीं पहुँच सकी है। यह यात्रा इतनी लम्बी है कि यदि आपकी मृत्यु आज होती है तो आपकी आत्मा वर्ष 2998003 ए.डी में स्वर्ग पहुँचेगी। यदि आपकी आत्मा प्रकाश की गति से एक हजार गुना तेजी से यात्रा करे तब भी वह दूरी तय करने में तीस लाख वर्ष लग जायेंगे। लेतेलियर का कहना है कि आधुनिक मानव के पूर्वज प्रागैतिहासिक मानव की आत्मा इस समय स्वर्ग पहुँचने के काफी निकट है। 399 बी.सी में मरे महान् यूनानी दार्शनिक सुकरात व पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन [जिनकी 1865 में हत्या कर दी गयी थी] की आत्मा अब भी स्वर्ग के रास्ते पर है। लेतेलियर का कहना है कि अन्तर्रिक्ष के गृह रहस्यों को जानने गयी हबल दृबीन तथा मंगल के अभियान पर गये मार्स पाथ फाइंडर द्वारा लिए गये चौकाने वाले चित्रों में अंतर्रिक्ष के सुदूरवर्ती अंधेरे में एक चमकती हुई सफेद नगरी दिखाई देती है जो यकीनन

स्वर्ग है। अमरीकी अंतरिक्ष एजेन्सी नासा ने कभी इन चित्रों को सार्वजनिक नहीं किया पर जैसे—तैसे ये वैज्ञानिकों के हाथ लग गये। लेतेलियरके अनुसार अलौकिक शक्ति के कारण आत्मा प्रकाश से हजार गुना तेज चल सकती है। फिर भी लोगों को अभी से खरबों वर्ष की लम्बी यात्रा के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाना चाहिए। (राज. पत्रिका)

वैज्ञानिकों का दावा है कि इस खास कैमरे से ली गयी तस्वीर को देखकर बताया जा सकता है कि अमुक आदमी या औरत की आत्मा स्वर्ग में पहुँचेगी या नरक में। अमरीका के पालो आल्टो निवासी ऑप्टिक विशेषज्ञ जॉन मुलेने ने एक ऐसा अनृठा कैमरा बनाने का दावा किया है कि जो लोगों के शरीर के इर्द गिर्द मौजूद अदृश्य आभामण्डल की भी तस्वीर ले लेता है। मुलेने का कहना है कि जिन लोगों को यह आभामण्डल धेरे रहता है, वे स्वर्ग में जाते हैं जबकि बिना आभामण्डल वाले लोग नरक में पहुँचते हैं।

गौरतलब है कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की भीतरी ऊर्जा वातावरण में मौजूद असंख्य शक्ति कणों को आकर्षित करती है। ये शक्तिकण ही आभामण्डल के रूप में दिखाई देते हैं लेकिन इन्हें आँखों से नहीं देखा जा सकता। इन्हें केवल फिलियन फोटोग्राफी की मदद से देखा जा सकता है। मुलेने ने कैमरे को परखने के लिए अपनी पत्नी की तस्वीरें ली जिनमें उन्हें शरीर के आस-पास आभामण्डल और सिर के ऊपर ऊर्जा चक्र दिखाई दिया। उन्होंने समझा कि शायद कैमरे की रील में गड़बड़ी से ऐसा हुआ है। मुलेने ने फिर कुछ तस्वीरें खींचवायी जिनमें भी ऐसा ही आभामण्डल दिखाई दिया। इसपर उन्होंने अपनी तस्वीरें खिचवायी जिनमें भी आभामण्डल उिखा। इसके बाद उन्होंने लोगों की भीड़ की तस्वीर खींची जिनमें कुछ पर आभामण्डल दिखाई दिया जबकि कुछ पर नहीं। इसके बाद मुलेने ने चर्च के पादरियों से सम्पर्क किया तो उन्होंने बताया कि स्वर्ग जाने वाले लोगों के आसपास यह आभामण्डल बनता है जबकि नर्क जाने वालों में नहीं। यह व्यक्ति के अच्छे और बुरे कर्मों से बनता है।

जैन धर्म के अनुसार स्वर्गों का अवस्थान धरती के ऊपर 40,0000000 मील से लेकर प्रायः 7 रज्जू अर्थात् असंख्यात प्रकाशवर्ष तक फैला हुआ है। जो जीव मर करके पुण्य कर्म के कारण स्वर्ग जाता है उसकी तीव्रगति एक समय में (सैकेण्ड का असंख्यातवे भाग) 7 रज्जू तक (असंख्यात प्रकाश वर्ष) होने

के कारण वह किसी भी स्वर्ग में (सामान्यतः 16 स्वर्ग) एक, दो या तीन समय में पहुँच सकता है। इसीलिए वैज्ञानिक लोग नई शोध में, खोज में, स्वर्ग को मानते हुए भी स्वर्ग में अभी तक कोई नहीं पहुँचा है ऐसी जो मान्यता है यह उनकी अल्पज्ञता के कारण है। क्योंकि उन्हें वास्तविक रूप से स्वर्ग की यथार्थ स्थिति एवं स्वर्ग गमन करने वाले मृत जीव की गति कितनी है? अभीतक पूर्णरूप से ज्ञात नहीं है। इसका सविस्तार वर्णन मैंने अपनी 'विश्व विज्ञान रहस्य' कृति में किया है। जिज्ञासुओं के लिए अवलोकनीय है।

आधुनिक विज्ञान की 400 वर्षों की सफल यात्रा

1. वैज्ञानिक गैलीलियो :-

इटली के वैज्ञानिक गैलीलियों ने 1610 ई. में एक ऐसा टेलीस्कोप तैयार किया, जिसकी सहायता से किसी भी चीज को हजार गुना बड़ा देखा जा सकता था। अगले दो सौ साल तक इस उपकरण को परिष्कृत कर स्पेक्ट्रोस्कोप बनाया गया। इसके द्वारा न केवल ब्रह्माण्ड के दूसरे ग्रह-नक्षत्रों को देखा जा सकता था, बल्कि आकार के बारे में भी अनुमान लगाया जा सकता है।

2. गणितज्ञ आइजक न्यूटन :-

गणितज्ञ आइजकन्यूटन द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त और गति के नियम मील के पथर साबित हुए। 1687 में न्यूटन ने 'प्रिसिंपिया मैथेमेटिका' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक पिंड एक-दूसरे पिंड को अपनी ओर आकर्षित करता है। और साथ ही प्रत्येक पिंड अपनी यथार्थिति भी बनाये रखने का प्रयास करता है। न्यूटन ने गति के तीन नियमों की भी व्याख्या की।

3. जेड जैनसन :-

जेड जैनसन ने माइक्रोस्कोप की खोज की 1621 में स्लाइड रुल की खोज हुई। 1623 में विलहेम शिकाई द्वारा अनुफलक निर्मित किया गया। 1629 में उत्तल चश्मों का आविष्कार इटली के एक व्यक्ति ने किया।

4. टारिसेल :- ने बेरोमीटर का विकास किया।

5. सी हायगन्स :- ने 1656 में लोलक घड़ी का आविष्कार किया।

6. थामस सेवरी :- ने 1698 में स्टीम इंजन का आविष्कार किया।

7. मानडिनो- ने 1316 में पहली बार शारीरिक रचना के बारे में बताया।

8. ज्यां बैस्टर वैन हेलमंट- ने 1648 में जीव रसायनशास्त्र की स्थापना की।

9. ल्यूवेनहुक- ने 1683 में बैक्टीरिया की खोज की। 1725 में चीन में मापिनी घड़ी बनी।

10. हैरिसन- ने 1735 में क्रोनोमीटर का आविष्कार किया।

11. जेमस्वाट- ने 1765 में बाष्पइंजन का कंडेसर विकसित किया।

12. कैवडिश- ने 1766 में हाइड्रोजन का पता लगाया।

13. वैज्ञानिक निकोलस- 1796 में बाष्प-कार का निर्माण किया। 1780 में बाईफोकल लैंस का एवं 1783 में गुब्बारे का, 1785 में पावरलूम का, 1887 में टेलीग्राफ का आविष्कार हुआ।

14. ए.जे. गारनेरिन- ने 1797 में पैराशूट का निर्माण किया।

15. जान हंटर- ने 1768 में प्रायोगिक और शल्य पैथोलॉजी की नींव डाली।

16. एडवर्ड जेनर- ने 1798 में टीके की खोज की।

17. वोल्टा- ने 1800 में बैट्री की खोज की।

1804 में बिट्रेन में इंजन का निर्माण हुआ। 1805 में बिट्रेन में इलैक्ट्रोप्लेटिंग की तकनीकी का विकास हुआ।

18. वैज्ञानिक फुलर्टन- ने 1807 में पहली बार स्टीम बोट बनाई।

19. पी.टैरी- ने 1808 में टाइपराइटर का आविष्कार किया।

20. जार्ज स्टीफेसन- ने 1816 में सेफटी लैम्प का आविष्कार किया।

1817 में डेंटल प्लेट, 1924 में पोर्टलैंड सीमेन्ट की खोज हुई।

21. स्ट्रेजियन- ने 1824 में विद्युत चुंबक का आविष्कार किया।

22. डॉ. एम.एम. स्टूरिंग- ने इलैक्ट्रोनिक कम्प्यूटर का निर्माण 1824 किया था। 1826 में माचसि का अन्वेषण हुआ।

23. जार्जस्टीफेसन- ने 1824 में रेलवे इंजन का आविष्कार किया।

24. लुईस डेगुएरे- ने 1830 में कॉपर प्लेट का इस्तेमाल करते हुए सर्वप्रथम फोटोग्राफिक विधि विकसित की।

25. विलियम फॉक्स टालबोट- ने का लोटाइप का निर्माण किया। इसकी सहायता से नेगेटिव इमेज बनाना संभव हुआ, जिसका पॉजीटिव चित्र प्रिंट किया

जा सकता था।

26. एडुवियर्डमुब्रिज- ने मानवों और अन्य जानवरों के फोटो लिये।

27. माइकल फैराडे- ने 1831 में डायनमो का आविष्कार किया।

28. ए.एम.एम्पियर- ने 1834 में गैल्वनोमीटर का आविष्कार किया। 1837 में टेलीग्राफिक संकेत की खोज हुई।

29. मैकमिलन- ने 1842 में साइकिल का निर्माण किया।

30. वैज्ञानिक ए. बैन- ने 1843 में फैक्स मशीन को विर्तिमित किया।

31. हेनरी गिफ्फार्ड- ने 1852 में वायुयान का अन्वेषण किया।

32. अलेक्जेंडर पार्कर्स- ने 1861 में सैल्व्यूलायड का आविष्कार किया।

33. डॉ. गैटालिंग- ने मशीनगन का निर्माण किया।

34. जे. ग्राम- ने 1864 में विद्युत मोटर की खोज की।

35. वैज्ञानिक लूनिस- ने 1864 में रेडियो टेलीग्राफी का आविष्कार किया।

36. ग्राहम बेल- ने 1876 में टेलीफोन का आविष्कार किया। बेल टेलीफोन कंपनी ने सबसे पहले लंबी दूरी की टेलीफोन लाईन बिछाई। यन लाईन न्यूयार्क और बोस्टन के बीच थी। 1856 में पहला टेलीफोन केबिल डाला गया। उस समय केबिल के माध्यम से मात्र 26 काल एक समय में आते जाते थे।

37. एडिसन- ने 1877 में ग्रामोफोन का, 1878-79 में बिजली के बल्ब का, 1882 में 85 ग्राहकों को एक ही जैनरेटर से बिजली की रोशनी दी। इन्होंने प्रायः 1100 खोजें की।

38. एल. प्रिंस- ने 1885 में फिल्म की खोज की। इस दिशा में पहल करते हुए फ्रांस के ई. जूल्स मैरी ने मृदिंग पिक्चर कैमरा तैयार कर लिया। इस कैमरे से 12 तस्वीरें प्रति सेकेंड खींची जा सकती थी। 1927 में फिल्में बोलने लगी और 1930 में इनमें रंग भी भर गया।

39. जी. डैमलर- ने 1885 में मोटर साइकिल का निर्माण कर आवागमन को सरल सहज बनाया। 1888 में जर्मनी में पेट्रोलकार का आविष्कार कर इस दिशा में एक और नया कदम बढ़ाया।

40. टैस्ला- ने 1888 में इलेक्ट्रोक्रिट मोटर ए.सी. की खोज की। 1895 में जर्मनी के आर. डीजल ने डीजलइंजन का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की।

41. डब्ल्यू के रोटेजेन- ने 1895 में एक्स-रे की खोज की। उन्नीसवीं सदी में चिकित्सा जगत् में मारफीन की खोज प्रारम्भ हुई और इसके अंत तक प्रतिरक्षा विज्ञान ने भी विकास कर लिया था। इस बीच रैने-लैनके का स्टेथोस्कोप,

जेम्स सिंपसन का क्लोरोफार्म, लुई पाश्चर द्वारा रेबीज के टीके विकसित किये जाने की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण रही। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध अर्थात् 1872 में जर्मनी के फर्डिनान कोव को माइक्रोबायोलॉजी का जनक कहा गया। कुष्ठ रोग एवं हैजे के वायरस, मेलेरिया और डिप्थीरिया के वायरस को खोज निकाला गया। 1892 में वायरोलॉजी नाम से चिकित्सा विज्ञान की नयी शाखा की शुरुआत हुई। अंततः हार्मोन के क्षेत्र में भी अनुसंधान प्रक्रिया चल पड़ी।

बीसवीं सदी तो विज्ञान का युग ही है। इस सदी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हर क्षेत्र में हुआ है। इस सदी के आविष्कारों ने तो जैसे इतिहास को ही बंदल डाला। चाँद की धरती पर मानव का पहला कदम पड़ा। एवं मंगल की सतह पर रोबोट उतारे गये। परंतु इसी सदी में मानव निर्मित अणुबम विस्फोट से मानवजाति को भीषण संहार सहना पड़ा। इस घटना ने सभी को यह महसूस करने के लिए मजबूर किया कि वैज्ञानिक यांत्रिकता के साथ आध्यात्मिक भावनाओं का समागम एक अनिवार्य आवश्यकता है।



विज्ञानाचार्य श्री कनकनंदीजी का संसंघ गींगला चातुर्मास के शुभागमन पर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती हुई धार्मिक शिष्यायें

विज्ञानाचार्य – आचार्य
श्री कनकनंदीजी गुरुदेव



निरंतर साहित्य साधना
एवं
धर्म विज्ञान के समन्वय
में चिन्तनरत

- | | |
|---|---|
| (1) अनेकान्त सिद्धान्त (द्वि.सं.) | (24) बंधु बन्धन के मूल |
| (2) अति मानवीय शक्ति (द्वि.सं.) | (25) भाव एवं भाग्य तथा अंग विज्ञान
(सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गणेषणा) |
| (3) अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग | (26) भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (4) अनुभव चिन्तामणि | (27) मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (5) आदर्श विहार–आहार–विचार | (28) युग निर्माता भ. ऋषभदेव (हिन्दी/अंग्रेजी) |
| (6) आध्यात्म मनोविज्ञान (इटोपदेश) | (29) विश्व विज्ञान रहस्य |
| (7) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण | (30) विश्व इतिहास |
| (8) ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि.सं.) | (31) विश्व धर्म विज्ञान (ब्रव्यसंग्रह) |
| (9) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) | (32) विश्व धर्म के दस लक्षण |
| (10) क्रान्ति के अग्रदूत (द्वि.सं.) | (33) शाश्वत समस्याओं का समाधान |
| (11) कथा सौरभ | (34) शांति क्रान्ति के विश्व नेता बनने के उपाय |
| (12) कथा सुमन मालिका | (35) शंकुन विज्ञान |
| (13) ज्यलन्त शंकाओं का शीतलसमाधान (द्वि.सं.) | (36) शोधपूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता आ. कनकनंदीजी |
| (14) जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि | (37) संगठन के सूत्र (द्वि.सं.) |
| (15) जीवन्त धर्म सेवा धर्म | (38) स्वन विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (16) जिनार्चना (प्र.पु.) (द्वि.सं.) | (39) स्वतन्त्रता के सूत्र |
| (17) दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों
(हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दु) (१५वां संस्करण) | (40) सत्य साम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार) |
| (18) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (प्र. पुष्प) (द्वि.सं.) | (41) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (बृहत) |
| (19) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (प्र-द्वि-तृ.पुष्प) | (42) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.) |
| (20) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.) | (43) बैलोक्य पूज्य व्रत्मवर्य (द्वि.सं.) |
| (21) ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) | (44) Laishya Psychology |
| (22) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान | (45) Philosophy of Scientific Religion |
| (23) पुरुषाधर्मसिद्धयुपाय (अहिंसा का विश्वरूप) | (46) Fate & Efforts |